पाण्डवोंने गन्ध (चन्दन), माला, उत्तम आसन, पेयपदार्थ और भोजन आदि अर्पण करके सदा प्रयत्नपूर्वक उसकी पूजा की थी। वह प्रलयकालिक संवर्तक नामक अग्निके समान प्रज्वलित होती और अथर्वांगिरस मन्त्रोंसे प्रकट की गयी कृत्याके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी॥ ४४॥

ईशानहेतोः प्रतिनिर्मितां तां
त्वष्ट्रा रिपूणामसुदेहभक्ष्याम्।
भूम्यन्तरिक्षादिजलाशयानि
प्रसह्य भूतानि निहन्तुमीशाम्॥ ४५॥

त्वष्टा प्रजापति (विश्वकर्मा)-ने भगवान् शंकरके लिये उस शक्तिका निर्माण किया था। वह शत्रुओंके प्राण और शरीरको अपना ग्रास बना लेनेवाली थी तथा जल, थल एवं आकाश आदिमें रहनेवाले प्राणियोंको भी बलपूर्वक मार डालनेमें समर्थ थी॥ ४५॥

घण्टापताकामणिवज्रभाजं
वैदूर्यचित्रां तपनीयदण्डाम्।
त्वष्ट्रा प्रयत्नान्नियमेन क्लृप्तां
ब्रह्मद्विषामन्तकरीममोघाम् ॥ ४६॥

उसमें छोटी-छोटी घंटियाँ और पताकाएँ लगी थीं, मणि और हीरे जड़े गये थे, वैदूर्यमणिके द्वारा उसे चित्रित किया गया था। उस शक्तिका दण्ड तपाये हुए सुवर्णका बना था। विश्वकर्माने नियमपूर्वक रहकर बड़े प्रयत्नसे उसको बनाया था। वह ब्रह्मद्रोहियोंका विनाश करनेवाली तथा लक्ष्य वेधनेमें अचूक थी॥ ४६॥

बलप्रयत्नादधिरूढवेगां
मन्त्रैश्च घोरैरभिमन्त्र्य यत्नात्।
ससर्ज मार्गेण च तां परेण
वधाय मद्राधिपतेस्तदानीम्॥ ४७॥

बल और प्रयत्नके द्वारा उसका वेग बहुत बढ़ गया था, युधिष्ठिरने उस समय मद्रराजका वध करनेके लिये उसे घोर मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके उत्तम मार्गके द्वारा प्रयत्नपूर्वक छोड़ा था॥ ४७॥

हतोऽसि पापेत्यभिगर्जमानो
रुद्रोऽन्धकायान्तकरं यथेषुम्।
प्रसार्य बाहुं सुदृढं सुपाणिं
क्रोधेन नृत्यन्निव धर्मराजः॥ ४८॥

जैसे रुद्रने अन्धकासुरपर प्राणान्तकारी बाण छोड़ा था, उसी प्रकार क्रोधसे नृत्य-सा करते हुए धर्मराज युधिष्ठिरने सुन्दर हाथवाली अपनी सुदृढ़ बाँह फैलाकर वह शक्ति शल्यपर चला दी और गरजते हुए कहा—'ओ पापी! तू मारा गया'॥ ४८॥

(स्फुरत्प्रभामण्डलमंशुजालै-
र्धर्मात्मनो मद्रविनाशकाले।
पुरत्रयप्रोत्सरणे पुरस्ता-
न्माहेश्वरं रूपमभूत् तदानीम्॥)

पूर्वकालमें त्रिपुरोंका विनाश करते समय भगवान् महेश्वरका जैसा स्वरूप प्रकट हुआ था, वैसा ही शल्यके संहारकालमें उस समय धर्मात्मा युधिष्ठिरका रूप जान पड़ता था। वे अपने किरणसमूहोंसे प्रभाका पुंज बिखेर रहे थे।

तां सर्वशक्त्या प्रहितां सुशक्तिं
युधिष्ठिरेणाप्रतिवार्यवीर्याम् ।
प्रतिग्रहायाभिननर्द शल्यः
सम्यग्घुतामग्निरिवाज्यधाराम् ॥ ४९॥

युधिष्ठिरने उस उत्तम शक्तिको अपना सारा बल लगाकर चलाया था। इसके सिवा, उसके बल और प्रभावको रोकना किसीके लिये भी असम्भव था तो भी उसकी चोट सहनेके लिये मद्रराज शल्य गरज उठे, मानो हवन की हुई घृतधाराको ग्रहण करनेके लिये अग्निदेव प्रज्वलित हो उठे हों॥ ४९॥

सा तस्य मर्माणि विदार्य शुभ्र-
मुरो विशालं च तथैव भित्त्वा।
विवेश गां तोयमिवाप्रसक्ता
यशो विशालं नृपतेर्दहन्ती॥ ५०॥

परंतु वह शक्ति राजा शल्यके मर्मस्थानोंको विदीर्ण करके उनके उज्ज्वल एवं विशाल वक्षःस्थलको चीरती तथा विस्तृत यशको दग्ध करती हुई जलकी भाँति धरतीमें समा गयी। उसकी गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती थी॥ ५०॥

नासाक्षिकर्णास्यविनिःसृतेन
प्रस्यन्दता च व्रणसम्भवेन।
संसिक्तगात्रो रुधिरेण सोऽभूत्
क्रौञ्चो यथा स्कन्दहतो महाद्रिः॥ ५१॥

जैसे कार्तिकेयकी शक्तिसे आहत हुआ महापर्वत क्रौंच गेरूमिश्रित झरनोंके जलसे भीग गया था, उसी प्रकार नाक, आँख, कान और मुखसे निकले तथा घावोंसे बहते हुए खूनसे शल्यका सारा शरीर नहा गया॥ ५१॥

प्रसार्य बाहू च रथाद् गतो गां
संछिन्नवर्मा कुरुनन्दनेन।
महेन्द्रवाहप्रतिमो महात्मा
वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य॥ ५२॥

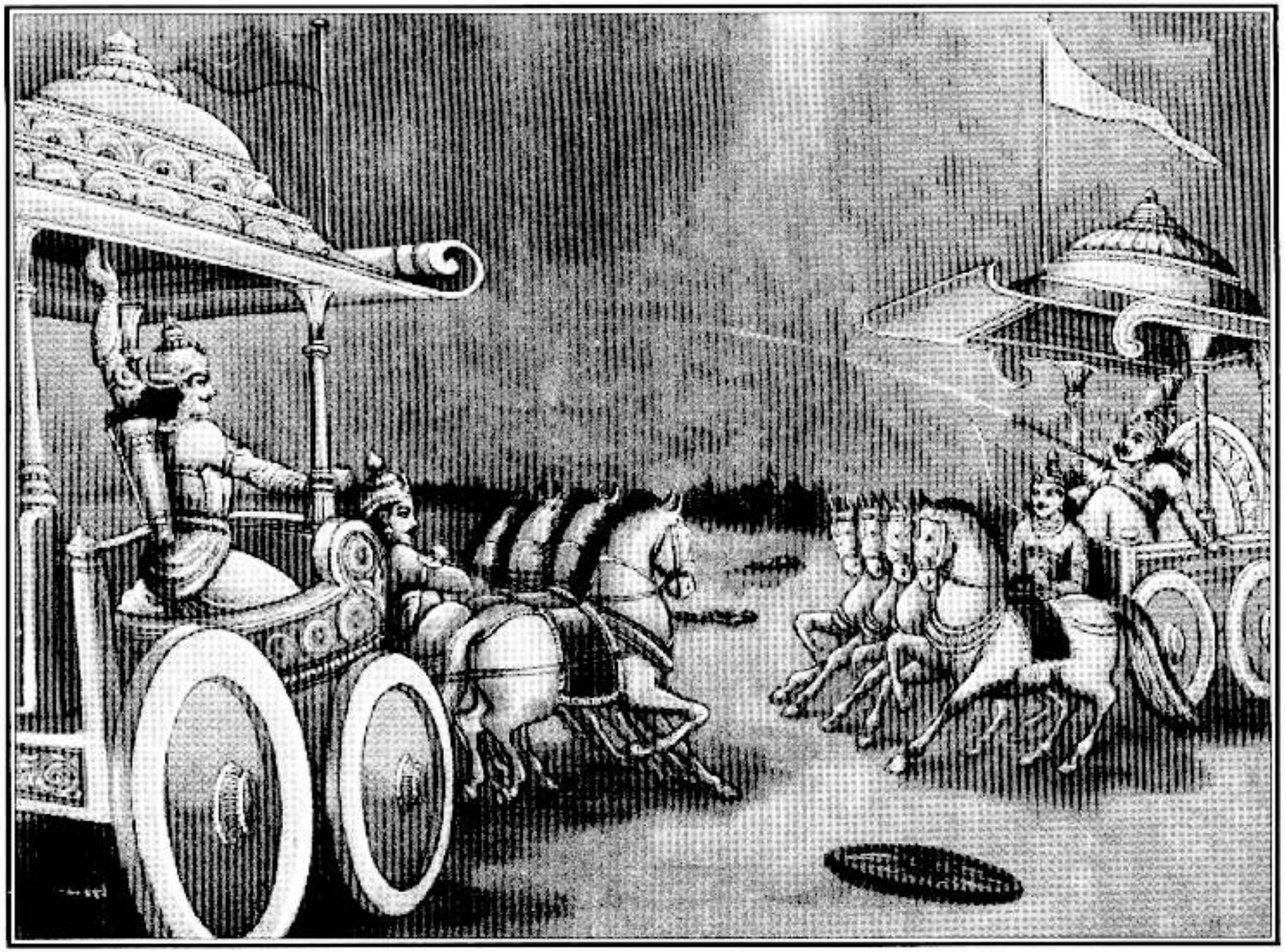

युधिष्ठिरद्वारा शल्यपर शक्तिका घातक प्रहार

कुरुनन्दन! भीमसेनने जिनके कवचको छिन्न-भिन्न कर डाला था, वे इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान विशालकाय राजा शल्य दोनों बाहें फैलाकर वज्रके मारे हुए पर्वत-शिखरकी भाँति रथसे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५२॥

बाहू प्रसार्याभिमुखो धर्मराजस्य मद्रराट्।
ततो निपतितो भूमाविन्द्रध्वज इवोच्छ्रितः॥ ५३॥

मद्रराज शल्य धर्मराज युधिष्ठिरके सामने ही अपनी दोनों भुजाओंको फैलाकर ऊँचे इन्द्रध्वजके समान धराशायी हो गये॥ ५३॥

स तथा भिन्नसर्वाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः।
प्रत्युद्गत इव प्रेम्णा भूम्या स नरपुङ्गवः॥ ५४॥
प्रियया कान्तया कान्तः पतमान इवोरसि।

उनके सारे अंग विदीर्ण हो गये थे तथा वे खूनसे नहा उठे थे। जैसे प्रियतमा कामिनी अपने वक्षःस्थलपर गिरनेकी इच्छावाले प्रियतमका प्रेमपूर्वक स्वागत करती है, उसी प्रकार पृथ्वीने अपने ऊपर गिरते हुए नरश्रेष्ठ शल्यको मानो प्रेमपूर्वक आगे बढ़कर अपनाया था॥

चिरं भुक्त्वा वसुमतीं प्रियां कान्तामिव प्रभुः॥ ५५॥
सर्वैरङ्गैः समाश्लिष्य प्रसुप्त इव चाभवत्।

प्रियतमा कान्ताकी भाँति इस वसुधाका चिरकालतक उपभोग करनेके पश्चात् राजा शल्य मानो अपने सम्पूर्ण अंगोंसे उसका आलिंगन करके सो गये थे॥ ५५½॥

धर्म्ये धर्मात्मना युद्धे निहतो धर्मसूनुना॥ ५६॥
सम्यग्घुत इव स्विष्टः प्रशान्तोऽग्निरिवाध्वरे।

उस धर्मानुकूल युद्धमें धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा मारे गये राजा शल्य यज्ञमें विधिपूर्वक घीकी आहुति पाकर शान्त होनेवाली '**स्विष्टकृत्**' अग्निके समान सर्वथा शान्त हो गये॥ ५६½॥

शक्त्या विभिन्नहृदयं विप्रविद्धायुधध्वजम्॥ ५७॥
संशान्तमपि मद्रेशं लक्ष्मीर्नैव विमुञ्चति।

शक्तिने राजा शल्यके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर डाला था, उनके आयुध तथा ध्वज छिन्न-भिन्न हो बिखरे पड़े थे और वे सदाके लिये शान्त हो गये थे तो भी मद्रराजको लक्ष्मी (शोभा या कान्ति) छोड़ नहीं रही थी॥ ५७½॥

ततो युधिष्ठिरश्चापमादायेन्द्रधनुष्प्रभम्॥ ५८॥
व्यधमद् द्विषतः संख्ये खगराडिव पन्नगान्।
देहान् सुनिशितैर्भल्लै रिपूणां नाशयन् क्षणात्॥ ५९॥

तदनन्तर युधिष्ठिरने इन्द्रधनुषके समान कान्तिमान् दूसरा धनुष लेकर सर्पोंका संहार करनेवाले गरुड़की भाँति युद्धस्थलमें तीखे भल्लोंद्वारा शत्रुओंके शरीरोंका नाश करते हुए क्षणभरमें उन सबका विध्वंस कर दिया॥

ततः पार्थस्य बाणौघैरावृताः सैनिकास्तव।
निमीलिताक्षाः क्षिण्वन्तो भृशमन्योन्यमर्दिताः॥ ६०॥
क्षरन्तो रुधिरं देहैर्विपन्नायुधजीविताः।

युधिष्ठिरके बाणसमूहोंसे आच्छादित हुए आपके सैनिकोंने आँखें मीच लीं और आपसमें ही एक-दूसरेको घायल करके वे अत्यन्त पीड़ित हो गये। उस समय शरीरोंसे रक्तकी धारा बहाते हुए वे अपने अस्त्र-शस्त्र और जीवनसे भी हाथ धो बैठे॥ ६०½॥

ततः शल्ये निपतिते मद्रराजानुजो युवा॥ ६१॥
भ्रातुस्तुल्यो गुणैः सर्वैं रथी पाण्डवमभ्ययात्।

तदनन्तर, मद्रराज शल्यके मारे जानेपर उनका छोटा भाई, जो अभी नवयुवक था और सभी गुणोंमें अपने भाईकी ही समानता करता था, रथपर आरूढ़ हो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरपर चढ़ आया॥ ६१½॥

विव्याध च नरश्रेष्ठो नाराचैर्बहुभिस्त्वरन्॥ ६२॥
हतस्यापचितिं भ्रातुश्चिकीर्षुर्युद्धदुर्मदः।

मारे गये भाईका प्रतिशोध लेनेकी इच्छासे वह रणदुर्मद नरश्रेष्ठ वीर बड़ी उतावलीके साथ उन्हें बहुत-से नाराचोंद्वारा घायल करने लगा॥ ६२½॥

तं विव्याधाशुगैः षड्भिर्धर्मराजस्त्वरन्निव॥ ६३॥
कार्मुकं चास्य चिच्छेद क्षुराभ्यां ध्वजमेव च।

तब धर्मराजने उसे शीघ्रतापूर्वक छः बाणोंसे बींध डाला तथा दो क्षुरोंसे उसके धनुष और ध्वजको काट दिया॥

ततोऽस्य दीप्यमानेन सुदृढेन शितेन च॥ ६४॥
प्रमुखे वर्तमानस्य भल्लेनापाहरच्छिरः।

तत्पश्चात् एक चमकीले, सुदृढ़ और तीखे भल्लसे सामने खड़े हुए उस राजकुमारके मस्तकको काट गिराया॥ ६४½॥

सकुण्डलं तद् ददृशे पतमानं शिरो रथात्॥ ६५॥
पुण्यक्षयमनुप्राप्य पतन् स्वर्गादिव च्युतः।

पुण्य समाप्त होनेपर स्वर्गसे भ्रष्ट हो नीचे गिरनेवाले जीवकी भाँति उसका वह कुण्डलसहित मस्तक रथसे भूतलपर गिरता देखा गया॥ ६५½॥

तस्यापकृत्तशीर्षं तु शरीरं पतितं रथात्॥ ६६॥
रुधिरेणावसिक्ताङ्गं दृष्ट्वा सैन्यमभज्यत।

फिर खूनसे लथपथ हुआ उसका शरीर भी, जिसका सिर काट लिया गया था, रथसे नीचे गिर पड़ा। उसे देखकर आपकी सेनामें भगदड़ मच गयी॥ ६६½॥

विचित्रकवचे तस्मिन् हते मद्रनृपानुजे॥ ६७॥
हाहाकारं प्रकुर्वाणाः कुरवोऽभिप्रदुद्रुवुः।

मद्रनरेशका वह छोटा भाई विचित्र कवचसे सुशोभित

था, उसके मारे जानेपर समस्त कौरव हाहाकार करते हुए भाग चले॥ ६७½॥

शल्यानुजं हतं दृष्ट्वा तावकास्त्यक्तजीविताः॥ ६८॥
वित्रेसुः पाण्डवभयाद् रजोध्वस्तास्तदा भृशम्।

शल्यके भाईको मारा गया देख धूलिधूसरित हुए आपके सारे सैनिक पाण्डुपुत्रके भयसे जीवनकी आशा छोड़कर अत्यन्त त्रस्त हो गये॥ ६८½॥

तांस्तथा भज्यमानांस्तु कौरवान् भरतर्षभ॥ ६९॥
शिनेर्नप्ता किरन् बाणैरभ्यवर्तत सात्यकिः।

भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार भागते हुए उन कौरव-योद्धाओंपर बाणोंकी वर्षा करते हुए शिनिपौत्र सात्यकि उनका पीछा करने लगे॥ ६९½॥

तमायान्तं महेष्वासं दुष्प्रसह्यं दुरासदम्॥ ७०॥
हार्दिक्यस्त्वरितो राजन् प्रत्यगृह्णादभीतवत्।

राजन्! दुःसह एवं दुर्जय महाधनुर्धर सात्यकिको आक्रमण करते देख कृतवर्माने शीघ्रतापूर्वक एक निर्भय वीरकी भाँति उन्हें रोका॥ ७०½॥

तौ समेतौ महात्मानौ वार्ष्णेयौ वरवाजिनौ॥ ७१॥
हार्दिक्यः सात्यकिश्चैव सिंहाविव बलोत्कटौ।

श्रेष्ठ घोड़ोंवाले वे महामनस्वी वृष्णिवंशी वीर सात्यकि और कृतवर्मा दो बलोन्मत्त सिंहोंके समान एक-दूसरेसे भिड़ गये॥ ७१½॥

इषुभिर्विमलाभासैश्छादयन्तौ परस्परम्॥ ७२॥
अर्चिर्भिरिव सूर्यस्य दिवाकरसमप्रभौ।

सूर्यके समान तेजस्वी वे दोनों वीर दिनकरकी किरणोंके सदृश निर्मल कान्तिवाले बाणोंद्वारा एक-दूसरेको आच्छादित करने लगे॥ ७२½॥

चापमार्गबलोद्धूतान् मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः॥ ७३॥
आकाशगानपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान्।

वृष्णिवंशके उन दोनों सिंहोंके धनुषद्वारा बलपूर्वक चलाये हुए शीघ्रगामी बाणोंको हमने टिड्डीदलोंके समान आकाशमें व्याप्त हुआ देखा था॥ ७३½॥

सात्यकिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः॥ ७४॥
चापमेकेन चिच्छेद हार्दिक्यो नतपर्वणा।

कृतवर्माने दस बाणोंसे सात्यकिको तथा तीनसे उनके घोड़ोंको घायल करके झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे उनके धनुषको भी काट दिया॥ ७४½॥

तन्निकृत्तं धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः॥ ७५॥
अन्यदादत्त वेगेन वेगवत्तरमायुधम्।

उस कटे हुए श्रेष्ठ धनुषको फेंककर शिनिप्रवर सात्यकिने उससे भी अत्यन्त वेगशाली दूसरा धनुष शीघ्रतापूर्वक हाथमें ले लिया॥ ७५½॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम्॥ ७६॥
हार्दिक्यं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत् स्तनान्तरे।

उस श्रेष्ठ धनुषको लेकर सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें अग्रगण्य सात्यकिने कृतवर्माकी छातीमें दस बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ ७६½॥

ततो रथं युगेषां च च्छित्त्वा भल्लैः सुसंयतैः॥ ७७॥
अश्वांस्तस्यावधीत् तूर्णमुभौ च पार्ष्णिसारथी।

तत्पश्चात् सुसंयत भल्लोंके प्रहारसे उसके रथ, जूए और ईषादण्ड (हरसे)-को काटकर शीघ्र ही घोड़ों तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको भी मार डाला॥ ७७½॥

ततस्तं विरथं दृष्ट्वा कृपः शारद्वतः प्रभो॥ ७८॥
अपोवाह ततः क्षिप्रं रथमारोप्य वीर्यवान्।

प्रभो! कृतवर्माको रथहीन हुआ देख शरद्वान्के पराक्रमी पुत्र कृपाचार्य उसे शीघ्र ही अपने रथपर बिठाकर वहाँसे दूर हटा ले गये॥ ७८½॥

मद्रराजे हते राजन् विरथे कृतवर्मणि॥ ७९॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम्।

राजन्! जब मद्रराज मारे गये और कृतवर्मा भी रथहीन हो गया, तब दुर्योधनकी सारी सेना पुनः युद्धसे मुँह मोड़कर भागने लगी॥ ७९½॥

तत् परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृते॥ ८०॥
बलं तु हतभूयिष्ठं तत् तदाऽऽसीत् पराङ्मुखम्।

परंतु वहाँ सब ओर धूल छा रही थी, इसलिये शत्रुओंको इस बातका पता न चला। अधिकांश योद्धाओंके मारे जानेसे उस समय वह सारी सेना युद्धसे विमुख हो गयी थी॥ ८०½॥

ततो मुहूर्तात् तेऽपश्यन् रजो भीमं समुत्थितम्॥ ८१॥
विविधैः शोणितस्रावैः प्रशान्तं पुरुषर्षभ।

पुरुषप्रवर! तदनन्तर दो ही घड़ीमें उन सबने देखा कि धरतीकी जो धूल ऊपर उड़ रही थी, वह नाना प्रकारके रक्तका स्रोत बहनेसे शान्त हो गयी है॥ ८१½॥

ततो दुर्योधनो दृष्ट्वा भग्नं स्वबलमन्तिकात्॥ ८२॥
जवेनापततः पार्थानेकः सर्वानवारयत्।

उस समय दुर्योधनने यह देखकर कि मेरी सेना मेरे पाससे भाग गयी है, वेगसे आक्रमण करनेवाले समस्त पाण्डवयोद्धाओंको अकेले ही रोका॥ ८२½॥

पाण्डवान् सरथान् दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्॥ ८३॥
आनर्तं च दुराधर्षं शितैर्बाणैरवारयत्।

रथसहित पाण्डवोंको, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्नको तथा दुर्जय वीर आनर्तनरेशको सामने देखकर उसने तीखे बाणोंद्वारा उन सबको आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ८३½॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवागतम्॥ ८४॥
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्योऽपि न्यवर्तत।

जैसे मरणधर्मा मनुष्य पास आयी हुई अपनी मौतको नहीं टाल सकते, उसी प्रकार वे शत्रुपक्षके सैनिक दुर्योधन-को लाँघकर आगे न बढ़ सके। इसी समय कृतवर्मा भी दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः वहीं लौट आया॥ ८४ १/२ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः॥ ८५॥
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् पत्रिभिः कृतवर्मणः।
विव्याध गौतमं चापि षड्भिर्भल्लैः सुतेजनैः॥ ८६॥

तब महारथी राजा युधिष्ठिरने बड़ी उतावलीके साथ चार बाण मारकर कृतवर्माके चारों घोड़ोंका संहार कर डाला तथा छः तेज धारवाले भल्लोंसे कृपाचार्यको भी घायल कर दिया॥ ८५-८६॥

अश्वत्थामा ततो राज्ञा हताश्वं विरथीकृतम्।
तमपोवाह हार्दिक्यं स्वरथेन युधिष्ठिरात्॥ ८७॥

इसके बाद अश्वत्थामा अपने रथके द्वारा घोड़ोंके मारे जानेसे रथहीन हुए कृतवर्माको राजा युधिष्ठिरके पाससे दूर हटा ले गया॥ ८७॥

ततः शारद्वतः षड्भिः प्रत्यविद्ध्यद् युधिष्ठिरम्।
विव्याध चाश्वान्निशितैस्तस्याष्टाभिः शिलीमुखैः॥ ८८॥

तब कृपाचार्यने छः बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला और आठ पैने बाणोंसे उनके घोड़ोंको भी घायल कर दिया॥ ८८॥

एवमेतन्महाराज युद्धशेषमवर्तत।
तव दुर्मन्त्रिते राजन् सह पुत्रस्य भारत॥ ८९॥

महाराज! भरतवंशी नरेश! इस प्रकार पुत्रसहित आपकी कुमन्त्रणासे इस युद्धका अन्त हुआ॥ ८९॥

तस्मिन् महेष्वासवरे विशस्ते
संग्राममध्ये कुरुपुङ्गवेन।
पार्थाः समेताः परमप्रहृष्टाः
शङ्खान् प्रदध्मुर्हतमीक्ष्य शल्यम्॥ ९०॥

कुरुकुलशिरोमणि युधिष्ठिरके द्वारा युद्धमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर शल्यके मारे जानेपर कुन्तीके सभी पुत्र एकत्र हो अत्यन्त हर्षमें भर गये और शल्यको मारा गया देख शंख बजाने लगे॥ ९०॥

युधिष्ठिरं च प्रशशंसुराजौ
पुरा कृते वृत्रवधे यथेन्द्रम्।
चक्रुश्च नानाविधवाद्यशब्दान्
निनादयन्तो वसुधां समेताः॥ ९१॥

जैसे पूर्वकालमें वृत्रासुरका वध करनेपर देवताओंने इन्द्रकी स्तुति की थी, उसी प्रकार सब पाण्डवोंने रणभूमिमें युधिष्ठिरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और पृथ्वीको प्रतिध्वनित करते हुए वे सब लोग नाना प्रकारके वाद्योंकी ध्वनि फैलाने लगे॥ ९१॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शल्यवधे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शल्यका वधविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ३ श्लोक मिलाकर कुल ९४ श्लोक हैं।)

अष्टादशोऽध्यायः

मद्रराजके अनुचरोंका वध और कौरव-सेनाका पलायन

संजय उवाच

शल्येऽथ निहते राजन् मद्रराजपदानुगाः।
रथाः सप्तशता वीरा निर्ययुर्महतो बलात्॥ १॥
दुर्योधनस्तु द्विरदमारुह्याचलसंनिभम्।
छत्रेण ध्रियमाणेन वीज्यमानश्च चामरैः॥ २॥
न गन्तव्यं न गन्तव्यमिति मद्रानवारयत्।
दुर्योधनेन ते वीरा वार्यमाणाः पुनः पुनः॥ ३॥
युधिष्ठिरं जिघांसन्तः पाण्डूनां प्राविशन् बलम्।

संजय कहते हैं—राजन्! मद्रराज शल्यके मारे जानेपर उनके अनुगामी सात सौ वीर रथी विशाल कौरव-सेनासे निकल पड़े। उस समय दुर्योधन पर्वताकार हाथीपर आरूढ़ हो सिरपर छत्र धारण किये चामरोंसे वीजित होता हुआ वहाँ आया और 'न जाओ, न जाओ' ऐसा कहकर उन मद्रदेशीय वीरोंको रोकने लगा; परंतु दुर्योधनके बारंबार रोकनेपर भी वे वीर योद्धा युधिष्ठिरके वधकी इच्छासे पाण्डवोंकी सेनामें जा घुसे॥ १—३ १/२ ॥

ते तु शूरा महाराज कृतचित्ताश्च योधने॥ ४॥
धनुःशब्दं महत् कृत्वा सहायुध्यन्त पाण्डवैः।

महाराज! उन शूरवीरोंने युद्ध करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया था, अतः धनुषकी गम्भीर टंकार करके पाण्डवोंके साथ संग्राम आरम्भ कर दिया॥ ४ १/२ ॥

श्रुत्वा च निहतं शल्यं धर्मपुत्रं च पीडितम्॥ ५॥
मद्रराजप्रिये युक्तैर्मद्रकाणां महारथैः।
आजगाम ततः पार्थो गाण्डीवं विक्षिपन् धनुः॥ ६॥
पूरयन् रथघोषेण दिशः सर्वा महारथः।

शल्य मारे गये और मद्रराजका प्रिय करनेमें लगे हुए मद्रदेशीय महारथियोंने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पीड़ित कर रखा है; यह सुनकर कुन्तीपुत्र महारथी अर्जुन गाण्डीव धनुषकी टंकार करते और रथके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको परिपूर्ण करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ५-६½॥

ततोऽर्जुनश्च भीमश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ॥ ७॥
सात्यकिश्च नरव्याघ्रो द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च पञ्चालाः सह सोमकैः॥ ८॥
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः समन्तात् पर्यवारयन्।

तदनन्तर अर्जुन, भीमसेन, माद्रीपुत्र पाण्डुकुमार नकुल, सहदेव, पुरुषसिंह सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पांचाल और सोमक वीर—इन सबने युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ ७-८½॥

ते समन्तात् परिवृताः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः॥ ९॥
क्षोभयन्ति स्म तां सेनां मकराः सागरं यथा।

युधिष्ठिरको सब ओरसे घेरकर खड़े हुए पुरुषप्रवर पाण्डव उस सेनाको उसी प्रकार क्षुब्ध करने लगे, जैसे मगर समुद्रको॥ ९½॥

वृक्षानिव महावाताः कम्पयन्ति स्म तावकान्॥ १०॥
पुरोवातेन गङ्गेव क्षोभ्यमाणा महानदी।
अक्षोभ्यत तदा राजन् पाण्डूनां ध्वजिनी ततः॥ ११॥

जैसे महावायु (आँधी) वृक्षोंको हिला देती है, उसी प्रकार पाण्डववीरोंने आपके सैनिकोंको कम्पित कर दिया। राजन्! जैसे पूर्वी हवा महानदी गंगाको क्षुब्ध कर देती है, उसी प्रकार उन सैनिकोंने पाण्डवोंकी सेनामें भी हलचल मचा दी॥ १०-११॥

प्रस्कन्द्य सेनां महतीं महात्मानो महारथाः।
बहवश्चुक्रुशुस्तत्र क्व स राजा युधिष्ठिरः॥ १२॥
भ्रातरो वास्य ते शूरा दृश्यन्ते नेह केन च।

वे बहुसंख्यक महामनस्वी मद्रमहारथी विशाल पाण्डव-सेनाको मथकर जोर-जोरसे पुकार-पुकारकर कहने लगे—'कहाँ है वह राजा युधिष्ठिर? अथवा उसके वे शूरवीर भाई? वे सब यहाँ दिखायी क्यों नहीं देते?॥ १२½॥

धृष्टद्युम्नोऽथ शैनेयो द्रौपदेयाश्च सर्वशः॥ १३॥
पञ्चालाश्च महावीर्याः शिखण्डी च महारथः।

'धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदीके सभी पुत्र, महापराक्रमी पांचाल और महारथी शिखण्डी—ये सब कहाँ हैं?'॥

एवं तान् वादिनः शूरान् द्रौपदेया महारथाः॥ १४॥
अभ्यघ्नन् युयुधानश्च मद्रराजपदानुगान्।

ऐसी बातें कहते हुए उन मद्रराजके अनुगामी वीर योद्धाओंको द्रौपदीके महारथी पुत्रों और सात्यकिने मारना आरम्भ किया॥ १४½॥

चक्रैर्विमथितैः केचित् केचिच्छिन्नैर्महाध्वजैः॥ १५॥
ते दृश्यन्तेऽपि समरे तावका निहताः परैः।

समरांगणमें आपके वे सैनिक शत्रुओंद्वारा मारे जाने लगे। कुछ योद्धा छिन्न-भिन्न हुए रथके पहियों और कुछ कटे हुए विशाल ध्वजोंके साथ ही धराशायी होते दिखायी देने लगे॥ १५½॥

आलोक्य पाण्डवान् युद्धे योधा राजन् समन्ततः॥ १६॥
वार्यमाणा ययुर्वेगात् पुत्रेण तव भारत।

राजन्! भरतनन्दन! वे योद्धा युद्धमें सब ओर फैले हुए पाण्डवोंको देखकर आपके पुत्रके मना करनेपर भी वेगपूर्वक आगे बढ़ गये॥ १६½॥

दुर्योधनश्च तान् वीरान् वारयामास सान्त्वयन्॥ १७॥
न चास्य शासनं केचित्तत्र चक्रुर्महारथाः।

दुर्योधनने उन वीरोंको सान्त्वना देते हुए बहुत मना किया, किंतु वहाँ किन्हीं महारथियोंने उसकी इस आज्ञाका पालन नहीं किया॥ १७½॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्॥ १८॥
दुर्योधनं महाराज वचनं वचनक्षमः।

महाराज! तब प्रवचनपटु गान्धारराजपुत्र शकुनिने दुर्योधनसे यह बात कही—॥ १८½॥

किं नः सम्प्रेक्षमाणानां मद्राणां हन्यते बलम्॥ १९॥
न युक्तमेतत् समरे त्वयि तिष्ठति भारत।

'भारत! हमलोगोंके देखते-देखते मद्रदेशकी यह सेना क्यों मारी जाती है? तुम्हारे रहते ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये॥ १९½॥

सहितैश्चापि योद्धव्यमित्येष समयः कृतः॥ २०॥
अथ कस्मात् परानेव घ्नतो मर्षयसे नृप।

'यह शपथ ली जा चुकी है कि 'हम सब लोग एक साथ होकर लड़ें।' नरेश्वर! ऐसी दशामें शत्रुओंको अपनी सेनाका संहार करते देखकर भी तुम क्यों सहन करते हो?'॥ २०½॥

दुर्योधन उवाच

वार्यमाणा मया पूर्वं नैते चक्रुर्वचो मम॥ २१॥
एते विनिहताः सर्वे प्रस्कन्नाः पाण्डुवाहिनीम्।

दुर्योधनने कहा—मैंने पहले ही इन्हें बहुत मना किया था, परंतु इन लोगोंने मेरी बात नहीं मानी और पाण्डवसेनामें घुसकर ये प्रायः सब-के-सब मारे गये॥

शकुनिरुवाच

न भर्तुः शासनं वीरा रणे कुर्वन्त्यमर्षिताः॥ २२॥
अलं क्रोद्धुमथैतेषां नायं काल उपेक्षितुम्।
यामः सर्वे च सम्भूय सवाजिरथकुञ्जराः॥ २३॥
परित्रातुं महेष्वासान् मद्रराजपदानुगान्।
अन्योन्यं परिरक्षामो यत्नेन महता नृप॥ २४॥

शकुनि बोला—नरेश्वर! युद्धस्थलमें रोषामर्षके वशीभूत हुए वीर स्वामीकी आज्ञाका पालन नहीं करते हैं; वैसी दशामें इनपर क्रोध करना उचित नहीं है। यह इनकी उपेक्षा करनेका समय नहीं है। हम सब लोग एक साथ हो मद्रराजके महाधनुर्धर सेवकोंकी रक्षाके लिये हाथी, घोड़े और रथसहित चलें तथा महान् प्रयत्नपूर्वक एक-दूसरेकी रक्षा करें॥ २२—२४॥

संजय उवाच

एवं सर्वेऽनुसंचिन्त्य प्रययुर्यत्र सैनिकाः।
एवमुक्तस्तदा राजा बलेन महता वृतः॥ २५॥
प्रययौ सिंहनादेन कम्पयन्निव मेदिनीम्।

संजय कहते हैं—राजन्! ऐसा विचारकर सब लोग वहीं गये, जहाँ वे सैनिक मौजूद थे। शकुनिके वैसा कहनेपर राजा दुर्योधन विशाल सेनाके साथ सिंहनाद करता और पृथ्वीको कँपाता हुआ-सा आगे बढ़ा॥ २५½॥

हत विद्ध्यत गृह्णीत प्रहरध्वं निकृन्तत॥ २६॥
इत्यासीत् तुमुलः शब्दस्तव सैन्यस्य भारत।

भारत! उस समय आपकी सेनामें 'मार डालो, घायल करो, पकड़ लो, प्रहार करो और टुकड़े-टुकड़े कर डालो' यह भयंकर शब्द गूँज रहा था॥ २६½॥

पाण्डवास्तु रणे दृष्ट्वा मद्रराजपदानुगान्॥ २७॥
सहितानभ्यवर्तन्त गुल्ममास्थाय मध्यमम्।

रणभूमिमें मद्रराजके सेवकोंको एक साथ धावा करते देख पाण्डवोंने मध्यम गुल्म (सेना)-का आश्रय ले उनका सामना किया॥ २७½॥

ते मुहूर्ताद् रणे वीरा हस्ताहस्ति विशाम्यते॥ २८॥
निहताः प्रत्यदृश्यन्त मद्रराजपदानुगाः।

प्रजानाथ! वे मद्रराजके अनुगामी वीर रणभूमिमें दो ही घड़ीके भीतर हाथों-हाथ मारे गये दिखायी दिये॥

ततो नः सम्प्रयातानां हता मद्रास्तरस्विनः॥ २९॥
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन् सहिताः परे।

वहाँ हमारे पहुँचते ही मद्रदेशके वे वेगशाली वीर कालके गालमें चले गये और शत्रुसैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो एक साथ किलकारियाँ भरने लगे॥ २९½॥

उत्थितानि कबन्धानि समदृश्यन्त सर्वशः॥ ३०॥
पपात महती चोल्का मध्येनादित्यमण्डलम्।

सब ओर कबन्ध खड़े दिखायी दे रहे थे और सूर्यमण्डलके बीचसे वहाँ बड़ी भारी उल्का गिरी॥

रथैर्भग्नैर्युगाक्षैश्च निहतैश्च महारथैः॥ ३१॥
अश्वैर्निपतितैश्चैव संछन्नाभूद् वसुन्धरा।

टूटे-फूटे रथों, जूओं और धुरोंसे, मारे गये महारथियोंसे तथा धराशायी हुए घोड़ोंसे भूमि ढक गयी थी॥ ३१½॥

वातायमानैस्तुरगैर्युगासक्तैस्ततस्ततः॥ ३२॥
अदृश्यन्त महाराज योधास्तत्र रणाजिरे।

महाराज! वहाँ समरांगणमें बहुत-से योद्धा जूएमें बँधे हुए वायुके समान वेगशाली घोड़ोंद्वारा इधर-उधर ले जाये जाते दिखायी देते थे॥ ३२½॥

भग्नचक्रान् रथान् केचिदहरंस्तुरगा रणे॥ ३३॥
रथार्धं केचिदादाय दिशो दश विबभ्रमुः।

कुछ घोड़े रणभूमिमें टूटे पहियोंवाले रथोंको लिये जा रहे थे और कितने ही अश्व आधे ही रथको लेकर दसों दिशाओंमें चक्कर लगाते थे॥ ३३½॥

तत्र तत्र व्यदृश्यन्त योक्त्रैः श्लिष्टाः स्म वाजिनः॥ ३४॥
रथिनः पतमानाश्च दृश्यन्ते स्म नरोत्तमाः।
गगनात् प्रच्युताः सिद्धाः पुण्यानामिव संक्षये॥ ३५॥

जहाँ-तहाँ जोतोंसे जुड़े हुए घोड़े और नरश्रेष्ठ रथी गिरते दिखायी दे रहे थे, मानो सिद्ध (पुण्यात्मा) पुरुष पुण्यक्षय होनेपर आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़े हों॥

निहतेषु च शूरेषु मद्रराजानुगेषु वै।
अस्मानापततश्चापि दृष्ट्वा पार्था महारथाः॥ ३६॥
अभ्यवर्तन्त वेगेन जयगृद्धाः प्रहारिणः।
बाणशब्दरवान् कृत्वा विमिश्रान् शङ्खनिःस्वनैः॥ ३७॥

मद्रराजके उन शूरवीर सैनिकोंके मारे जानेपर हमें आक्रमण करते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले महारथी पाण्डवयोद्धा शंखध्वनिके साथ बाणोंकी सनसनाहट फैलाते हुए हमारा सामना करनेके लिये बड़े वेगसे आये॥ ३६-३७॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्यप्रहारिणः।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रचुक्रुशुः॥ ३८॥

हमारे पास पहुँचकर लक्ष्य वेधनेमें सफल और प्रहारकुशल पाण्डव-सैनिक अपने धनुष हिलाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे॥ ३८॥

ततो हतमभिप्रेक्ष्य मद्रराजबलं महत्।
मद्रराजं च समरे दृष्ट्वा शूरं निपातितम्॥ ३९॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम्।

मद्रराजकी वह विशाल सेना मारी गयी तथा शूरवीर मद्रराज शल्य पहले ही समरभूमिमें धराशायी किये जा चुके हैं, यह सब अपनी आँखों देखकर दुर्योधनकी सारी सेना पुनः पीठ दिखाकर भाग चली॥

वध्यमानं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः।
दिशो भेजेऽथ सम्भ्रान्तं भ्रामितं दृढधन्विभिः॥ ४०॥

महाराज! विजयसे उल्लसित होनेवाले दृढ़ धनुर्धर पाण्डवोंकी मार खाकर कौरव-सेना घबरा उठी और भ्रान्त-सी होकर सम्पूर्ण दिशाओंमें भागने लगी॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

पाण्डवसैनिकोंका आपसमें बातचीत करते हुए पाण्डवोंकी प्रशंसा और धृतराष्ट्रकी निन्दा करना तथा कौरव-सेनाका पलायन, भीमद्वारा इक्कीस हजार पैदलोंका संहार और दुर्योधनका अपनी सेनाको उत्साहित करना

संजय उवाच

पातिते युधि दुर्धर्षे मद्रराजे महारथे।
तावकास्तव पुत्राश्च प्रायशो विमुखाभवन्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुर्जय महारथी मद्रराज शल्यके मारे जानेपर आपके सैनिक और पुत्र प्रायः संग्रामसे विमुख हो गये॥ १॥

वणिजो नावि भिन्नायां यथागाधेऽप्लवेऽर्णवे।
अपारे पारमिच्छन्तो हते शूरे महात्मना॥ २॥
मद्रराजे महाराज वित्रस्ताः शरविक्षताः।

महाराज! जैसे अगाध महासागरमें नाव टूट जानेपर उस नौकारहित अपार समुद्रसे पार जानेकी इच्छावाले व्यापारी व्याकुल हो उठते हैं, उसी प्रकार महात्मा युधिष्ठिरके द्वारा शूरवीर मद्रराज शल्यके मारे जानेपर आपके सैनिक बाणोंसे क्षत-विक्षत एवं भयभीत हो बड़ी घबराहटमें पड़ गये॥ २½॥

अनाथा नाथमिच्छन्तो मृगाः सिंहार्दिता इव॥ ३॥
वृषा यथा भग्नशृङ्गाः शीर्णदन्ता यथा गजाः।

वे अपनेको अनाथ समझते हुए किसी नाथ (सहायक) की इच्छा रखते थे और सिंहके सताये हुए मृगों, टूटे सींगवाले साँड़ों तथा जीर्ण-शीर्ण दाँतोंवाले हाथियोंके समान असमर्थ हो गये थे॥ ३½॥

मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिताजातशत्रुणा॥ ४॥
न संधातुमनीकानि न च राजन् पराक्रमे।
आसीद् बुद्धिर्हते शल्ये भूयो योधस्य कस्यचित्॥ ५॥

राजन्! अजातशत्रु युधिष्ठिरसे पराजित हो दोपहरके समय हमलोग युद्धसे भाग चले थे। शल्यके मारे जानेसे किसी भी योद्धाके मनमें सेनाओंको संगठित करने तथा पराक्रम दिखानेका उत्साह नहीं होता था॥

भीष्मे द्रोणे च निहते सूतपुत्रे च भारत।
यद् दुःखं तव योधानां भयं चासीद् विशाम्पते॥ ६॥
तद् भयं स च नः शोको भय एवाभ्यवर्तत।

भारत! प्रजानाथ! भीष्म, द्रोण और सूतपुत्र कर्णके मारे जानेपर आपके योद्धाओंको जो दुःख और भय प्राप्त हुआ था, वही भय और वही शोक पुनः (शल्यके मारे जानेपर) हमारे सामने उपस्थित हुआ॥ ६½॥

निराशाश्च जये तस्मिन् हते शल्ये महारथे॥ ७॥
हतप्रवीरा विध्वस्ता निकृत्ताश्च शितैः शरैः।

जिनके प्रमुख वीर मारे गये थे, वे कौरवसैनिक महारथी शल्यका वध हो जानेपर पैने बाणोंसे क्षत-विक्षत और विध्वस्त हो विजयकी ओरसे निराश हो गये थे॥ ७½॥

मद्रराजे हते राजन् योधास्ते प्राद्रवन् भयात्॥ ८॥
अश्वानन्ये गजानन्ये रथानन्ये महारथाः।
आरुह्य जवसम्पन्नाः पादाताः प्राद्रवंस्तथा॥ ९॥

राजन्! मद्रराजकी मृत्यु हो जानेपर आपके वे सभी योद्धा भयके मारे भागने लगे। कुछ सैनिक घोड़ोंपर, कुछ हाथियोंपर और दूसरे महारथी रथोंपर आरूढ़ हो बड़े वेगसे भागे। पैदल सैनिक भी वहाँसे भाग खड़े हुए॥

द्विसाहस्राश्च मातङ्गा गिरिरूपाः प्रहारिणः।
सम्प्राद्रवन् हते शल्ये अङ्कुशाङ्गुष्ठनोदिताः॥ १०॥

दो हजार प्रहारकुशल पर्वताकार मतवाले हाथी शल्यके मारे जानेपर अंकुशों और पैरके अँगूठोंसे प्रेरित हो तीव्र गतिसे पलायन करने लगे॥ १०॥

ते रणाद् भरतश्रेष्ठ तावकाः प्राद्रवन् दिशः।
धावतश्चाप्यपश्याम श्वसमानान् शराहतान्॥ ११॥

भरतश्रेष्ठ! आपके वे सैनिक रणभूमिसे सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर भागे थे। हमने देखा, वे बाणोंसे क्षत-विक्षत हो हाँफते हुए दौड़े जा रहे हैं॥ ११॥

तान् प्रभग्नान् द्रुतान् दृष्ट्वा हतोत्साहान् पराजितान्।
अभ्यवर्तन्त पञ्चालाः पाण्डवाश्च जयैषिणः॥ १२॥

उन्हें हतोत्साह, पराजित एवं हताश होकर भागते देख विजयकी अभिलाषा रखनेवाले पांचाल और पाण्डव उनका पीछा करने लगे॥ १२॥

बाणशब्दरवाश्चापि सिंहनादाश्च पुष्कलाः।
शङ्खशब्दश्च शूराणां दारुणः समपद्यत॥ १३॥

बाणोंकी सनसनाहट, शूरवीरोंका सिंहनाद और शंखध्वनि—इन सबकी मिली-जुली आवाज बड़ी भयानक जान पड़ती थी॥ १३॥

दृष्ट्वा तु कौरवं सैन्यं भयत्रस्तं प्रविद्रुतम्।
अन्योन्यं समभाषन्त पञ्चालाः पाण्डवैः सह॥ १४॥

कौरव-सेनाको भयसे संत्रस्त होकर भागती देख पाण्डवोंसहित पांचालयोद्धा आपसमें इस प्रकार वार्तालाप करने लगे—॥ १४॥

अद्य राजा सत्यधृतिर्हतामित्रो युधिष्ठिरः।
अद्य दुर्योधनो हीनो दीप्तया नृपतिश्रियः॥ १५॥

'आज सत्यपरायण राजा युधिष्ठिर शत्रुहीन हो गये और आज दुर्योधन अपनी देदीप्यमान राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गया॥

अद्य श्रुत्वा हतं पुत्रं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः।
विह्वलः पतितो भूमौ किल्बिषं प्रतिपद्यताम्॥ १६॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रको मारा गया सुनकर व्याकुल हो पृथ्वीपर पछाड़ खाकर गिरें और दुःख भोगें॥

अद्य जानातु कौन्तेयं समर्थं सर्वधन्विनाम्।
अद्यात्मानं च दुर्मेधा गर्हयिष्यति पापकृत्॥ १७॥
अद्य क्षत्तुर्वचः सत्यं स्मरतां ब्रुवतो हितम्।

'आज वे समझ लें कि कुन्तीपुत्र अर्जुन सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ एवं सामर्थ्यशाली हैं। आज पापाचारी दुर्बुद्धि धृतराष्ट्र अपनी भरपेट निन्दा करें और विदुरजीने जो सत्य एवं हितकर वचन कहे थे, उन्हें याद करें॥

अद्यप्रभृति पार्थं च प्रेष्यभूत इवाचरन्॥ १८॥
विजानातु नृपो दुःखं यत् प्राप्तं पाण्डुनन्दनैः।

'आजसे वे स्वयं ही दासतुल्य होकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरकी परिचर्या करते हुए अच्छी तरह समझ लें कि 'पाण्डवोंने पहले कितना कष्ट उठाया था?'॥ १८½॥

अद्य कृष्णस्य माहात्म्यं विजानातु महीपतिः॥ १९॥
अद्यार्जुनधनुर्घोषं घोरं जानातु संयुगे।
अस्त्राणां च बलं सर्वं बाह्वोश्च बलमाहवे॥ २०॥

'आज राजा धृतराष्ट्र अनुभव करें कि भगवान् श्रीकृष्णका कैसा माहात्म्य है और आज वे यह भी जान लें कि युद्धस्थलमें अर्जुनके गाण्डीव धनुषकी टंकार कितनी भयंकर है? उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी सारी शक्ति कैसी है तथा रणभूमिमें उनकी दोनों भुजाओंका बल कितना अद्भुत है?॥ १९-२०॥

अद्य ज्ञास्यति भीमस्य बलं घोरं महात्मनः।
हते दुर्योधने युद्धे शक्रेणेवासुरे बले॥ २१॥

'जैसे इन्द्रने असुरोंकी सेनाका संहार किया था, उसी प्रकार युद्धमें भीमसेनके हाथसे दुर्योधनके मारे जानेपर आज धृतराष्ट्रको यह ज्ञात हो जायगा कि 'महामनस्वी भीमका बल कैसा भयंकर है!'॥ २१॥

यत् कृतं भीमसेनेन दुःशासनवधे तदा।
नान्यः कर्तास्ति लोकेऽस्मिन्ऋते भीमान्महाबलात्॥ २२॥

'दुःशासनके वधके समय भीमसेनने जो कुछ किया था, उसे महाबली भीमसेनके सिवा इस संसारमें दूसरा कोई नहीं कर सकता॥ २२॥

अद्य श्रेष्ठस्य जानीतां पाण्डवस्य पराक्रमम्।
मद्रराजं हतं श्रुत्वा देवैरपि सुदुःसहम्॥ २३॥

'देवताओंके लिये भी दुःसह मद्रराज शल्यके वधका वृत्तान्त सुनकर आज धृतराष्ट्र ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरके पराक्रमको भी अच्छी तरह जान लें॥ २३॥

अद्य ज्ञास्यति संग्रामे माद्रीपुत्रौ सुदुःसहौ।
निहते सौबले वीरे प्रवीरेषु च सर्वशः॥ २४॥

'आज संग्राममें सुबलपुत्र वीर शकुनि तथा दूसरे समस्त प्रमुख वीरोंके मारे जानेपर उन्हें शत्रुके लिये अत्यन्त दुःसह माद्रीकुमार नकुल-सहदेवकी शक्तिका भी ज्ञान हो जायगा॥

कथं जयो न तेषां स्याद् येषां योद्धा धनंजयः।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः॥ २५॥
द्रौपद्यास्तनयाः पञ्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
शिखण्डी च महेष्वासो राजा चैव युधिष्ठिरः॥ २६॥

'जिनकी ओरसे युद्ध करनेवाले धनंजय, सात्यकि, भीमसेन, द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पाँचों पुत्र, माद्रीकुमार पाण्डुनन्दन नकुल-सहदेव, महाधनुर्धर शिखण्डी तथा स्वयं राजा युधिष्ठिर-जैसे वीर हैं, उनकी विजय कैसे न हो?॥ २५-२६॥

येषां च जगतीनाथो नाथः कृष्णो जनार्दनः।
कथं तेषां जयो न स्याद् येषां धर्मो व्यपाश्रयः॥ २७॥

'सम्पूर्ण जगत्के स्वामी जनार्दन श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं और जिन्हें धर्मका आश्रय प्राप्त है, उनकी विजय क्यों न हो?॥ २७॥

(लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः।
येषां नाथो हृषीकेशः सर्वलोकविभुर्हरिः॥)

'अखिल विश्वके प्रभु और सबकी इन्द्रियोंके नियन्ता भगवान् श्रीहरि जिनके स्वामी और संरक्षक हैं, उन्हींको लाभ प्राप्त होता है और उन्हींकी विजय होती है। भला उनकी पराजय कैसे हो सकती है?।

भीष्मं द्रोणं च कर्णं च मद्रराजानमेव च।
तथान्यान् नृपतीन् वीरान् शतशोऽथ सहस्रशः॥ २८॥
कोऽन्यः शक्तो रणे जेतुमृते पार्थाद् युधिष्ठिरात्।
यस्य नाथो हृषीकेशः सदा सत्ययशोनिधिः॥ २९॥

'कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके सिवा दूसरा कौन ऐसा राजा है जो रणभूमिमें भीष्म, द्रोण, कर्ण, मद्रराज शल्य तथा अन्य सैकड़ों-हजारों नरपतियोंपर विजय प्राप्त कर सके। सदा सत्य और यशके सागर भगवान् श्रीकृष्ण जिनके स्वामी एवं रक्षक हैं, उन्हींको यह सफलता प्राप्त हो सकती है'॥

इत्येवं वदमानास्ते हर्षेण महता युताः।
प्रभग्नांस्तावकान् योधान् सृञ्जयाः पृष्ठतोऽन्वयुः॥ ३०॥

इस तरहकी बातें करते हुए सृंजयवीर अत्यन्त हर्षमें भरकर आपके भागते हुए योद्धाओंका पीछा करने लगे॥

धनंजयो रथानीकमभ्यवर्तत वीर्यवान्।
माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महारथः॥ ३१॥

इसी समय पराक्रमी अर्जुनने आपकी रथसेनापर धावा किया। साथ ही नकुल-सहदेव और महारथी सात्यकिने शकुनिपर चढ़ाई की॥ ३१॥

तान् प्रेक्ष्य द्रवतः सर्वान् भीमसेनभयार्दितान्।
दुर्योधनस्तदा सूतमब्रवीद् विजयाय च॥ ३२॥

भीमसेनके भयसे पीड़ित हुए अपने उन समस्त योद्धाओंको भागते देख दुर्योधनने विजयकी इच्छासे अपने सारथिसे कहा—॥ ३२॥

मामतिक्रमते पार्थो धनुष्पाणिमवस्थितम्।
जघने सर्वसैन्यानां ममाश्वान् प्रतिपादय॥ ३३॥

'सूत! मैं यहाँ हाथमें धनुष लिये खड़ा हूँ और अर्जुन मुझे लाँघ जानेकी चेष्टा कर रहे हैं। अतः तुम मेरे घोड़ोंको सारी सेनाके पिछले भागमें पहुँचा दो॥ ३३॥

जघने युध्यमानं हि कौन्तेयो मां समन्ततः।
नोत्सहेदभ्यतिक्रान्तुं वेलामिव महोदधिः॥ ३४॥

'पृष्ठभागमें रहकर युद्ध करते समय मुझे अर्जुन किसी ओरसे भी लाँघनेका साहस नहीं कर सकते। ठीक वैसे ही, जैसे महासागर अपने तटप्रान्तको नहीं लाँघ पाता है॥

पश्य सैन्यं महत् सूत पाण्डवैः समभिद्रुतम्।
सैन्यरेणुं समुद्धूतं पश्यस्वैनं समन्ततः॥ ३५॥

'सारथे! देखो, पाण्डव मेरी विशाल सेनाको खदेड़ रहे हैं और सैनिकोंके दौड़नेसे उठी हुई धूल जो सब ओर छा गयी है उसपर भी दृष्टिपात करो॥ ३५॥

सिंहनादांश्च बहुशः शृणु घोरान् भयावहान्।
तस्माद् याहि शनैः सूत जघनं परिपालय॥ ३६॥

'सूत! वह सुनो, बारंबार भय उत्पन्न करनेवाले घोर सिंहनाद हो रहे हैं। इसलिये तुम धीरे-धीरे चलो और सेनाके पृष्ठभागकी रक्षा करो॥ ३६॥

मयि स्थिते च समरे निरुद्धेषु च पाण्डुषु।
पुनरावर्तते तूर्णं मामकं बलमोजसा॥ ३७॥

'जब मैं समरांगणमें खड़ा होऊँगा और पाण्डवोंका बढ़ाव रुक जायगा, तब मेरी सेना पुनः शीघ्र ही लौट आयेगी और सारी शक्ति लगाकर युद्ध करेगी'॥ ३७॥

तच्छ्रुत्वा तव पुत्रस्य शूरार्यसदृशं वचः।
सारथिर्हेमसंछन्नान् शनैरश्वानचोदयत्॥ ३८॥

राजन्! आपके पुत्रका यह श्रेष्ठ वीरोचित वचन सुनकर सारथिने सोनेके साज-बाजसे सजे हुए घोड़ोंको धीरे-धीरे आगे बढ़ाया॥ ३८॥

गजाश्वरथिभिर्हीनास्त्यक्तात्मानः पदातयः।
एकविंशतिसाहस्राः संयुगायावतस्थिरे॥ ३९॥

उस समय वहाँ हाथीसवार, घुड़सवार तथा रथियोंसे रहित इक्कीस हजार केवल पैदल योद्धा अपने जीवनका मोह छोड़कर युद्धके लिये डट गये॥ ३९॥

नानादेशसमुद्भूता नानानगरवासिनः।
अवस्थितास्तदा योधाः प्रार्थयन्तो महद् यशः॥ ४०॥

वे अनेक देशोंमें उत्पन्न और अनेक नगरोंके निवासी वीर सैनिक महान् यशकी अभिलाषा रखते हुए वहाँ युद्ध करनेके लिये खड़े हुए थे॥ ४०॥

तेषामापततां तत्र संहृष्टानां परस्परम्।
सम्मर्दः सुमहान् जज्ञे घोररूपो भयानकः॥ ४१॥

परस्पर हर्षमें भरकर एक-दूसरेपर आक्रमण करनेवाले उभयपक्षके सैनिकोंका वह घोर एवं महान् संघर्ष बड़ा भयंकर हुआ॥ ४१॥

भीमसेनस्तदा राजन् धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः।
बलेन चतुरङ्गेण नानादेश्यानवारयत्॥ ४२॥

राजन्! उस समय भीमसेन और द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न चतुरंगिणी सेना साथ लेकर उन अनेकदेशीय सैनिकोंको रोकने लगे॥ ४२॥

भीममेवाभ्यवर्तन्त रणेऽन्ये तु पदातयः।
प्रक्ष्वेडयास्फोटय संहृष्टा वीरलोकं यियासवः॥ ४३॥

तब रणभूमिमें अन्य पैदल योद्धा हर्ष और

उत्साहमें भरकर भुजाओंपर ताल ठोंकते और सिंहनाद करते हुए वीरलोकमें जानेकी इच्छासे भीमसेनके ही सामने आ पहुँचे॥ ४३॥

आसाद्य भीमसेनं तु संरब्धा युद्धदुर्मदाः।
धार्तराष्ट्रा विनेदुर्हि नान्यामकथयन् कथाम्॥ ४४॥

भीमसेनके पास पहुँचकर वे रोषभरे रणदुर्मद कौरवयोद्धा केवल गर्जना करने लगे, मुँहसे दूसरी कोई बात नहीं कहते थे॥ ४४॥

परिवार्य रणे भीमं निजघ्नुस्ते समन्ततः।
स वध्यमानः समरे पदातिगणसंवृतः॥ ४५॥
न चचाल ततः स्थानान्मैनाक इव पर्वतः।

उन्होंने रणभूमिमें भीमसेनको चारों ओरसे घेरकर उनपर प्रहार आरम्भ कर दिया। समरांगणमें पैदल सैनिकोंसे घिरे हुए भीमसेन उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चोट सहते हुए भी मैनाक पर्वतके समान अपने स्थानसे विचिलित नहीं हुए॥ ४५ १/२ ॥

ते तु क्रुद्धा महाराज पाण्डवस्य महारथम्॥ ४६॥
निग्रहीतुं प्रवृत्ता हि योधांश्चान्यानवारयन्।

महाराज! वे सभी सैनिक कुपित हो पाण्डव महारथी भीमसेनको पकड़नेकी चेष्टामें संलग्न हो गये और दूसरे योद्धाओंको भी आगे बढ़नेसे रोकने लगे॥

अक्रुध्यत रणे भीमस्तैस्तदा पर्यवस्थितैः॥ ४७॥
सोऽवतीर्य रथात् तूर्णं पदातिः समवस्थितः।
जातरूपप्रतिच्छन्नां प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ ४८॥
अवधीत् तावकान् योधान् दण्डपाणिरिवान्तकः।

उनके इस प्रकार सब ओर खड़े होनेपर उस समय रणभूमिमें भीमसेनको बड़ा क्रोध हुआ। वे तुरंत अपने रथसे उतरकर पैदल खड़े हो गये और सोनेसे जड़ी हुई विशाल गदा हाथमें लेकर दण्डधारी यमराजके समान आपके उन योद्धाओंका संहार करने लगे॥ ४७-४८ १/२ ॥

विप्रहीणरथाश्वांस्तानवधीत् पुरुषर्षभः॥ ४९॥
एकविंशतिसाहस्त्रान् पदातीन् समपोथयत्।

रथ और घोड़ोंसे रहित उन इक्कीसों हजार पैदल सैनिकोंको पुरुषप्रवर भीमने गदासे मारकर धराशायी कर दिया॥ ४९ १/२ ॥

हत्वा तत् पुरुषानीकं भीमः सत्यपराक्रमः॥ ५०॥
धृष्टद्युम्नं पुरस्कृत्य नचिरात् प्रत्यदृश्यत।

सत्यपराक्रमी भीमसेन उस पैदल सेनाका संहार करके थोड़ी ही देरमें धृष्टद्युम्नको आगे किये दिखायी दिये॥

पादाता निहता भूमौ शिश्यिरे रुधिरोक्षिताः॥ ५१॥
सम्भग्ना इव वातेन कर्णिकाराः सुपुष्पिताः।

मारे गये पैदल सैनिक खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर सदाके लिये सो गये, मानो हवाके उखाड़े हुए सुन्दर लाल फूलोंसे भरे कनेरके वृक्ष पड़े हों॥ ५१ १/२ ॥

नानाशस्त्रसमायुक्ता नानाकुण्डलधारिणः॥ ५२॥
नानाजात्या हतास्तत्र नानादेशसमागताः।

वहाँ नाना देशोंसे आये हुए, नाना जातिके, नाना शस्त्र धारण किये और नाना प्रकारके कुण्डलधारी योद्धा मारे गये थे॥ ५२ १/२ ॥

पताकाध्वजसंछन्नं पदातीनां महद् बलम्॥ ५३॥
निकृत्तं विबभौ रौद्रं घोररूपं भयावहम्।

ध्वज और पताकाओंसे आच्छादित पैदलोंकी वह विशाल सेना छिन्न-भिन्न होकर रौद्र, घोर एवं भयानक प्रतीत होती थी॥ ५३ १/२ ॥

युधिष्ठिरपुरोगाश्च सहसैन्या महारथाः॥ ५४॥
अभ्यधावन् महात्मानं पुत्रं दुर्योधनं तव।

तत्पश्चात् सेनासहित युधिष्ठिर आदि महारथी आपके महामनस्वी पुत्र दुर्योधनकी ओर दौड़े॥ ५४ १/२ ॥

ते सर्वं तावकान् दृष्ट्वा महेष्वासाः पराङ्मुखान्॥ ५५॥
नात्यवर्तन्त ते पुत्रं वेलेव मकरालयम्।

आपके योद्धाओंको युद्धसे विमुख हो भागते देख वे सब महाधनुर्धर पाण्डव-महारथी आपके पुत्रको लाँघकर आगे नहीं बढ़ सके। जैसे तटभूमि समुद्रको आगे नहीं बढ़ने देती है (उसी प्रकार दुर्योधनने उन्हें अग्रसर नहीं होने दिया)॥ ५५ १/२ ॥

तदद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम्॥ ५६॥
यदेकं सहिताः पार्था न शेकुरतिवर्तितुम्।

उस समय हमलोगोंने आपके पुत्रका अद्भुत पराक्रम देखा कि कुन्तीके सभी पुत्र एक साथ प्रयत्न करनेपर भी उसे लाँघकर आगे न जा सके॥ ५६ १/२ ॥

नातिदूरापयातं तु कृतबुद्धिं पलायने॥ ५७॥
दुर्योधनः स्वकं सैन्यमब्रवीद् भृशविक्षतम्।

जब दुर्योधनने देखा कि मेरी सेना भागनेका निश्चय करके अभी अधिक दूर नहीं गयी है, तब उसने उन अत्यन्त घायल हुए सैनिकोंको पुकारकर कहा—॥

न तं देशं प्रपश्यामि पृथिव्यां पर्वतेषु च॥ ५८॥
यत्र यातान्न वा हन्युः पाण्डवाः किं सृतेन वः।

'अरे! इस तरह भागनेसे क्या लाभ है? मैं पृथ्वीमें या पर्वतोंपर ऐसा कोई स्थान नहीं देखता, जहाँ जानेपर तुम्हें पाण्डव मार न सकें॥ ५८ १/२ ॥

अल्पं च बलमेतेषां कृष्णौ च भृशविक्षतौ॥ ५९॥
यदि सर्वेऽत्र तिष्ठामो ध्रुवं नो विजयो भवेत्।

'अब तो इनके पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गयी है और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भी अत्यन्त घायल हो चुके हैं, ऐसी दशामें यदि हम सब लोग साहस करके डटे रहें तो हमारी विजय अवश्य होगी॥ ५९½॥

विप्रयातांस्तु वो भिन्नान् पाण्डवाः कृतविप्रियाः॥ ६०॥
अनुसृत्य हनिष्यन्ति श्रेयान्नः समरे वधः।

'तुम पाण्डवोंके अपराध तो कर ही चुके हो। यदि अलग-अलग होकर भागोगे तो पाण्डव पीछा करके तुम्हें अवश्य मार डालेंगे। ऐसी दशामें हमारे लिये संग्राममें मारा जाना ही श्रेयस्कर है॥ ६०½॥

शृण्वन्तु क्षत्रियाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः॥ ६१॥
यदा शूरं च भीरुं च मारयत्यन्तकः सदा।
को नु मूढो न युध्येत पुरुषः क्षत्रियो ध्रुवम्॥ ६२॥

'जितने क्षत्रिय यहाँ एकत्र हुए हैं, वे सब कान खोलकर सुन लें—जब शूरवीर और कायर सभीको सदा ही मौत मार डालती है, तब ऐसा कौन मूर्ख मनुष्य है, जो क्षत्रिय कहलाकर भी निश्चितरूपसे युद्ध नहीं करेगा॥ ६१-६२॥

श्रेयो नो भीमसेनस्य क्रुद्धस्याभिमुखे स्थितम्।
सुखः सांग्रामिको मृत्युः क्षत्रधर्मेण युध्यताम्॥ ६३॥

'अतः क्रोधमें भरे हुए भीमसेनके सामने डटे रहना ही हमारे लिये कल्याणकारी होगा। क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करनेवाले वीर पुरुषोंके लिये संग्राममें होनेवाली मृत्यु ही सुखद है॥ ६३॥

मर्त्येनावश्यमर्तव्यं गृहेष्वपि कदाचन।
युध्यतः क्षत्रधर्मेण मृत्युरेष सनातनः॥ ६४॥

'मरणधर्मा मनुष्यको कभी-न-कभी अवश्य मरना पड़ेगा। घरमें भी उससे छुटकारा नहीं है। अतः क्षत्रिय-धर्मके अनुसार युद्ध करते हुए ही जो मृत्यु होती है, यही क्षत्रियके लिये सनातन मृत्यु है॥ ६४॥

हत्वेह सुखमाप्नोति हतः प्रेत्य महत् फलम्।
न युद्धधर्माच्छ्रेयान् वै पन्थाः स्वर्गस्य कौरवाः॥ ६५॥
अचिरेणैव ताँल्लोकान् हतो युद्धे समश्नुते।

'कौरवो! वीर पुरुष शत्रुको मारकर इह लोकमें सुख भोगता है और यदि मारा गया तो वह परलोकमें जाकर महान् फलका भागी होता है; अतः युद्धधर्मसे बढ़कर स्वर्गकी प्राप्तिके लिये दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है। युद्धमें मारा गया वीर पुरुष थोड़ी ही देरमें उन प्रसिद्ध पुण्यलोकोंमें जाकर सुख भोगता है'॥ ६५½॥

श्रुत्वा तद् वचनं तस्य पूजयित्वा च पार्थिवाः॥ ६६॥
पुनरेवाभ्यवर्तन्त पाण्डवानाततायिनः।

दुर्योधनकी यह बात सुनकर सब राजा उसका आदर करते हुए पुनः आततायी पाण्डवोंका सामना करनेके लिये लौट आये॥ ६६½॥

तानापतत एवाशु व्यूढानीकाः प्रहारिणः॥ ६७॥
प्रत्युद्ययुस्तदा पार्था जयगृद्धाः प्रमन्यवः।

उनके आक्रमण करते ही अपनी सेनाका व्यूह बनाकर प्रहारकुशल, विजयाभिलाषी तथा बढ़े हुए क्रोधवाले पाण्डव शीघ्र ही उनका सामना करनेके लिये आगे बढ़े॥ ६७½॥

धनंजयो रथेनाजावभ्यवर्तत वीर्यवान्॥ ६८॥
विश्रुतं त्रिषु लोकेषु व्याक्षिपन् गाण्डिवं धनुः।

पराक्रमी अर्जुन अपने त्रिलोकविख्यात गाण्डीव धनुषकी टंकार करते हुए रथके द्वारा युद्धके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ ६८½॥

माद्रीपुत्रौ च शकुनिं सात्यकिश्च महाबलः॥ ६९॥
जवेनाभ्यपतन् हृष्टा यत्ता वै तावकं बलम्॥ ७०॥

माद्रीपुत्र नकुल-सहदेव और महाबली सात्यकिने शकुनिपर धावा किया। ये सब लोग हर्ष और उत्साहमें भरकर बड़ी सावधानीके साथ आपकी सेनापर वेगपूर्वक टूट पड़े॥ ६९-७०॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक
उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ७१ श्लोक हैं।)

विंशोऽध्यायः

धृष्टद्युम्नद्वारा राजा शाल्वके हाथीका और सात्यकिद्वारा राजा शाल्वका वध

संजय उवाच

संनिवृत्ते जनौघे तु शाल्वो म्लेच्छगणाधिपः।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः पाण्डवानां महद् बलम्॥ १॥
आस्थाय सुमहानागं प्रभिन्नं पर्वतोपमम्।
दृप्तमैरावतप्रख्यमभित्रगणमर्दनम्॥ २॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब कौरवपक्षका जनसमूह

पुनः युद्धके लिये लौट आया, उस समय म्लेच्छोंका राजा शाल्व अत्यन्त क्रुद्ध हो मदकी धारा बहानेवाले, पर्वतके समान विशालकाय, अभिमानी तथा ऐरावतके सदृश शत्रुसमुदायका संहार करनेमें समर्थ एक महान् गजराजपर आरूढ़ हो पाण्डवोंकी विशाल सेनाका सामना करनेके लिये आया॥ १-२॥

योऽसौ महाभद्रकुलप्रसूतः
सुपूजितो धार्तराष्ट्रेण नित्यम्।
सुकल्पितः शास्त्रविनिश्चयज्ञैः
सदोपवाह्यः समरेषु राजन्॥ ३॥

राजन्! वह हाथी महाभद्र नामक गजराजके कुलमें उत्पन्न हुआ था। धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनने नित्य ही उसका आदर किया था, गजशास्त्रके ज्ञाता पुरुषोंने उसे अच्छी तरह सजाया था और सदा ही युद्धके अवसरोंपर वह सवारीके उपयोगमें लाया जाता था॥ ३॥

तमास्थितो राजवरो बभूव
यथोदयस्थः सविता क्षपान्ते।
स तेन नागप्रवरेण राज-
न्नभ्युद्ययौ पाण्डुसुतान् समेतान्॥ ४॥
शितैः पृषत्कैर्विददार वेगै-
र्महेन्द्रवज्रप्रतिमैः सुघोरैः।

राजाओंमें श्रेष्ठ शाल्व उस गजराजपर बैठकर प्रातःकाल उदयाचलपर स्थित हुए सूर्यदेवके समान सुशोभित होने लगा। महाराज! वह उस श्रेष्ठ हाथीके द्वारा वहाँ एकत्र हुए समस्त पाण्डवोंपर चढ़ आया और इन्द्रके वज्रकी भाँति अत्यन्त भयंकर तीखे बाणोंसे उन सबको वेगपूर्वक विदीर्ण करने लगा॥ ४½॥

ततः शरान् वै सृजतो महारणे
योधांश्च राजन् नयतो यमालयम्॥ ५॥
नास्यान्तरं ददृशुः स्वे परे वा
यथा पुरा वज्रधरस्य दैत्याः।
ऐरावणस्थस्य चमूविमर्दे-
दैत्याः पुरा वासवस्येव राजन्॥ ६॥

राजन्! जैसे पूर्वकालमें ऐरावतपर बैठकर शत्रु-सेनाका संहार करते हुए वज्रधारी इन्द्रके बाण छोड़ने और विपक्षीको मार गिरानेके अन्तरको दैत्य और देवता नहीं देख पाते थे, उसी प्रकार उस महासमरमें शाल्वके बाण छोड़ने तथा सैनिकोंको यमलोक पहुँचानेमें कितनी देर लगती है, इसे अपने या शत्रुपक्षके योद्धा नहीं देख सके॥

ते पाण्डवाः सोमकाः सृञ्जयाश्च
तमेकनागं ददृशुः समन्तात्।
सहस्रशो वै विचरन्तमेकं
यथा महेन्द्रस्य गजं समीपे॥ ७॥

इन्द्रके ऐरावत हाथीकी भाँति म्लेच्छराजका वह गजराज यद्यपि रणभूमिमें अकेला ही निकट विचर रहा था, तो भी पाण्डव, सृंजय और सोमकयोद्धा उसे सहस्रोंकी संख्यामें देखते थे। उन्हें सब ओर वही वह दिखायी देता था॥ ७॥

संद्राव्यमाणं तु बलं परेषां
परीतकल्पं विबभौ समन्ततः।
नैवावतस्थे समरे भृशं भयाद्
विमृद्यमानं तु परस्परं तदा॥ ८॥

उस हाथीके द्वारा खदेड़ी जाती हुई वह सेना सब ओरसे घिरी हुई-सी जान पड़ती थी। अत्यन्त भयके कारण वह समरभूमिमें ठहर न सकी। उस समय सभी सैनिक आपसमें ही धक्के खाकर कुचले जाने लगे॥ ८॥

ततः प्रभग्ना सहसा महाचमूः
सा पाण्डवी तेन नराधिपेन।
दिशश्चतस्रः सहसा विधाविता
गजेन्द्रवेगं तमपारयन्ती॥ ९॥
दृष्ट्वा च तां वेगवतीं प्रभग्नां
सर्वे त्वदीया युधि योधमुख्याः।
अपूजयंस्ते तु नराधिपं तं
दध्मुश्च शङ्खान् शशिसंनिकाशान्॥ १०॥

म्लेच्छराज शाल्वने पाण्डवोंकी उस विशाल सेनामें सहसा भगदड़ मचा दी। उस गजराजके वेगको सहन न कर सकनेके कारण वह सेना तत्काल चारों दिशाओंमें भाग चली! उस वेगशालिनी सेनाको भागती देख युद्धस्थलमें खड़े हुए आपके सभी प्रधान-प्रधान योद्धा म्लेच्छराज शाल्वकी प्रशंसा करने और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल शंख बजाने लगे॥ ९-१०॥

श्रुत्वा निनादं त्वथ कौरवाणां
हर्षाद् विमुक्तं सह शङ्खशब्दैः।
सेनापतिः पाण्डवसृञ्जयानां
पाञ्चालपुत्रो ममृषे न कोपात्॥ ११॥

शंखध्वनिके साथ कौरवोंका वह हर्षनाद सुनकर पाण्डवों और सृंजयोंके सेनापति पांचालराजकुमार धृष्टद्युम्न क्रोधपूर्वक उसे सहन न कर सके॥ ११॥

ततस्तु तं वै द्विरदं महात्मा
प्रत्युद्ययौ त्वरमाणे जयाय।
जम्भो यथा शक्रसमागमे वै
नागेन्द्रमैरावणमिन्द्रवाह्यम् ॥ १२॥

तदनन्तर उन महामनस्वी धृष्टद्युम्नने बड़ी उतावलीके साथ विजय प्राप्त करनेके लिये उस हाथीपर चढ़ाई की। जैसे इन्द्रके साथ युद्ध छिड़नेपर जम्भासुरने इन्द्रवाहन नागराज ऐरावतपर धावा किया था॥ १२॥

तमापतन्तं सहसा तु दृष्ट्वा
पाञ्चालपुत्रं युधि राजसिंहः।
तं वै द्विपं प्रेषयामास तूर्णं
वधाय राजन् द्रुपदात्मजस्य॥ १३॥

राजन्! पांचालपुत्र धृष्टद्युम्नको युद्धमें सहसा आक्रमण करते देख नृपश्रेष्ठ शाल्वने उस हाथीको उनके वधके लिये तुरंत ही उनकी ओर बढ़ाया॥ १३॥

स तं द्विपेन्द्रं सहसा पतन्त-
मविध्यदग्निप्रतिमैः पृषत्कैः।
कर्मारधौतैर्निशितैर्ज्वलद्भि-
र्नाराचमुख्यैस्त्रिभिरुग्रवेगैः॥ १४॥

उस नागराजको सहसा आते देख धृष्टद्युम्नने अग्निके समान प्रज्वलित, कारीगरके साफ किये हुए, तेजधारवाले, तीन भयंकर वेगशाली उत्तम नाराचोंद्वारा घायल कर दिया॥ १४॥

ततोऽपरान् पञ्चशतान् महात्मा
नाराचमुख्यान् विससर्ज कुम्भे।
स तैस्तु विद्धः परमद्विपो रणे
तदा परावृत्य भृशं प्रदुद्रुवे॥ १५॥

तत्पश्चात् महामना धृष्टद्युम्नने उसके कुम्भस्थलको लक्ष्य करके पाँच सौ उत्तम नाराच और छोड़े। उनके द्वारा अत्यन्त घायल हुआ वह महान् गजराज युद्धसे मुँह मोड़कर वेगपूर्वक भागने लगा॥ १५॥

तं नागराजं सहसा प्रणुन्नं
विद्राव्यमाणं विनिवर्त्य शाल्वः।
तोत्राङ्कुशैः प्रेषयामास तूर्णं
पाञ्चालराजस्य रथं प्रदिश्य॥ १६॥

उस नागराजको सहसा पीड़ित होकर भागते देख शाल्वराजने पुनः युद्धकी ओर लौटाया और पीड़ा देनेवाले अंकुशोंसे मारकर उसे तुरंत ही पांचालराजके रथकी ओर दौड़ाया॥ १६॥

दृष्ट्वाऽऽपतन्तं सहसा तु नागं
धृष्टद्युम्नः स्वरथाच्छीघ्रमेव।
गदां प्रगृह्योग्रजवेन वीरो
भूमिं प्रपन्नो भयविह्वलाङ्गः॥ १७॥

हाथीको सहसा आक्रमण करते देख वीर धृष्टद्युम्न हाथमें गदा ले शीघ्र ही अत्यन्त वेगपूर्वक अपने रथसे कूदकर पृथ्वीपर आ गये। उस समय उनके सारे अंग भयसे व्याकुल हो रहे थे॥ १७॥

स तं रथं हेमविभूषिताङ्गं
साश्वं ससूतं सहसा विमृद्य।
उत्क्षिप्य हस्तेन नदन् महाद्विपो
विपोथयामास वसुन्धरातले॥ १८॥

गर्जना करते हुए उस विशालकाय हाथीने धृष्टद्युम्नके उस सुवर्णभूषित रथको घोड़ों और सारथि-सहित सहसा कुचल डाला और सूँड़से ऊपर उठाकर पृथ्वीपर दे मारा॥ १८॥

पाञ्जालराजस्य सुतं च दृष्ट्वा
तदार्दितं नागवरेण तेन।
तमभ्यधावत् सहसा जवेन
भीमः शिखण्डी च शिनेश्च नप्ता॥ १९॥

पांचालराजकुमार धृष्टद्युम्नको उस गजराजके द्वारा पीड़ित हुआ देख भीमसेन, शिखण्डी और सात्यकि सहसा बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़े॥ १९॥

शरैश्च वेगं सहसा निगृह्य
तस्याभितो व्यापततो गजस्य।
स संगृहीतो रथिभिर्गजो वै
चचाल तैर्वार्यमाणश्च संख्ये॥ २०॥

उन रथियोंने सब ओर आक्रमण करनेवाले उस हाथीके वेगको सहसा अपने बाणोंद्वारा अवरुद्ध कर दिया। उनके द्वारा अपनी प्रगति रुक जानेके कारण वह निगृहीत-सा होकर विचलित हो उठा॥ २०॥

ततः पृषत्कान् प्रववर्ष राजा
सूर्यो यथा रश्मिजालं समन्तात्।
तैराशुगैर्वध्यमाना रथौघाः
प्रदुद्रुवुः सहितास्तत्र तत्र॥ २१॥

तदनन्तर जैसे सूर्यदेव सब ओर अपनी किरणोंका प्रसार करते हैं, उसी प्रकार राजा शाल्वने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। उन शीघ्रगामी बाणोंकी मार खाकर वे पाण्डव रथी एक साथ इधर-उधर भागने लगे॥ २१॥

तत् कर्म शाल्वस्य समीक्ष्य सर्वे
पाञ्चालपुत्रा नृप सृञ्जयाश्च।
हाहाकारैर्नादयन्ति स्म युद्धे
द्विपं समन्ताद् रुरुधुर्नराग्र्याः॥ २२॥

नरेश्वर! शाल्वका वह पराक्रम देखकर समस्त नरश्रेष्ठ पांचाल तथा सृंजय अपने हाहाकारोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगे। उन्होंने युद्धभूमिमें उस हाथीको चारों ओरसे घेर लिया॥ २२॥

पाञ्चालपुत्रस्त्वरितस्तु शूरो
गदां प्रगृह्याचलशृङ्गकल्पाम्।
ससम्भ्रमं भारत शत्रुघाती
जवेन वीरोऽनुससार नागम्॥ २३॥

भारत! इसी समय शत्रुघाती शूरवीर पांचालराजकुमार धृष्टद्युम्नने तुरंत ही पर्वतशिखरके समान विशाल गदा हाथमें लेकर बड़े वेगसे उस हाथीपर आक्रमण किया॥

ततस्तु नागं धरणीधराभं
मदं स्रवन्तं जलदप्रकाशम्।
गदां समाविद्ध्य भृशं जघान
पाञ्चालराजस्य सुतस्तरस्वी॥ २४॥

पांचालराजके वेगवान् पुत्रने मेघोंके समान मदकी वर्षा करनेवाले उस पर्वताकार गजराजपर अपनी गदा घुमाकर बड़े वेगसे प्रहार किया॥ २४॥

स भिन्नकुम्भः सहसा विनद्य
मुखात् प्रभूतं क्षतजं विमुञ्चन्।
पपात नागो धरणीधराभः
क्षितिप्रकम्पाच्चलितो यथाद्रिः॥ २५॥

गदाके आघातसे हाथीका कुम्भस्थल फट गया और वह पर्वतके समान विशालकाय गजराज सहसा चीत्कार करके मुँहसे रक्तवमन करता हुआ गिर पड़ा, मानो भूकम्प आनेसे कोई पहाड़ ढह गया हो॥ २५॥

निपात्यमाने तु तदा गजेन्द्रे
हाहाकृते तव पुत्रस्य सैन्ये।
स शाल्वराजस्य शिनिप्रवीरो
जहार भल्लेन शिरः शितेन॥ २६॥

जब वह गजराज गिराया जाने लगा, उस समय आपके पुत्रकी सेनामें हाहाकार मच गया। इतनेहीमें शिनिवंशके प्रमुख वीर सात्यकिने एक तीखे भल्लसे शाल्वराजका सिर काट दिया॥ २६॥

हृतोत्तमाङ्गो युधि सात्वतेन
पपात भूमौ सह नागराज्ञा।
यथाद्रिशृङ्गं सुमहत् प्रणुन्नं
वज्रेण देवाधिपचोदितेन॥ २७॥

रणभूमिमें सात्यकिद्वारा मस्तक कट जानेपर शाल्वराज भी उस गजराजके साथ ही धराशायी हो गया, मानो देवराज इन्द्रके चलाये हुए वज्रसे कटकर कोई विशाल पर्वतशिखर पृथ्वीपर गिर पड़ा हो॥ २७॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शाल्ववधे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शाल्वका वधविषयक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

एकविंशोऽध्यायः

सात्यकिद्वारा क्षेमधूर्तिका वध, कृतवर्माका युद्ध और उसकी पराजय एवं कौरवसेनाका पलायन

संजय उवाच

तस्मिंस्तु निहते शूरे शाल्वे समितिशोभने।
तवाभज्यद् बलं वेगाद् वातेनेव महाद्रुमः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! युद्धमें शोभा पानेवाले शूरवीर शाल्वके मारे जानेपर आपकी सेनाके पाँव उखड़ गये। जैसे वेगपूर्वक चली हुई वायुके झोंकेसे कोई विशाल वृक्ष उखड़ गया हो॥ १॥

तत् प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कृतवर्मा महारथः।
दधार समरे शूरः शत्रुसैन्यं महाबलः॥ २॥

अपनी सेनाका व्यूह भंग हुआ देखकर महाबलवान् महारथी शूरवीर कृतवर्माने समरांगणमें शत्रुकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ २॥

सनिवृत्तास्तु ते शूरा दृष्ट्वा सात्वतमाहवे।
शैलोपमं स्थिरं राजन् कीर्यमाणं शरैर्युधि॥ ३॥

राजन्! कृतवर्माको युद्धस्थलमें डटा हुआ देख वे भागे हुए शूरमा भी लौट आये। युद्धस्थलमें बाणोंकी वर्षासे आच्छादित होनेपर भी वह सात्वतवंशी वीर पर्वतके समान अविचलभावसे खड़ा था॥ ३॥

ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह।
निवृत्तानां महाराज मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्॥ ४॥

महाराज! तदनन्तर लौटे हुए कौरवोंका पाण्डवोंके साथ मृत्युको ही युद्धसे निवृत्तिकी सीमा नियत करके घोर संग्राम होने लगा॥ ४॥

तत्राश्चर्यमभूद् युद्धं सात्वतस्य परैः सह।
यदेको वारयामास पाण्डुसेनां दुरासदाम्॥ ५॥

वहाँ कृतवर्माका शत्रुओंके साथ होनेवाला युद्ध अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रतीत होता था; क्योंकि उसने अकेले ही दुर्जय पाण्डव-सेनाकी प्रगति रोक दी थी॥

तेषामन्योन्यसुहृदां कृते कर्मणि दुष्करे।
सिंहनादः प्रहृष्टानां दिविस्पृक् सुमहानभूत्॥ ६॥

एक-दूसरेका हित चाहनेवाले कौरवसैनिक कृतवर्माके द्वारा यह दुष्कर पराक्रम किये जानेपर अत्यन्त हर्षमें भर गये। उनका महान् सिंहनाद आकाशमें गूँज उठा॥ ६॥

तेन शब्देन वित्रस्ताः पञ्चाला भरतर्षभ।
शिनेर्नप्ता महाबाहुरन्वपद्यत सात्यकिः॥ ७॥

भरतश्रेष्ठ! उनकी उस गर्जनासे पांचाल-सैनिक थर्रा उठे। उस समय शिनिपौत्र महाबाहु सात्यकि उन शत्रुओंका सामना करनेके लिये आये॥ ७॥

स समासाद्य राजानं क्षेमधूर्तिं महाबलम्।
सप्तभिर्निशितैर्बाणैरनयद् यमसादनम्॥ ८॥

उन्होंने आते ही महाबली राजा क्षेमधूर्तिको सात पैने बाणोंसे मारकर यमलोक पहुँचा दिया॥ ८॥

तमायान्तं महाबाहुं प्रवपन्तं शितान् शरान्।
जवेनाभ्यपतद् धीमान् हार्दिक्यः शिनिपुङ्गवम्॥ ९॥

तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए शिनिपौत्र महाबाहु सात्यकिको आते देख बुद्धिमान् कृतवर्मा बड़े वेगसे उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा॥ ९॥

सात्वतौ च महावीर्यौ धन्विनौ रथिनां वरौ।
अन्योन्यमभ्यधावेतां शस्त्रप्रवरधारिणौ॥ १०॥

फिर तो उत्तम अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, रथियोंमें श्रेष्ठ, महापराक्रमी, धनुर्धर वीर सात्वतवंशी सात्यकि और कृतवर्मा एक-दूसरेपर धावा करने लगे॥

पाण्डवाः सहपञ्चाला योधाश्चान्ये नृपोत्तमाः।
प्रेक्षकाः समपद्यन्त तयोर्घोरे समागमे॥ ११॥

उन दोनोंके घोर संग्राममें पांचालोंसहित पाण्डव और दूसरे नृपश्रेष्ठ योद्धा दर्शक होकर तमाशा देखने लगे॥

नाराचैर्वत्सदन्तैश्च वृष्ण्यन्धकमहारथौ।
अभिजघ्नतुरन्योन्यं प्रहृष्टाविव कुञ्जरौ॥ १२॥

वृष्णि और अन्धकवंशके वे दोनों वीर महारथी हर्षमें भरकर लड़ते हुए दो हाथियोंके समान एक-दूसरेपर नाराचों और वत्सदन्तोंका प्रहार करने लगे॥

चरन्तौ विविधान् मार्गान् हार्दिक्यशिनिपुङ्गवौ।
मुहुरन्तर्दधाते तौ बाणवृष्ट्या परस्परम्॥ १३॥

कृतवर्मा और सात्यकि दोनों नाना प्रकारके पैंतरे दिखाते हुए विचरते थे और बारंबार बाणोंकी वर्षा करके वे एक-दूसरेको अदृश्य कर देते थे॥ १३॥

चापवेगबलोद्धूतान् मार्गणान् वृष्णिसिंहयोः।
आकाशे समपश्याम पतङ्गानिव शीघ्रगान्॥ १४॥

वृष्णिवंशके उन दोनों सिंहोंके धनुषके वेग और बलसे चलाये हुए शीघ्रगामी बाणोंको हम आकाशमें छाये हुए टिड्डीदलोंके समान देखते थे॥ १४॥

तमेकं सत्यकर्माणमासाद्य हृदिकात्मजः।
अविध्यन्निशितैर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान्॥ १५॥

कृतवर्माने अद्वितीय वीर सत्यपराक्रमी सात्यकिके पास पहुँचकर चार पैने बाणोंसे उनके चारों घोड़ोंको घायल कर दिया॥ १५॥

स दीर्घबाहुः संक्रुद्धस्तोत्रार्दित इव द्विपः।
अष्टभिः कृतवर्माणमविद्ध्यत् परमेषुभिः॥ १६॥

तब महाबाहु सात्यकिने अंकुशोंकी चोट खाये हुए गजराजके समान अत्यन्त क्रोधमें भरकर आठ उत्तम बाणोंद्वारा कृतवर्माको घायल कर दिया॥ १६॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः कृतवर्मा शिलाशितैः।
सात्यकिं त्रिभिराहत्य धनुरेकेन चिच्छिदे॥ १७॥

यह देख कृतवर्माने धनुषको पूर्णतः खींचकर छोड़े गये और शिलापर तेज किये हुए तीन बाणोंसे सात्यकिको घायल करके एकसे उनके धनुषको काट डाला॥ १७॥

निकृत्तं तद् धनुः श्रेष्ठमपास्य शिनिपुङ्गवः।
अन्यदादत्त वेगेन शैनेयः सशरं धनुः॥ १८॥

उस कटे हुए श्रेष्ठ धनुषको फेंककर शिनिप्रवर सात्यकिने बाणसहित दूसरे धनुषको वेगपूर्वक हाथमें ले लिया॥ १८॥

तदादाय धनुः श्रेष्ठं वरिष्ठः सर्वधन्विनाम्।
आरोप्य च धनुः शीघ्रं महावीर्यो महाबलः॥ १९॥
अमृष्यमाणो धनुषश्छेदनं कृतवर्मणा।
कुपितोऽतिरथः शीघ्रं कृतवर्माणमभ्ययात्॥ २०॥

सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ महाबली एवं महापराक्रमी युयुधानने उस उत्तम धनुषको लेकर शीघ्र ही उसपर बाण चढ़ाया और कृतवर्माके द्वारा अपने धनुषका काटा जाना सहन न करके उन अतिरथी वीरने कुपित हो शीघ्रतापूर्वक उसपर आक्रमण किया॥ १९-२०॥

ततः सुनिशितैर्बाणैर्दशभिः शिनिपुङ्गवः।
जघान सूतं चाश्वांश्च ध्वजं च कृतवर्मणः॥ २१॥

तत्पश्चात् शिनिप्रवर सात्यकिने अत्यन्त तीखे दस बाणोंके द्वारा कृतवर्माके ध्वज, सारथि और घोड़ोंको नष्ट कर दिया॥ २१॥

ततो राजन् महेष्वासः कृतवर्मा महारथः।
हताश्वसूतं सम्प्रेक्ष्य रथं हेमपरिष्कृतम्॥ २२॥
रोषेण महताऽऽविष्टः शूलमुद्यम्य मारिष।
चिक्षेप भुजवेगेन जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्॥ २३॥

राजन्! महाधनुर्धर महारथी कृतवर्मा अपने सुवर्ण-भूषित रथको घोड़े और सारथिसे रहित देख महान् रोषसे भर गया। मान्यवर! फिर उसने शिनिप्रवर सात्यकिको

मार डालनेकी इच्छासे एक शूल उठाकर उसे अपनी भुजाओंके सम्पूर्ण वेगसे चला दिया॥ २२-२३॥

तच्छूलं सात्वतो ह्याजौ निर्भिद्य निशितैः शरैः।
चूर्णितं पातयामास मोहयन्निव माधवम्॥ २४॥

परंतु सात्यकिने युद्धस्थलमें अपने पैने बाणोंद्वारा उस शूलको काटकर चकनाचूर कर दिया और कृतवर्माको मोहमें डालते हुए-से उस चूर-चूर हुए शूलको पृथ्वीपर गिरा दिया॥ २४॥

ततोऽपरेण भल्लेन हृद्येनं समताडयत्।
स युद्धे युयुधानेन हताश्वो हतसारथिः॥ २५॥
कृतवर्मा कृतस्तेन धरणीमन्वपद्यत।

इसके बाद उन्होंने कृतवर्माकी छातीमें एक भल्लद्वारा गहरी चोट पहुँचायी। तब वह युयुधानद्वारा घोड़ों और सारथिसे रहित किया हुआ कृतवर्मा रथ छोड़कर युद्धस्थलमें पृथ्वीपर खड़ा हो गया॥ २५½॥

तस्मिन् सात्यकिना वीरे द्वैरथे विरथीकृते॥ २६॥
समपद्यत सर्वेषां सैन्यानां सुमहद् भयम्।

उस द्वैरथ युद्धमें सात्यकिद्वारा वीर कृतवर्माके रथहीन हो जानेपर आपके सारे सैनिकोंके मनमें महान् भय समा गया॥ २६½॥

पुत्रस्य तव चात्यर्थं विषादः समजायत॥ २७॥
हतसूते हताश्वे तु विरथे कृतवर्मणि।

जब कृतवर्माके घोड़े और सारथि मारे गये तथा वह रथहीन हो गया, तब आपके पुत्र दुर्योधनके मनमें बड़ा खेद हुआ॥ २७½॥

हताश्वं च समालक्ष्य हतसूतमरिंदम॥ २८॥
अभ्यधावत् कृपो राजन् जिघांसुः शिनिपुङ्गवम्।

शत्रुदमन नरेश! कृतवर्माके घोड़ों और सारथिको मारा गया देख कृपाचार्य सात्यकिको मार डालनेकी इच्छासे वहाँ दौड़े हुए आये॥ २८½॥

तमारोप्य रथोपस्थे मिषतां सर्वधन्विनाम्॥ २९॥
अपोवाह महाबाहुं तूर्णमायोधनादपि।

फिर सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते महाबाहु कृतवर्माको अपने रथपर बिठाकर वे उसे तुरंत ही युद्धस्थलसे दूर हटा ले गये॥ २९½॥

शैनेयेऽधिष्ठिते राजन् विरथे कृतवर्मणि॥ ३०॥
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत् पराङ्मुखम्।

राजन्! जब सात्यकि युद्धके लिये डटे रहे और कृतवर्मा रथहीन होकर भाग गया, तब दुर्योधनकी सारी सेना पुनः युद्धसे विमुख हो वहाँसे पलायन करने लगी॥ ३०½॥

तत् परे नान्वबुध्यन्त सैन्येन रजसा वृताः॥ ३१॥
तावकाः प्रद्रुता राजन् दुर्योधनमृते नृपम्।

परंतु सेनाद्वारा उड़ायी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण शत्रुओंके सैनिक कौरव-सेनाके भागनेकी बात न जान सके। राजन्! राजा दुर्योधनके सिवा, आपके सभी योद्धा वहाँसे भाग गये॥ ३१½॥

दुर्योधनस्तु सम्प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात्॥ ३२॥
जवेनाभ्यपतत् तूर्णं सर्वांश्चैको न्यवारयत्।

दुर्योधन अपनी सेनाको निकटसे भागती देख बड़े वेगसे शत्रुओंपर टूट पड़ा और उन सबको अकेले ही शीघ्रतापूर्वक रोकने लगा॥ ३२½॥

पाण्डूंश्च सर्वान् संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं च पार्षतम्॥ ३३॥
शिखण्डिनं द्रौपदेयान् पञ्चालानां च ये गणाः।
केकयान् सोमकांश्चैव सृञ्जयांश्चैव मारिष॥ ३४॥
असम्भ्रमं दुराधर्षः शितैर्बाणैरवाकिरत्।
अतिष्ठदाहवे यत्तः पुत्रस्तव महाबलः॥ ३५॥

माननीय नरेश! उस समय क्रोधमें भरा हुआ आपका महाबली पुत्र दुर्धर्ष दुर्योधन सावधान हो बिना किसी घबराहटके समस्त पाण्डवों, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदीके पाँचों पुत्रों, पांचालों, केकयों, सोमकों और सृंजयोंपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगा तथा निर्भय होकर युद्धभूमिमें डटा रहा॥ ३३—३५॥

यथा यज्ञे महानग्निर्मन्त्रपूतः प्रकाशवान्।
तथा दुर्योधनो राजा संग्रामे सर्वतोऽभवत्॥ ३६॥

जैसे यज्ञमें मन्त्रोंद्वारा पवित्र हुए महान् अग्निदेव प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार संग्राममें राजा दुर्योधन सब ओरसे देदीप्यमान हो रहा था॥ ३६॥

तं परे नाभ्यवर्तन्त मर्त्या मृत्युमिवाहवे।
अथान्यं रथमास्थाय हार्दिक्यः समपद्यत॥ ३७॥

जैसे मरणधर्मा मनुष्य अपनी मृत्युका उल्लंघन नहीं कर सकते, उसी प्रकार युद्धभूमिमें शत्रुसैनिक राजा दुर्योधनका सामना न कर सके। इतनेहीमें कृतवर्मा दूसरे रथपर आरूढ़ होकर वहाँ आ पहुँचा॥ ३७॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सात्यिककृतवर्मयुद्धे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें सात्यकि और कृतवर्माका युद्धविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

द्राविंशोऽध्यायः

दुर्योधनका पराक्रम और उभयपक्षकी सेनाओंका घोर संग्राम

संजय उवाच

पुत्रस्तु ते महाराज रथस्थो रथिनां वरः।
दुरुत्सहो बभौ युद्धे यथा रुद्रः प्रतापवान्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! रथपर बैठा हुआ रथियोंमें श्रेष्ठ आपका प्रतापी पुत्र दुर्योधन रुद्रदेवके समान युद्धमें शत्रुओंके लिये दुःसह प्रतीत होने लगा॥

तस्य बाणसहस्रैस्तु प्रच्छन्ना ह्यभवन्मही।
परांश्च सिषिचे बाणैर्धाराभिरिव पर्वतान्॥ २॥

उसके सहस्रों बाणोंसे वहाँकी सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी। जैसे मेघ जलकी धाराओंसे पर्वतको सींचते हैं, उसी प्रकार वह शत्रुओंको अपनी बाणधारासे नहलाने लगा॥ २॥

न च सोऽस्ति पुमान् कश्चित् पाण्डवानां बलार्णवे।
हयो गजो रथो वापि यः स्याद् बाणैरविक्षतः॥ ३॥

पाण्डवोंके सैन्यसागरमें कोई भी ऐसा मनुष्य, घोड़ा, हाथी अथवा रथ नहीं था, जो दुर्योधनके बाणोंसे क्षत-विक्षत न हुआ हो॥ ३॥

यं यं हि समरे योधं प्रपश्यामि विशाम्पते।
स स बाणैश्चितोऽभूद् वै पुत्रेण तव भारत॥ ४॥

प्रजानाथ! भरतनन्दन! मैं समरांगणमें जिस-जिस योद्धाको देखता था, वही-वही आपके पुत्रके बाणोंसे व्याप्त हुआ दिखायी देता था॥ ४॥

यथा सैन्येन रजसा समुद्धूतेन वाहिनी।
प्रत्यदृश्यत संछन्ना तथा बाणैर्महात्मनः॥ ५॥

जैसे सैनिकोंद्वारा उड़ायी हुई धूलसे सारी सेना आच्छादित हो गयी थी, उसी प्रकार वह महामनस्वी दुर्योधनके बाणोंसे ढकी दिखायी देती थी॥ ५॥

बाणभूतामपश्याम पृथिवीं पृथिवीपते।
दुर्योधनेन प्रकृतां क्षिप्रहस्तेन धन्विना॥ ६॥

पृथ्वीपते! हमने देखा कि शीघ्रतापूर्वक हाथ चलानेवाले धनुर्धर वीर दुर्योधनने सारी रणभूमिको बाणमयी कर दिया है॥ ६॥

तेषु योधसहस्रेषु तावकेषु परेषु च।
एको दुर्योधनो ह्यासीत् पुमानिति मतिर्मम॥ ७॥

आपके या शत्रुपक्षके सहस्रों योद्धाओंमें मुझे एकमात्र दुर्योधन ही वीर पुरुष जान पड़ता था॥ ७॥

तत्राद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य विक्रमम्।
यदेकं सहिताः पार्था नाभ्यवर्तन्त भारत॥ ८॥

भारत! हमने वहाँ आपके पुत्रका यह अद्भुत पराक्रम देखा कि समस्त पाण्डव एक साथ मिलकर भी उस एकाकी वीरका सामना नहीं कर सके॥ ८॥

युधिष्ठिरं शतेनाजौ विव्याध भरतर्षभ।
भीमसेनं च सप्तत्या सहदेवं च पञ्चभिः॥ ९॥
नकुलं च चतुःषष्ट्या धृष्टद्युम्नं च पञ्चभिः।
सप्तभिर्द्रौपदेयांश्च त्रिभिर्विव्याध सात्यकिम्॥ १०॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सहदेवस्य मारिष।

भरतश्रेष्ठ! उसने युद्धस्थलमें युधिष्ठिरको सौ, भीमसेनको सत्तर, सहदेवको पाँच, नकुलको चौंसठ, धृष्टद्युम्नको पाँच, द्रौपदीके पुत्रोंको सात तथा सात्यकिको तीन बाणोंसे घायल कर दिया। मान्यवर! साथ ही उसने एक भल्ल मारकर सहदेवका धनुष भी काट डाला॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं माद्रीपुत्रः प्रतापवान्॥ ११॥
अभ्यद्रवत राजानं प्रगृह्यान्यन्महद् धनुः।
ततो दुर्योधनं संख्ये विव्याध दशभिः शरैः॥ १२॥

प्रतापी माद्रीपुत्र सहदेवने उस कटे हुए धनुषको फेंककर दूसरा विशाल धनुष हाथमें ले राजा दुर्योधनपर धावा किया और युद्धस्थलमें दस बाणोंसे उसे घायल कर दिया॥

नकुलस्तु ततो वीरो राजानं नवभिः शरैः।
घोररूपैर्महेष्वासो विव्याध च ननाद च॥ १३॥

इसके बाद महाधनुर्धर वीर नकुलने नौ भयंकर बाणोंद्वारा राजा दुर्योधनको बींध डाला और उच्चस्वरसे गर्जना की॥ १३॥

सात्यकिश्चैव राजानं शरेणानतपर्वणा।
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या धर्मराजश्च पञ्चभिः॥ १४॥
अशीत्या भीमसेनश्च शरै राजानमार्पयन्।

फिर सात्यकिने भी झुकी हुई गाँठवाले एक बाणसे राजाको घायल कर दिया। तदनन्तर द्रौपदीके पुत्रोंने राजा दुर्योधनको तिहत्तर, धर्मराजने पाँच और भीमसेनने अस्सी बाण मारे॥ १४½॥

समन्तात् कीर्यमाणस्तु बाणसंघैर्महात्मभिः॥ १५॥
न चचाल महाराज सर्वसैन्यस्य पश्यतः।

महाराज! वे महामनस्वी वीर सारी सेनाके देखते-देखते दुर्योधनपर चारों ओरसे बाणसमूहोंकी वर्षा कर रहे थे तो भी वह विचलित नहीं हुआ॥ १५½॥

लाघवं सौष्ठवं चापि वीर्यं चापि महात्मनः॥ १६॥
अति सर्वाणि भूतानि ददृशुः सर्वमानवाः।

उस महामनस्वी वीरकी फुर्ती, अस्त्र-संचालनका सुन्दर ढंग तथा पराक्रम—इन सबको सब लोगोंने सम्पूर्ण प्राणियोंसे बढ़-चढ़कर देखा॥ १६½ ॥

धार्तराष्ट्रा हि राजेन्द्र योधास्तु स्वल्पमन्तरम्॥ १७॥
अपश्यमाना राजानं पर्यवर्तन्त दंशिताः।

राजेन्द्र! आपके योद्धा थोड़ा-सा भी अन्तर न देखकर कवच आदिसे सुसज्जित हो राजा दुर्योधनको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये॥ १७½ ॥

तेषामापततां घोरस्तुमुलः समपद्यत॥ १८॥
क्षुब्धस्य हि समुद्रस्य प्रावृट्काले यथा स्वनः।

जैसे वर्षाकालमें विक्षुब्ध हुए समुद्रकी भीषण गर्जना सुनायी देती है, उसी प्रकार उन आक्रमणकारी कौरवोंका घोर एवं भयंकर कोलाहल प्रकट होने लगा॥

समासाद्य रणे ते तु राजानमपराजितम्॥ १९॥
प्रत्युद्ययुर्महेष्वासाः पाण्डवानाततायिनः।

वे महाधनुर्धर कौरवयोद्धा रणभूमिमें अपराजित राजा दुर्योधनके पास पहुँचकर आततायी पाण्डवोंपर जा चढ़े॥ १९½ ॥

भीमसेनं रणे क्रुद्धो द्रोणपुत्रो न्यवारयत्॥ २०॥
नानाबाणैर्महाराज प्रमुक्तैः सर्वतोदिशम्।
नाज्ञायन्त रणे वीरा न दिशः प्रदिशः कुतः॥ २१॥

महाराज! रणक्षेत्रमें कुपित हुए द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने सम्पूर्ण दिशाओंमें छोड़े गये अनेक प्रकारके बाणोंद्वारा भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोक दिया। उस समय संग्राममें न तो वीरोंकी पहचान होती थी और न दिशाओंकी, फिर अवान्तर-दिशाओं (कोणों)-की तो बात ही क्या है?॥ २०-२१॥

तावुभौ क्रूरकर्माणावुभौ भारत दुःसहौ।
घोररूपमयुध्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ॥ २२॥

भारत! वे दोनों वीर क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले और शत्रुओंके लिये दुःसह थे। अतः एक-दूसरेके प्रहारका भरपूर जवाब देनेकी इच्छा रखकर वे घोर युद्ध करने लगे॥ २२॥

त्रासयन्तौ दिशः सर्वा ज्याक्षेपकठिनत्वचौ।
शकुनिस्तु रणे वीरो युधिष्ठिरमपीडयत्॥ २३॥

प्रत्यंचा खींचनेसे उनके हाथोंकी त्वचा बहुत कठोर हो गयी थी और वे सम्पूर्ण दिशाओंको आतंकित कर रहे थे। दूसरी ओर वीर शकुनि रणभूमिमें युधिष्ठिरको पीड़ा देने लगा॥ २३॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सुबलस्य सुतो विभो।
नादं चकार बलवत् सर्वसैन्यानि कोपयन्॥ २४॥

प्रभो! सुबलके उस पुत्रने युधिष्ठिरके चारों घोड़ोंको मारकर सम्पूर्ण सेनाओंका क्रोध बढ़ाते हुए बड़े जोरसे सिंहनाद किया॥ २४॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरं राजानमपराजितम्।
अपोवाह रथेनाजौ सहदेवः प्रतापवान्॥ २५॥

इसी बीचमें प्रतापी सहदेव युद्धमें किसीसे परास्त न होनेवाले वीर राजा युधिष्ठिरको अपने रथपर बिठाकर दूर हटा ले गये॥ २५॥

अथान्यं रथमास्थाय धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
शकुनिं नवभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः॥ २६॥

तदनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने दूसरे रथपर आरूढ़ हो पुनः धावा किया और शकुनिको पहले नौ बाणोंसे घायल करके फिर पाँच बाणोंसे बींध डाला॥ २६॥

ननाद च महानादं प्रवरः सर्वधन्विनाम्।
तद् युद्धमभवच्चित्रं घोररूपं च मारिष॥ २७॥
प्रेक्षतां प्रीतिजननं सिद्धचारणसेवितम्।

इसके बाद सम्पूर्ण धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। मान्यवर! उनका वह युद्ध विचित्र, भयंकर, सिद्धों और चारणोंद्वारा सेवित तथा दर्शकोंका हर्ष बढ़ानेवाला था॥ २७½ ॥

उलूकस्तु महेष्वासं नकुलं युद्धदुर्मदम्॥ २८॥
अभ्यद्रवदमेयात्मा शरवर्षैः समन्ततः।

दूसरी ओर अमेय आत्मबलसे सम्पन्न उलूकने महाधनुर्धर रणदुर्मद नकुलपर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करते हुए धावा किया॥ २८½ ॥

तथैव नकुलः शूरः सौबलस्य सुतं रणे॥ २९॥
शरवर्षेण महता समन्तात् पर्यवारयत्।

इसी प्रकार शूरवीर नकुलने रणभूमिमें शकुनिके पुत्रको बड़ी भारी बाणवर्षाके द्वारा सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया॥ २९½ ॥

तौ तत्र समरे वीरौ कुलपुत्रौ महारथौ॥ ३०॥
योधयन्तावपश्येतां कृतप्रतिकृतैषिणौ।

वे दोनों वीर महारथी उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए थे! अतः समरांगणमें एक-दूसरेके प्रहारका प्रतीकार करनेकी इच्छा रखकर जूझते दिखायी देते थे॥ ३०½ ॥

तथैव कृतवर्माणं शैनेयः शत्रुतापनः॥ ३१॥
योधयन् शुशुभे राजन् बलिं शक्र इवाहवे।

राजन्! इसी तरह शत्रुसंतापी सात्यकि कृतवर्माके साथ युद्ध करते हुए युद्धस्थलमें उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे इन्द्र बलिके साथ॥ ३१½ ॥

दुर्योधनो धनुश्छित्त्वा धृष्टद्युम्नस्य संयुगे॥ ३२॥
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध निशितैः शरैः।

दुर्योधनने युद्धस्थलमें धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया और धनुष कट जानेपर उन्हें पैने बाणोंसे बींध डाला॥

धृष्टद्युम्नोऽपि समरे प्रगृह्य परमायुधम्॥ ३३॥
राजानं योधयामास पश्यतां सर्वधन्विनाम्।

तब धृष्टद्युम्न भी दूसरा उत्तम धनुष लेकर समरभूमिमें सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते राजा दुर्योधनके साथ युद्ध करने लगे॥ ३३½॥

तयोर्युद्धं महच्चासीत् संग्रामे भरतर्षभ॥ ३४॥
प्रभिन्नयोर्यथा सक्तं मत्तयोर्वरहस्तिनोः।

भरतश्रेष्ठ! रणभूमिमें उन दोनोंका महान् युद्ध ऐसा जान पड़ता था, मानो मदकी धारा बहानेवाले दो उत्तम मतवाले हाथी आपसमें जूझ रहे हों॥ ३४½॥

गौतमस्तु रणे क्रुद्धो द्रौपदेयान् महाबलान्॥ ३५॥
विव्याध बहुभिः शूरः शरैः संनतपर्वभिः।

दूसरी ओर शूरवीर कृपाचार्यने रणभूमिमें कुपित हो महाबली द्रौपदीपुत्रोंको झुकी हुई गाँठवाले बहुत-से बाणोंद्वारा घायल कर दिया॥ ३५½॥

तस्य तैरभवद् युद्धमिन्द्रियैरिव देहिनः॥ ३६॥
घोररूपमसंवार्यं निर्मर्यादमवर्तत।

जैसे देहधारी जीवात्माका पाँचों इन्द्रियोंके साथ युद्ध हो रहा हो, उसी प्रकार उन पाँचों भाइयोंके साथ कृपाचार्यका युद्ध हो रहा था। धीरे-धीरे वह युद्ध अत्यन्त घोर, अनिवार्य और अमर्यादित हो गया॥ ३६½॥

ते च सम्पीडयामासुरिन्द्रियाणीव बालिशम्॥ ३७॥
स च तान् प्रति संरब्धः प्रत्ययोधयदाहवे।

जैसे इन्द्रियाँ मूढ़ मनुष्यको पीड़ा देती हैं, उसी प्रकार वे पाँचों भाई कृपाचार्यको पीड़ित करने लगे। कृपाचार्य भी अत्यन्त रोषमें भरकर रणक्षेत्रमें उन सबके साथ युद्ध कर रहे थे॥ ३७½॥

एवं चित्रमभूद् युद्धं तस्य तैः सह भारत॥ ३८॥
उत्थायोत्थाय हि यथा देहिनामिन्द्रियैर्विभो।

भारत! उनका उन द्रौपदीपुत्रोंके साथ ऐसा विचित्र युद्ध होने लगा, जैसे बारंबार उठ-उठकर विषयोंकी ओर प्रवृत्त होनेवाली इन्द्रियोंके साथ देहधारियोंका युद्ध होता रहता है॥ ३८½॥

नराश्चैव नरैः सार्धं दन्तिनो दन्तिभिस्तथा॥ ३९॥
हया हयैः समासक्ता रथिनो रथिभिः सह।
संकुलं चाभवद् भूयो घोररूपं विशाम्पते॥ ४०॥

प्रजानाथ! उस समय मनुष्य मनुष्योंसे, हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे और रथी रथियोंसे भिड़ गये थे। फिर उनमें अत्यन्त घोर घमासान युद्ध होने लगा॥

इदं चित्रमिदं घोरमिदं रौद्रमिति प्रभो।
युद्धान्यासन् महाराज घोराणि च बहूनि च॥ ४१॥

प्रभो! महाराज! यह विचित्र, यह घोर, यह रौद्र युद्ध—इस प्रकार बहुत-से भीषण युद्ध चलने लगे॥ ४१॥

ते समासाद्य समरे परस्परमरिंदमाः।
व्यनदंश्चैव जघ्नुश्च समासाद्य महाहवे॥ ४२॥

शत्रुओंका दमन करनेवाले वे समस्त योद्धा समरांगणमें एक-दूसरेसे भिड़कर उस महायुद्धमें परस्पर टक्कर लेते हुए प्रहार और सिंहनाद करने लगे॥ ४२॥

तेषां पत्रसमुद्भूतं रजस्तीव्रमदृश्यत।
वातेन चोद्धतं राजन् धावद्भिश्चाश्वसादिभिः॥ ४३॥

राजन्! उनके वाहनोंसे, हवासे और दौड़ते हुए घुड़सवारोंसे उड़ायी गयी भयंकर धूल सब ओर व्याप्त दिखायी देती थी॥ ४३॥

रथनेमिसमुद्धूतं निःश्वासैश्चापि दन्तिनाम्।
रजः संध्याभ्रकलिलं दिवाकरपथं ययौ॥ ४४॥

रथके पहियों और हाथियोंके उच्छ्वासोंसे ऊपर उठायी हुई धूल संध्याकालके मेघोंके समान सूर्यके मार्गमें छा गयी थी॥ ४४॥

रजसा तेन सम्पृक्तो भास्करो निष्प्रभः कृतः।
संछादिताभवद् भूमिस्ते च शूरा महारथाः॥ ४५॥

उस धूलके सम्पर्कमें आकर सूर्य प्रभाहीन हो गये थे तथा पृथ्वी और वे महारथी शूरवीर भी ढक गये थे॥ ४५॥

मुहूर्तादिव संवृत्तं नीरजस्कं समन्ततः।
वीरशोणितसिक्तायां भूमौ भरतसत्तम॥ ४६॥

भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर दो ही घड़ीमें वीरोंके रक्तसे धरती सिंच उठी और सब ओरकी धूल बैठ जानेके कारण रणक्षेत्र निर्मल हो गया॥ ४६॥

उपाशाम्यत् ततस्तीव्रं तद् रजो घोरदर्शनम्।
ततोऽपश्यमहं भूयो द्वन्द्वयुद्धानि भारत॥ ४७॥
यथाप्राणं यथाश्रेष्ठं मध्याह्ने वै सुदारुणे।
वर्मणां तत्र राजेन्द्र व्यदृश्यन्तोज्ज्वलाः प्रभाः॥ ४८॥

वह भयंकर दिखायी देनेवाली तीव्र धूलि सर्वथा शान्त हो गयी। भारत! राजेन्द्र! तब मैं फिर उस दारुण मध्याह्नकालमें अपने बल और श्रेष्ठताके अनुसार अनेक द्वन्द्वयुद्ध देखने लगा। योद्धाओंके कवचोंकी प्रभा वहाँ अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थी॥ ४७-४८॥

शब्दश्च तुमुलः संख्ये शराणां पतताभूत्।
महावेणुवनस्येव दह्यमानस्य पर्वते॥ ४९॥

जैसे पर्वतपर जलते हुए विशाल बाँसोंके वनसे प्रकट होनेवाला चटचट शब्द सुनायी देता है, उसी प्रकार युद्धस्थलमें बाणोंके गिरनेका भयंकर शब्द वहाँ गूँज रहा था॥ ४९॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

कौरवपक्षके सात सौ रथियोंका वध, उभयपक्षकी सेनाओंका मर्यादाशून्य घोर संग्राम तथा शकुनिका कूट युद्ध और उसकी पराजय

संजय उवाच

वर्तमाने तदा युद्धे घोररूपे भयानके।
अभज्यत बलं तत्र तव पुत्रस्य पाण्डवैः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब वह भयानक घोर युद्ध होने लगा, उस समय पाण्डवोंने आपके पुत्रकी सेनाके पाँव उखाड़ दिये॥ १॥

तांस्तु यत्नेन महता संनिवार्य महारथान्।
पुत्रस्ते योधयामास पाण्डवानामनीकिनीम्॥ २॥

उन भागते हुए महारथियोंको महान् प्रयत्नसे रोककर आपका पुत्र पाण्डवोंकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा॥ २॥

निवृत्ताः सहसा योधास्तव पुत्रजयैषिणः।
संनिवृत्तेषु तेष्वेवं युद्धमासीत् सुदारुणम्॥ ३॥

यह देख आपके पुत्रकी विजय चाहनेवाले योद्धा सहसा लौट पड़े। इस प्रकार उनके लौटनेपर उन सबमें अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा॥ ३॥

तावकानां परेषां च देवासुररणोपमम्।
परेषां तव सैन्ये वा नासीत् कश्चित् पराङ्मुखः॥ ४॥

आपके और शत्रुओंके योद्धाओंका वह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान भयंकर था। उस समय शत्रुओंकी अथवा आपकी सेनामें भी कोई युद्धसे विमुख नहीं होता था॥

अनुमानेन युध्यन्ते संज्ञाभिश्च परस्परम्।
तेषां क्षयो महानासीद् युध्यतामितरेतरम्॥ ५॥

सब लोग अनुमानसे और नाम बतानेसे शत्रु तथा मित्रकी पहचान करके परस्पर युद्ध करते थे। परस्पर जूझते हुए उन वीरोंका वहाँ बड़ा भारी विनाश हो रहा था॥

ततो युधिष्ठिरो राजा क्रोधेन महता युतः।
जिगीषमाणः संग्रामे धार्तराष्ट्रान् सराजकान्॥ ६॥

उस समय राजा युधिष्ठिर महान् क्रोधसे युक्त हो संग्राममें राजा दुर्योधनसहित आपके पुत्रोंको जीतना चाहते थे॥ ६॥

त्रिभिः शारद्वतं विद्ध्वा रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः।
चतुर्भिर्निजघानाश्वान् नाराचैः कृतवर्मणः॥ ७॥

उन्होंने शिलापर तेज किये हुए सुवर्णमय पंखवाले तीन बाणोंसे कृपाचार्यको घायल करके चार नाराचोंसे कृतवर्माके घोड़ोंको मार डाला॥ ७॥

अश्वत्थामा तु हार्दिक्यमपोवाह यशस्विनम्।
अथ शारद्वतोऽष्टाभिः प्रत्यविद्ध्यद् युधिष्ठिरम्॥ ८॥

तब अश्वत्थामा यशस्वी कृतवर्माको अपने रथपर बिठाकर अन्यत्र हटा ले गया। तदनन्तर कृपाचार्यने आठ बाणोंसे राजा युधिष्ठिरको बींध डाला॥ ८॥

ततो दुर्योधनो राजा रथान् सप्तशतान् रणे।
प्रैषयद् यत्र राजासौ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ९॥

इसके बाद राजा दुर्योधनने रणभूमिमें सात सौ रथियोंको वहाँ भेजा, जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर खड़े थे॥

ते रथा रथिभिर्युक्ता मनोमारुतरंहसः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे कौन्तेयस्य रथं प्रति॥ १०॥

रथियोंसे युक्त और मन तथा वायुके समान वेगशाली वे रथ रणभूमिमें कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरके रथकी ओर दौड़े॥ १०॥

ते समन्तान्महाराज परिवार्य युधिष्ठिरम्।
अदृश्यं सायकैश्चक्रुर्मेघा इव दिवाकरम्॥ ११॥

महाराज! जैसे बादल सूर्यको ढक देते हैं, उसी प्रकार उन रथियोंने युधिष्ठिरको चारों ओरसे घेरकर अपने बाणोंद्वारा उन्हें अदृश्य कर दिया॥ ११॥

ते दृष्ट्वा धर्मराजानं कौरवेयैस्तथा कृतम्।
नामृष्यन्त सुसंरब्धाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः॥ १२॥

धर्मराज युधिष्ठिरको कौरवोंद्वारा वैसी दशामें पहुँचाया गया देख अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए शिखण्डी आदि रथी सहन न कर सके॥ १२॥

रथैरश्ववरैर्युक्तैः किङ्किणीजालसंवृतैः।
आजग्मुरथ रक्षन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम्॥ १३॥

वे छोटी-छोटी घंटियोंकी जालीसे ढके और श्रेष्ठ अश्वोंसे जुते हुए रथोंद्वारा कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ १३॥

ततः प्रववृते रौद्रः संग्रामः शोणितोदकः।
पाण्डवानां कुरूणां च यमराष्ट्रविवर्धनः॥ १४॥

तदनन्तर कौरवों और पाण्डवोंका अत्यन्त भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया, जिसमें पानीकी तरह खून बहाया जाता था। वह युद्ध यमराजके राज्यकी वृद्धि करनेवाला था॥ १४॥

रथान् सप्तशतान् हत्वा कुरूणामाततायिनाम्।
पाण्डवाः सह पञ्चालैः पुनरेवाभ्यवारयन्॥ १५॥

उस समय पांचालोंसहित पाण्डवोंने आततायी कौरवोंके उन सात सौ रथियोंको मारकर पुनः अन्य योद्धाओंको आगे बढ़नेसे रोका॥ १५॥

तत्र युद्धं महच्चासीत् तव पुत्रस्य पाण्डवैः।
न च तत् तादृशं दृष्टं नैव चापि परिश्रुतम्॥ १६॥

वहाँ आपके पुत्रका पाण्डवोंके साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ। वैसा युद्ध मैंने न तो कभी देखा था और न मेरे सुननेमें ही आया था॥ १६॥

वर्तमाने तदा युद्धे निर्मर्यादे समन्ततः।
वध्यमानेषु योधेषु तावकेष्वितरेषु च॥ १७॥
विनदत्सु च योधेषु शङ्खवर्यैश्च पूरितैः।
उत्क्रुष्टैः सिंहनादैश्च गर्जितैश्चैव धन्विनाम्॥ १८॥
अतिप्रवृत्ते युद्धे च छिद्यमानेषु मर्मसु।
धावमानेषु योधेषु जयगृद्धिषु मारिष॥ १९॥
संहारे सर्वतो जाते पृथिव्यां शोकसम्भवे।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां सीमन्तोद्धरणे तथा॥ २०॥
निर्मर्यादे महायुद्धे वर्तमाने सुदारुणे।
प्रादुरासन् विनाशाय तदोत्पाताः सुदारुणाः॥ २१॥

माननीय नरेश! जब सब ओरसे वह मर्यादाशून्य युद्ध होने लगा, आपके और शत्रुपक्षके योद्धा मारे जाने लगे, युद्धपरायण वीरोंकी गर्जना और श्रेष्ठ शंखोंकी ध्वनि होने लगी, धनुर्धरोंकी ललकार, सिंहनाद और गर्जनाओंके साथ जब वह युद्ध औचित्यकी सीमाको पार कर गया, योद्धाओंके मर्मस्थल विदीर्ण किये जाने लगे, विजयाभिलाषी योद्धा इधर-उधर दौड़ने लगे, रणभूमिमें सब ओर शोकजनक संहार होने लगा, बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंके सीमन्तके सिन्दूर मिटाये जाने लगे तथा सारी मर्यादाओंको तोड़कर अत्यन्त भयंकर महायुद्ध चलने लगा, उस समय विनाशकी सूचना देनेवाले अति दारुण उत्पात प्रकट होने लगे॥ १७—२१॥

चचाल शब्दं कुर्वाणा सपर्वतवना मही।
सदण्डाः सोल्मुका राजन् कीर्यमाणाः समन्ततः॥ २२॥
उल्का पेतुर्दिवो भूमावाहत्य रविमण्डलम्।

राजन्! पर्वत और वनोंसहित पृथ्वी भयानक शब्द करती हुई डोलने लगी और आकाशसे दण्ड तथा जलते हुए काष्ठोंसहित बहुत-सी उल्काएँ सूर्यमण्डलसे टकराकर सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखरी पड़ती थीं॥ २२½॥

विष्वग्वाताः प्रादुरासन् नीचैः शर्करवर्षिणः॥ २३॥
अश्रूणि मुमुचुर्नागा वेपथुं चास्पृशन् भृशम्।

चारों ओर नीचे बालू और कंकड़ बरसानेवाली हवाएँ चलने लगीं। हाथी आँसू बहाने और थर-थर काँपने लगे॥ २३½॥

एतान् घोराननादृत्य समुत्पातान् सुदारुणान्॥ २४॥
पुनर्युद्धाय संयत्ताः क्षत्रियास्तस्थुरव्यथाः।
रमणीये कुरुक्षेत्रे पुण्ये स्वर्गं यियासवः॥ २५॥

इन घोर एवं दारुण उत्पातोंकी अवहेलना करके क्षत्रियवीर मनमें व्यथासे रहित हो पुनः युद्धके लिये तैयार हो गये और स्वर्गमें जानेकी अभिलाषा ले रमणीय एवं पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें उत्साहपूर्वक डट गये॥ २४-२५॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरब्रवीत्।
युद्ध्यध्वमग्रतो यावत् पृष्ठतो हन्मि पाण्डवान्॥ २६॥

तत्पश्चात् गान्धारराजके पुत्र शकुनिने कौरव-योद्धाओंसे कहा—'वीरो! तुमलोग सामनेसे युद्ध करो और मैं पीछेसे पाण्डवोंका संहार करता हूँ'॥ २६॥

ततो नः सम्प्रयातानां मद्रयोधास्तरस्विनः।
हृष्टाः किलकिलाशब्दमकुर्वन्तापरे तथा॥ २७॥

इस सलाहके अनुसार जब हमलोग चले तो मद्रदेशके वेगशाली योद्धा तथा अन्य सैनिक हर्षसे उल्लसित हो किलकारियाँ भरने लगे॥ २७॥

अस्मांस्तु पुनरासाद्य लब्धलक्ष्या दुरासदाः।
शरासनानि धुन्वन्तः शरवर्षैरवाकिरन्॥ २८॥

इतनेहीमें दुर्धर्ष पाण्डव पुनः हमारे पास आ पहुँचे और हमें अपने लक्ष्यके रूपमें पाकर धनुष हिलाते हुए हम लोगोंपर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ २८॥

ततो हतं परैस्तत्र मद्रराजबलं तदा।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा पुनरासीत् पराङ्मुखम्॥ २९॥

थोड़ी ही देरमें शत्रुओंने वहाँ मद्रराजकी सेनाका संहार कर डाला। यह देख दुर्योधनकी सेना पुनः पीठ दिखाकर भागने लगी॥ २९॥

गान्धारराजस्तु पुनर्वाक्यमाह ततो बली।
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं मृतेन वः॥ ३०॥

तब बलवान् गान्धारराज शकुनिने पुनः इस प्रकार कहा—'अपने धर्मको न जाननेवाले पापियो! इस तरह तुम्हारे भागनेसे क्या होगा? लौटो और युद्ध करो'॥ ३०॥

अनीकं दशसाहस्रमश्वानां भरतर्षभ।
आसीद् गान्धारराजस्य विशालप्रासयोधिनाम्॥ ३१॥
बलेन तेन विक्रम्य वर्तमाने जनक्षये।
पृष्ठतः पाण्डवानीकमभ्यघ्नन्निशितैः शरैः॥ ३२॥

भरतश्रेष्ठ! उस समय गान्धारराज शकुनिके पास विशाल प्रास लेकर युद्ध करनेवाले घुड़सवारोंकी दस हजार सेना मौजूद थी। उसीको साथ लेकर वह उस जन-संहारकारी युद्धमें पाण्डव-सेनाके पिछले भागकी ओर गया और वे सब मिलकर पैने बाणोंसे उस सेनापर चोट करने लगे॥ ३१-३२॥

तदभ्रमिव वातेन क्षिप्यमाणं समन्ततः।
अभज्यत महाराज पाण्डूनां सुमहद् बलम्॥ ३३॥

महाराज! जैसे वायुके वेगसे मेघोंका दल सब ओरसे छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी प्रकार इस आक्रमणसे पाण्डवोंकी विशाल सेनाका व्यूह भंग हो गया॥ ३३॥

ततो युधिष्ठिरः प्रेक्ष्य भग्नं स्वबलमन्तिकात्।
अभ्यनादयदव्यग्रः सहदेवं महाबलम्॥ ३४॥

तब युधिष्ठिरने पास ही अपनी सेनामें भगदड़ मची देख शान्तभावसे महाबली सहदेवको पुकारा॥ ३४॥

असौ सुबलपुत्रो नो जघनं पीड्य दंशितः।
सैन्यानि सूदयत्येष पश्य पाण्डव दुर्मतिम्॥ ३५॥

और कहा—'पाण्डुनन्दन! कवच धारण करके आया हुआ वह सुबलपुत्र शकुनि हमारी सेनाके पिछले भागको पीड़ा देकर सारे सैनिकोंका संहार कर रहा है; इस दुर्बुद्धिको देखो तो सही॥ ३५॥

गच्छ त्वं द्रौपदेयैश्च शकुनिं सौबलं जहि।
रथानीकमहं धक्ष्ये पाञ्चालसहितोऽनघ॥ ३६॥

'निष्पाप वीर! तुम द्रौपदीके पुत्रोंको साथ लेकर जाओ और सुबलपुत्र शकुनिको मार डालो। मैं पांचाल योद्धाओंके साथ यहीं रहकर शत्रुकी इस रथसेनाको भस्म कर डालूँगा॥ ३६॥

गच्छन्तु कुञ्जराः सर्वे वाजिनश्च सह त्वया।
पादाताश्च त्रिसाहस्राः शकुनिं तैर्वृतो जहि॥ ३७॥

'तुम्हारे साथ सभी हाथीसवार, घुड़सवार और तीन हजार पैदल सैनिक भी जायँ तथा उन सबसे घिरे रहकर तुम शकुनिका नाश करो'॥ ३७॥

ततो गजाः सप्तशताश्चापपाणिभिरास्थिताः।
पञ्च चाश्वसहस्राणि सहदेवश्च वीर्यवान्॥ ३८॥
पादाताश्च त्रिसाहस्रा द्रौपदेयाश्च सर्वशः।
रणे ह्यभ्यद्रवंस्ते तु शकुनिं युद्धदुर्मदम्॥ ३९॥

तदनन्तर धर्मराजकी आज्ञाके अनुसार हाथमें धनुष लिये बैठे हुए सवारोंसे युक्त सात सौ हाथी, पाँच हजार घुड़सवार, पराक्रमी सहदेव, तीन हजार पैदल योद्धा और द्रौपदीके सभी पुत्र—इन सबने रणभूमिमें युद्ध-दुर्मद शकुनिपर धावा किया॥ ३८-३९॥

ततस्तु सौबलो राजन्नभ्यतिक्रम्य पाण्डवान्।
जघान पृष्ठतः सेनां जयगृद्धः प्रतापवान्॥ ४०॥

राजन्! उधर विजयाभिलाषी प्रतापी सुबलपुत्र शकुनि पाण्डवोंका उल्लंघन करके पीछेकी ओरसे उनकी सेनाका संहार कर रहा था॥ ४०॥

अश्वारोहास्तु संरब्धाः पाण्डवानां तरस्विनाम्।
प्राविशन् सौबलानीकमभ्यतिक्रम्य तान् रथान्॥ ४१॥

वेगशाली पाण्डवोंके घुड़सवारोंने अत्यन्त कुपित होकर उन कौरव रथियोंका उल्लंघन करके सुबलपुत्रकी सेनामें प्रवेश किया॥ ४१॥

ते तत्र सादिनः शूराः सौबलस्य महद् बलम्।
रणमध्ये व्यतिष्ठन्त शरवर्षैरवाकिरन्॥ ४२॥

वे शूरवीर घुड़सवार वहाँ जाकर रणभूमिके मध्यभागमें खड़े हो गये और शकुनिकी उस विशाल सेनापर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ४२॥

तदुद्यतगदाप्रासमकापुरुषसेवितम्।
प्रावर्तत महद् युद्धं राजन् दुर्मन्त्रिते तव॥ ४३॥

राजन्! फिर तो आपकी कुमन्त्रणाके फलस्वरूप वह महान् युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंसे नहीं, वीर पुरुषोंसे सेवित था। उस समय सभी योद्धाओंके हाथोंमें गदा अथवा प्रास उठे रहते थे॥ ४३॥

उपारमन्त ज्याशब्दाः प्रेक्षका रथिनोऽभवन्।
न हि स्वेषां परेषां वा विशेषः प्रत्यदृश्यत॥ ४४॥

धनुषकी प्रत्यंचाके शब्द बंद हो गये। रथी योद्धा दर्शक बनकर तमाशा देखने लगे। उस समय अपने या शत्रुपक्षके योद्धाओंमें पराक्रमकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं दिखायी देता था॥ ४४॥

शूरबाहुविसृष्टानां शक्तीनां भरतर्षभ।
ज्योतिषामिव सम्पातमपश्यन् कुरुपाण्डवाः॥ ४५॥

भरतश्रेष्ठ! शूरवीरोंकी भुजाओंसे छूटी हुई शक्तियाँ शत्रुओंपर इस प्रकार गिरती थीं, मानो आकाशसे तारे टूटकर पड़ रहे हों। कौरव-पाण्डवयोद्धाओंने इसे प्रत्यक्ष देखा था॥

ऋष्टिभिर्विमलाभिश्च तत्र तत्र विशाम्पते।
सम्पतन्तीभिराकाशमावृतं बह्वशोभत॥ ४६॥

प्रजानाथ! वहाँ गिरती हुई निर्मल ऋष्टियोंसे व्याप्त हुए आकाशकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ४६॥

प्रासानां पततां राजन् रूपमासीत् समन्ततः।
शलभानामिवाकाशे तदा भरतसत्तम॥ ४७॥

भरतकुलभूषण नरेश! उस समय सब ओर गिरते हुए प्रासोंका स्वरूप आकाशमें छाये हुए टिड्डीदलोंके समान जान पड़ता था॥ ४७॥

रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा विप्रविद्धैर्नियन्तृभिः।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४८॥

सैकड़ों और हजारों घोड़े अपने घायल सवारोंके साथ सारे अंगोंमें लहूलुहान होकर धरतीपर गिर रहे थे॥

अन्योन्यं परिपिष्टाश्च समासाद्य परस्परम्।
आविक्षताः स्म दृश्यन्ते वमन्तो रुधिरं मुखैः॥ ४९॥

बहुत-से सैनिक परस्पर टकराकर एक-दूसरेसे पिस जाते और क्षत-विक्षत हो मुखोंसे रक्त वमन करते हुए दिखायी देते थे॥ ४९॥

ततोऽभवत्तमो घोरं सैन्येन रजसा वृते।
तानपाक्रमतोऽद्राक्षं तस्माद् देशादरिंदम॥ ५०॥

शत्रुदमन नरेश! तत्पश्चात् जब सेनाद्वारा उठी हुई धूलसे सब ओर घोर अन्धकार छा गया, उस समय हमने देखा कि बहुत-से योद्धा वहाँसे भागे जा रहे हैं॥ ५०॥

अश्वान् राजन् मनुष्यांश्च रजसा संवृते सति।
भूमौ निपतिताश्चान्ये वमन्तो रुधिरं बहु॥ ५१॥

राजन्! धूलसे सारा रणक्षेत्र भर जानेके कारण अँधेरेमें बहुत-से घोड़ों और मनुष्योंको भी हमने भागते देखा था। कितने ही योद्धा पृथ्वीपर गिरकर मुँहसे बहुत-सा रक्त वमन कर रहे थे॥ ५१॥

केशाकेशि समालग्ना न शेकुश्चेष्टितुं नराः।
अन्योन्यमश्वपृष्ठेभ्यो विकर्षन्तो महाबलाः॥ ५२॥

बहुत-से मनुष्य परस्पर केश पकड़कर इतने सट गये थे कि कोई चेष्टा नहीं कर पाते थे। कितने ही महाबली योद्धा एक-दूसरेको घोड़ोंकी पीठोंसे खींच रहे थे॥ ५२॥

मल्ला इव समासाद्य निजघ्नुरितरेतरम्।
अश्वैश्च व्यपकृष्यन्त बहवोऽत्र गतासवः॥ ५३॥

बहुत-से सैनिक पहलवानोंकी भाँति परस्पर भिड़कर एक-दूसरेपर चोट करते थे। कितने ही प्राणशून्य होकर अश्वोंद्वारा इधर-उधर घसीटे जा रहे थे॥ ५३॥

भूमौ निपतिताश्चान्ये बहवो विजयैषिणः।
तत्र तत्र व्यदृश्यन्त पुरुषाः शूरमानिनः॥ ५४॥

बहुतेरे विजयाभिलाषी तथा अपनेको शूरवीर माननेवाले पुरुष जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर पड़े दिखायी देते थे॥

रक्तोक्षितैश्छिन्नभुजैरवकृष्टशिरोरुहैः।
व्यदृश्यत मही कीर्णा शतशोऽथ सहस्रशः॥ ५५॥

कटी हुई बाँहों और खींचे गये केशोंवाले सैकड़ों और हजारों रक्तरंजित शरीरोंसे रणभूमि आच्छादित दिखायी देती थी॥ ५५॥

दूरं न शक्यं तत्रासीद् गन्तुमश्वेन केनचित्।
साश्वारोहैर्हतैरश्वैरावृते वसुधातले॥ ५६॥

सवारोंसहित घोड़ोंकी लाशोंसे पटे हुए भूतलपर किसीके लिये भी घोड़ेद्वारा दूरतक जाना असम्भव हो गया था॥ ५६॥

रुधिरोक्षितसन्नाहैरात्तशस्त्रैरुदायुधैः।
नानाप्रहरणैर्घोरैः परस्परवधैषिभिः॥ ५७॥
सुसंनिकृष्टैः संग्रामे हतभूयिष्ठसैनिकैः।

योद्धाओंके कवच रक्तसे भीग गये थे। वे सब हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये धनुष उठाये नाना प्रकारके भयंकर आयुधोंद्वारा एक-दूसरेके वधकी इच्छा रखते थे। उस संग्राममें सभी योद्धा अत्यन्त निकट होकर युद्ध करते थे और उनमेंसे अधिकांश सैनिक मार डाले गये थे॥

स मुहूर्तं ततो युद्ध्वा सौबलोऽथ विशाम्पते॥ ५८॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छकुनिस्ततः।

प्रजानाथ! शकुनि वहाँ दो घड़ी युद्ध करके शेष बचे हुए छः हजार घुड़सवारोंके साथ भाग निकला॥

तथैव पाण्डवानीकं रुधिरेण समुक्षितम्॥ ५९॥
षट्साहस्रैर्हयैः शिष्टैरपायाच्छ्रान्तवाहनम्।

इसी प्रकार खूनसे नहायी हुई पाण्डव-सेना भी शेष छः हजार घुड़सवारोंके साथ युद्धसे निवृत्त हो गयी। उसके सारे वाहन थक गये थे॥ ५९ $\frac{1}{2}$॥

अश्वारोहाश्च पाण्डूनामब्रुवन् रुधिरोक्षिताः॥ ६०॥
सुसंनिकृष्टे संग्रामे भूयिष्ठे त्यक्तजीविताः।

उस समय उस निकटवर्ती महायुद्धमें प्राणोंका मोह छोड़कर जूझनेवाले पाण्डवसेनाके रक्तरंजित घुड़सवार इस प्रकार बोले—॥ ६० $\frac{1}{2}$॥

न हि शक्यं रथैर्योद्धुं कुत एवं महागजैः॥ ६१॥
रथानेव रथा यान्तु कुञ्जराः कुञ्जरानपि।
प्रतियातो हि शकुनिः स्वमनीकमवस्थितः॥ ६२॥
न पुनः सौबलो राजा युद्धमभ्यागमिष्यति।

'यहाँ रथोंद्वारा भी युद्ध नहीं किया जा सकता। फिर बड़े-बड़े हाथियोंकी तो बात ही क्या है? रथ रथोंका सामना करनेके लिये जायँ और हाथी हाथियोंका। शकुनि भागकर अपनी सेनामें चला गया। अब फिर

राजा शकुनि युद्धमें नहीं आयेगा'॥ ६१-६२½ ॥

ततस्तु द्रौपदेयाश्च ते च मत्ता महाद्विपाः॥ ६३॥
प्रययुर्यत्र पाञ्चाल्यो धृष्टद्युम्नो महारथः।

उनकी यह बात सुनकर द्रौपदीके पाँचों पुत्र और वे मतवाले हाथी वहीं चले गये, जहाँ पांचालराजकुमार महारथी धृष्टद्युम्न थे॥ ६३½ ॥

सहदेवोऽपि कौरव्य रजोमेघे समुत्थिते॥ ६४॥
एकाकी प्रययौ तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः।

कुरुनन्दन! वहाँ धूलका बादल-सा घिर आया था। उस समय सहदेव भी अकेले ही, जहाँ राजा युधिष्ठिर थे, वहीं चले गये॥ ६४½ ॥

ततस्तेषु प्रयातेषु शकुनिः सौबलः पुनः॥ ६५॥
पार्श्वतोऽभ्यहनत् क्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य वाहिनीम्।

उन सबके चले जानेपर सुबलपुत्र शकुनि पुनः कुपित हो पार्श्वभागसे आकर धृष्टद्युम्नकी सेनाका संहार करने लगा॥ ६५½ ॥

तत् पुनस्तुमुलं युद्धं प्राणांस्त्यक्त्वाभ्यवर्तत॥ ६६॥
तावकानां परेषां च परस्परवधैषिणाम्।

फिर तो परस्पर वधकी इच्छावाले आपके और शत्रुपक्षके सैनिकोंमें प्राणोंका मोह छोड़कर भयंकर युद्ध होने लगा॥ ६६½ ॥

ते चान्योन्यमवैक्षन्त तस्मिन् वीरसमागमे॥ ६७॥
योधाः पर्यपतन् राजन् शतशोऽथ सहस्रशः।

राजन्! शूरवीरोंके उस संघर्षमें सब ओरसे सैकड़ों-हजारों योद्धा टूट पड़े और वे एक-दूसरेकी ओर देखने लगे॥ ६७½ ॥

असिभिश्छिद्यमानानां शिरसां लोकसंक्षये॥ ६८॥
प्रादुरासीन्महान् शब्दस्तालानां पततामिव।

उस लोकसंहारकारी संग्राममें तलवारोंसे काटे जाते हुए मस्तक जब पृथ्वीपर गिरते थे, तब उनसे ताड़के फलोंके गिरनेकी-सी धमाकेकी आवाज होती थी॥ ६८½ ॥

विमुक्तानां शरीराणां छिन्नानां पततां भुवि॥ ६९॥
सायुधानां च बाहूनामूरूणां च विशाम्पते।
आसीत् कटकटाशब्दः सुमहाँल्लोमहर्षणः॥ ७०॥

प्रजानाथ! छिन्न-भिन्न होकर धरतीपर गिरनेवाले कवचशून्य शरीरों, आयुधोंसहित भुजाओं और जाँघोंका अत्यन्त भयंकर एवं रोमांचकारी कट-कट शब्द सुनायी पड़ता था॥ ६९-७०॥

निघ्नन्तो निशितैःशस्त्रैर्भ्रातॄन् पुत्रान् सखीनपि।
योधाः परिपतन्ति स्म यथामिषकृते खगाः॥ ७१॥

जैसे पक्षी मांसके लिये एक-दूसरेपर झपटते हैं, उसी प्रकार वहाँ योद्धा अपने तीखे शस्त्रोंद्वारा भाइयों, मित्रों और पुत्रोंका भी संहार करते हुए एक-दूसरेपर टूटे पड़ते थे॥ ७१॥

अन्योन्यं प्रतिसंरब्धाः समासाद्य परस्परम्।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति न्यघ्नन् सहस्रशः॥ ७२॥

दोनों पक्षोंके योद्धा एक-दूसरेसे भिड़कर परस्पर अत्यन्त कुपित हो 'पहले मैं, पहले मैं' ऐसा कहते हुए सहस्रों सैनिकोंका वध करने लगे॥ ७२॥

संघातेनासनभ्रष्टैरश्वारोहैर्गतासुभिः ।
हयाः परिपतन्ति स्म शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७३॥

शत्रुओंके आघातसे प्राणशून्य होकर आसनसे भ्रष्ट हुए अश्वारोहियोंके साथ सैकड़ों और हजारों घोड़े धराशायी होने लगे॥ ७३॥

स्फुरतां प्रतिपिष्टानामश्वानां शीघ्रगामिनाम्।
स्तनतां च मनुष्याणां सन्नद्धानां विशाम्पते॥ ७४॥
शक्त्यृष्टिप्रासशब्दश्च तुमुलः समपद्यत।
भिन्दतां परमर्माणि राजन् दुर्मन्त्रिते तव॥ ७५॥

प्रजापालक नरेश! आपकी खोटी सलाहके अनुसार बहुत-से शीघ्रगामी अश्व गिरकर छटपटा रहे थे। कितने ही पिस गये थे और बहुत-से कवचधारी मनुष्य गर्जना करते हुए शत्रुओंके मर्म विदीर्ण कर रहे थे। उन सबके शक्ति, ऋष्टि और प्रासोंका भयंकर शब्द वहाँ गूँजने लगा था॥ ७४-७५॥

श्रमाभिभूताः संरब्धाः श्रान्तवाहाः पिपासवः।
विक्षताश्च शितैः शस्त्रैरभ्यवर्तन्त तावकाः॥ ७६॥

आपके सैनिक परिश्रमसे थक गये थे, क्रोधमें भरे हुए थे, उनके वाहन भी थकावटसे चूर-चूर हो रहे थे और वे सब-के-सब प्याससे पीड़ित थे। उनके सारे अंग तीक्ष्ण शस्त्रोंसे क्षत-विक्षत हो गये थे॥ ७६॥

मत्ता रुधिरगन्धेन बहवोऽत्र विचेतसः।
जघ्नुः परान् स्वकांश्चैव प्राप्तान् प्राप्ताननन्तरान्॥ ७७॥

वहाँ बहते हुए रक्तकी गन्धसे मतवाले हो बहुत-से सैनिक विवेकशक्ति खो बैठे थे और बारी-बारीसे अपने पास आये हुए शत्रुपक्षके तथा अपने पक्षके सैनिकोंका भी वध कर डालते थे॥ ७७॥

बहवश्च गतप्राणाः क्षत्रिया जयगृद्धिनः।
भूमावभ्यपतन् राजन् शरवृष्टिभिरावृताः॥ ७८॥

राजन्! बहुत-से विजयाभिलाषी क्षत्रिय बाणोंकी वर्षासे आच्छादित हो प्राणोंका परित्याग करके पृथ्वीपर पड़े थे॥ ७८॥

वृकगृध्रशृगालानां तुमुले मोदनेऽहनि।
आसीद् बलक्षयो घोरस्तव पुत्रस्य पश्यतः॥ ७९॥

भेड़ियों, गीधों और सियारोंका आनन्द बढ़ानेवाले इस भयंकर दिनमें आपके पुत्रकी आँखोंके सामने कौरव-सेनाका घोर संहार हुआ॥ ७९॥

नगाश्वकायैः संछन्ना भूमिरासीद् विशाम्पते।
रुधिरोदकचित्रा च भीरूणां भयवर्धिनी॥ ८०॥

प्रजानाथ! वह रणभूमि मनुष्यों और घोड़ोंकी लाशोंसे पट गयी थी तथा पानीकी तरह बहाये जाते हुए रक्तसे विचित्र शोभा धारण करके कायरोंका भय बढ़ा रही थी॥ ८०॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैस्तक्षमाणाः पुनः पुनः।
तावकाः पाण्डवेयाश्च न न्यवर्तन्त भारत॥ ८१॥

भारत! खड्गों, पट्टिशों और शूलोंसे एक-दूसरेको बारंबार घायल करते हुए आपके और पाण्डवोंके योद्धा युद्धसे पीछे नहीं हटते थे॥ ८१॥

प्रहरन्तो यथाशक्ति यावत् प्राणस्य धारणम्।
योधाः परिपतन्ति स्म वमन्तो रुधिरं व्रणैः॥ ८२॥

जबतक प्राण रहते, तबतक यथाशक्ति प्रहार करते हुए योद्धा अन्ततोगत्वा अपने घावोंसे रक्त बहाते हुए धराशायी हो जाते थे॥ ८२॥

शिरो गृहीत्वा केशेषु कबन्धः स्म प्रदृश्यते।
उद्यम्य च शितं खड्गं रुधिरेण परिप्लुतम्॥ ८३॥

वहाँ कोई-कोई कबन्ध (धड़) ऐसा दिखायी दिया, जो एक हाथमें शत्रुके कटे हुए मस्तकको केशसहित पकड़े हुए और दूसरे हाथमें खूनसे रँगी हुई नोखी तलवार उठाये खड़ा था॥ ८३॥

तथोत्थितेषु बहुषु कबन्धेषु नराधिप।
तथा रुधिरगन्धेन योधाः कश्मलमाविशन्॥ ८४॥

नरेश्वर! फिर उस तरहके बहुत-से कबन्ध उठे दिखायी देने लगे तथा रुधिरकी गन्धसे प्रायः सभी योद्धाओंपर मोह छा गया था॥ ८४॥

मन्दीभूते ततः शब्दे पाण्डवानां महद् बलम्।
अल्पावशिष्टैस्तुरगैरभ्यवर्तत सौबलः॥ ८५॥

तत्पश्चात् जब उस युद्धका कोलाहल कुछ कम हुआ, तब सुबलपुत्र शकुनि थोड़े-से बचे हुए घुड़सवारोंके साथ पुनः पाण्डवोंकी विशाल सेनापर टूट पड़ा॥ ८५॥

ततोऽभ्यधावंस्त्वरिताः पाण्डवा जयगृद्धिनः।
पदातयश्च नागाश्च सादिनश्चोद्यतायुधाः॥ ८६॥
कोष्ठकीकृत्य चाप्येनं परिक्षिप्य च सर्वशः।
शस्त्रैर्नानाविधैर्जघ्नुर्युद्धपारं तितीर्षवः॥ ८७॥

तब विजयाभिलाषी पाण्डवोंने भी तुरंत उसपर धावा कर दिया। पाण्डव युद्धसे पार होना चाहते थे; अतः उनके पैदल, हाथीसवार और घुड़सवार सभी हथियार उठाये आगे बढ़े तथा शकुनिको सब ओरसे घेरकर उसे कोष्ठबद्ध करके नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा घायल करने लगे॥ ८६-८७॥

त्वदीयास्तांस्तु सम्प्रेक्ष्य सर्वतः समभिद्रुतान्।
रथाश्वपत्तिद्विरदाः पाण्डवानभिदुद्रुवुः॥ ८८॥

पाण्डव-सैनिकोंको सब ओरसे आक्रमण करते देख आपके रथी, घुड़सवार, पैदल और हाथीसवार भी पाण्डवोंपर टूट पड़े॥ ८८॥

केचित् पदातयः पद्भिर्मुष्टिभिश्च परस्परम्।
निजघ्नुः समरे शूराः क्षीणशस्त्रास्ततोऽपतन्॥ ८९॥

कुछ शूरवीर पैदल योद्धा समरांगणमें पैदलोंके साथ भिड़ गये और अस्त्र-शस्त्रोंके क्षीण हो जानेपर एक-दूसरेको मुक्कोंसे मारने लगे। इस प्रकार लड़ते-लड़ते वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ८९॥

रथेभ्यो रथिनः पेतुर्द्विपेभ्यो हस्तिसादिनः।
विमानेभ्यो दिवो भ्रष्टाः सिद्धाः पुण्यक्षयादिव॥ ९०॥

जैसे सिद्ध पुरुष पुण्यक्षय होनेपर स्वर्गलोकके विमानोंसे नीचे गिर जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ रथी रथोंसे और हाथीसवार हाथियोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ९०॥

एवमन्योन्यमायत्ता योधा जघ्नुर्महाहवे।
पितॄन् भ्रातॄन् वयस्यांश्च पुत्रानपि तथा परे॥ ९१॥

इस प्रकार उस महायुद्धमें दूसरे-दूसरे योद्धा परस्पर विजयके लिये प्रयत्नशील हो पिता, भाई, मित्र और पुत्रोंका भी वध करने लगे॥ ९१॥

एवमासीदमर्यादं युद्धं भरतसत्तम।
प्रासासिबाणकलिले वर्तमाने सुदारुणे॥ ९२॥

भरतश्रेष्ठ! प्रास, खड्ग और बाणोंसे व्याप्त हुए उस अत्यन्त भयंकर रणक्षेत्रमें इस प्रकार मर्यादाशून्य युद्ध हो रहा था॥ ९२॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णके सम्मुख अर्जुनद्वारा दुर्योधनके दुराग्रहकी निन्दा और रथियोंकी सेनाका संहार

संजय उवाच

तस्मिन् शब्दे मृदौ जाते पाण्डवैर्निहते बले।
अश्वैः सप्तशतैः शिष्टैरुपावर्तत सौबलः॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब पाण्डवयोद्धाओंने अधिकांश सेनाका संहार कर डाला और युद्धका कोलाहल कम हो गया, तब सुबलपुत्र शकुनि शेष बचे हुए सात सौ घुड़सवारोंके साथ कौरव-सेनाके समीप चला गया॥ १॥

स यात्वा वाहिनीं तूर्णमब्रवीत् त्वरयन् युधि।
युद्ध्यध्वमिति संहृष्टाः पुनः पुनररिंदमाः॥ २॥
अपृच्छत् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु राजा महाबलः।

वह तुरंत कौरव-सेनामें पहुँचकर सबको युद्धके लिये शीघ्रता करनेकी प्रेरणा देता हुआ बोला—'शत्रुओंका दमन करनेवाले वीरो! तुम हर्ष और उत्साहके साथ युद्ध करो।' ऐसा कहकर उसने वहाँ बारंबार क्षत्रियोंसे पूछा—'महाबली राजा दुर्योधन कहाँ है?'॥ २ १/२ ॥

शकुनेस्तद् वचः श्रुत्वा तमूचुर्भरतर्षभ॥ ३॥
असौ तिष्ठति कौरव्यो रणमध्ये महाबलः।
यत्रैतत् सुमहच्छत्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम्॥ ४॥
यत्र ते सतनुत्राणा रथास्तिष्ठन्ति दंशिताः।

भरतश्रेष्ठ! शकुनिकी वह बात सुनकर उन क्षत्रियोंने उसे यह उत्तर दिया—'प्रभो! महाबली कुरुराज रणक्षेत्रके मध्यभागमें वहाँ खड़े हैं, जहाँ यह पूर्ण चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विशाल छत्र तना हुआ है तथा जहाँ वे शरीर-रक्षक आवरणों एवं कवचोंसे सुसज्जित रथ खड़े हैं॥

यत्रैष तुमुलः शब्दः पर्जन्यनिनदोपमः॥ ५॥
तत्र गच्छ द्रुतं राजंस्ततो द्रक्ष्यसि कौरवम्।

'राजन्! जहाँ यह मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान भयानक शब्द गूँज रहा है, वहीं शीघ्रतापूर्वक चले जाइये, वहाँ आप कुरुराजका दर्शन कर सकेंगे'॥ ५ १/२ ॥

एवमुक्तस्तु तैर्योधैः शकुनिः सौबलस्तदा॥ ६॥
प्रययौ तत्र यत्रासौ पुत्रस्तव नराधिप।
सर्वतः संवृतो वीरैः समरे चित्रयोधिभिः॥ ७॥

नरेश्वर! तब उन योद्धाओंके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनि वहीं गया, जहाँ आपका पुत्र दुर्योधन समरांगणमें विचित्र युद्ध करनेवाले वीरोंद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ खड़ा था॥ ६-७॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा रथानीके व्यवस्थितम्।
स रथांस्तावकान् सर्वान् हर्षयन् शकुनिस्ततः॥ ८॥
दुर्योधनमिदं वाक्यं हृष्टरूपो विशाम्पते।
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानोऽब्रवीन्नृपम्॥ ९॥

प्रजानाथ! तदनन्तर दुर्योधनको रथसेनामें खड़ा देख आपके सम्पूर्ण रथियोंका हर्ष बढ़ाता हुआ शकुनि अपनेको कृतार्थ-सा मानकर बड़े हर्षके साथ राजा दुर्योधनसे इस प्रकार बोला—॥ ८-९॥

जहि राजन् रथानीकमश्वाः सर्वे जिता मया।
नात्यक्त्वा जीवितं संख्ये शक्यो जेतुं युधिष्ठिरः॥ १०॥

'राजन्! शत्रुकी रथसेनाका नाश कीजिये। समस्त घुड़सवारोंको मैंने जीत लिया है। राजा युधिष्ठिर अपने प्राणोंका परित्याग किये बिना जीते नहीं जा सकते॥ १०॥

हते तस्मिन् रथानीके पाण्डवेनाभिपालिते।
गजानेतान् हनिष्यामः पदातींश्चेतरांस्तथा॥ ११॥

'पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरके द्वारा सुरक्षित इस रथ-सेनाका संहार हो जानेपर हम इन हाथीसवारों, पैदलों और घुड़सवारोंका भी वध कर डालेंगे'॥ ११॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य तावका जयगृद्धिनः।
जवेनाभ्यपतन् हृष्टाः पाण्डवानामनीकिनीम्॥ १२॥

विजयाभिलाषी शकुनिकी यह बात सुनकर आपके सैनिक अत्यन्त प्रसन्न हो बड़े वेगसे पाण्डव-सेनापर टूट पड़े॥ १२॥

सर्वे विवृततूणीराः प्रगृहीतशरासनाः।
शरासनानि धुन्वानाः सिंहनादान् प्रणेदिरे॥ १३॥

सबके तरकसोंके मुँह खुल गये, सबने हाथमें धनुष ले लिये और सभी धनुष हिलाते हुए जोर-जोरसे सिंहनाद करने लगे॥ १३॥

ततो ज्यातलनिर्घोषः पुनरासीद् विशाम्पते।
प्रादुरासीच्छराणां च सुमुक्तानां सुदारुणः॥ १४॥

प्रजानाथ! तदनन्तर फिर प्रत्यंचाकी टंकार और अच्छी तरह छोड़े हुए बाणोंकी भयानक सनसनाहट प्रकट होने लगी॥ १४॥

तान् समीपगतान् दृष्ट्वा जवेनोद्यतकार्मुकान्।
उवाच देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ १५॥

उन सबको बड़े वेगसे धनुष उठाये पास आया देखकर कुन्तीकुमार अर्जुनने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—॥ १५॥

चोदयाश्वानसम्भ्रान्तः प्रविशैतद् बलार्णवम्।
अन्तमद्य गमिष्यामि शत्रूणां निशितैः शरैः॥ १६॥

अष्टादश दिनान्यद्य युद्धस्यास्य जनार्दन।
वर्तमानस्य महतः समासाद्य परस्परम्॥ १७॥

'जनार्दन! आप स्वस्थचित्त होकर इन घोड़ोंको हाँकिये और इस सैन्यसागरमें प्रवेश कीजिये। आज मैं तीखे बाणोंसे शत्रुओंका अन्त कर डालूँगा। परस्पर भिड़कर इस महान् संग्रामके आरम्भ हुए आज अठारह दिन हो गये॥ १६-१७॥

अनन्तकल्पा ध्वजिनी भूत्वा ह्येषां महात्मनाम्।
क्षयमद्य गता युद्धे पश्य दैवं यथाविधम्॥ १८॥

'इन महामनस्वी कौरवोंके पास अपार सेना थी; परंतु युद्धमें इस समयतक प्रायः नष्ट हो गयी। देखिये, प्रारब्धका कैसा खेल है?॥ १८॥

समुद्रकल्पं च बलं धार्तराष्ट्रस्य माधव।
अस्मानासाद्य संजातं गोष्पदोपममच्युत॥ १९॥

'माधव! अच्युत! दुर्योधनकी समुद्र-जैसी अनन्त सेना हमलोगोंसे टक्कर लेकर आज गायकी खुरीके समान हो गयी है॥ १९॥

हते भीष्मे तु संदध्याच्छिवं स्यादिह माधव।
न च तत् कृतवान् मूढो धार्तराष्ट्रः सुबालिशः॥ २०॥

'माधव! यदि भीष्मके मारे जानेपर दुर्योधन सन्धि कर लेता तो यहाँ सबका कल्याण होता; परंतु उस अज्ञानी मूर्खने वैसा नहीं किया॥ २०॥

उक्तं भीष्मेण यद् वाक्यं हितं तथ्यं च माधव।
तच्चापि नासौ कृतवान् वीतबुद्धिः सुयोधनः॥ २१॥

'मधुकुलभूषण! भीष्मजीने जो सच्ची और हितकर बात बतायी थी, उसे भी उस बुद्धिहीन दुर्योधनने नहीं माना॥

तस्मिंस्तु तुमुले भीष्मे प्रच्युते धरणीतले।
न जाने कारणं किं तु येन युद्धमवर्तत॥ २२॥

'तदनन्तर घमासान युद्ध आरम्भ हुआ और उसमें भीष्मजी पृथ्वीपर मार गिराये गये। फिर भी न जाने क्या कारण था, जिससे युद्ध चालू ही रह गया॥ २२॥

मूढांस्तु सर्वथा मन्ये धार्तराष्ट्रान् सुबालिशान्।
निहते शान्तनोः पुत्रे येऽकार्षुः संयुगं पुनः॥ २३॥

'मैं धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंको सर्वथा मूर्ख और नादान समझता हूँ, जिन्होंने शान्तनुनन्दन भीष्मजीके धराशायी होनेपर भी पुनः युद्ध जारी रखा॥ २३॥

अनन्तरं च निहते द्रोणे ब्रह्मविदां वरे।
राधेये च विकर्णे च नैवाशाम्यत वैशसम्॥ २४॥

'तत्पश्चात् वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, राधापुत्र कर्ण और विकर्ण मारे गये तो भी यह मार-काट बंद नहीं हुई॥ २४॥

अल्पावशिष्टे सैन्येऽस्मिन् सूतपुत्रे च पातिते।
सपुत्रे वै नरव्याघ्रे नैवाशाम्यत वैशसम्॥ २५॥

'पुत्रसहित नरश्रेष्ठ सूतपुत्रके मार गिराये जानेपर जब कौरव-सेना थोड़ी-सी ही बच रही थी तो भी यह युद्धकी आग नहीं बुझी॥ २५॥

श्रुतायुषि हते वीरे जलसन्धे च पौरवे।
श्रुतायुधे च नृपतौ नैवाशाम्यत वैशसम्॥ २६॥

'श्रुतायु, वीर जलसन्ध, पौरव तथा राजा श्रुतायुधके मारे जानेपर भी यह संहार बंद नहीं हुआ॥ २६॥

भूरिश्रवसि शल्ये च शाल्वे चैव जनार्दन।
आवन्त्येषु च वीरेषु नैवाशाम्यत वैशसम्॥ २७॥

'जनार्दन! भूरिश्रवा, शल्य, शाल्व तथा अवन्ति देशके वीर मारे गये तो भी यह युद्धकी ज्वाला शान्त न हो सकी॥

जयद्रथे च निहते राक्षसे चाप्यलायुधे।
बाह्लिके सोमदत्ते च नैवाशाम्यत वैशसम्॥ २८॥

'जयद्रथ, बाह्लिक, सोमदत्त तथा राक्षस अलायुध--ये सभी परलोकवासी हो गये तो भी यह युद्धकी प्यास न बुझ सकी॥ २८॥

भगदत्ते हते शूरे काम्बोजे च सुदारुणे।
दुःशासने च निहते नैवाशाम्यत वैशसम्॥ २९॥

'भगदत्त, शूरवीर काम्बोजराज सुदक्षिण तथा अत्यन्त दारुण दुःशासनके मारे जानेपर भी कौरवोंकी युद्ध-पिपासा शान्त नहीं हुई॥ २९॥

दृष्ट्वा विनिहतान् शूरान् पृथङ्माण्डलिकान् नृपान्।
बलिनश्च रणे कृष्ण नैवाशाम्यत वैशसम्॥ ३०॥

'श्रीकृष्ण! विभिन्न मण्डलोंके स्वामी शूरवीर बलवान् नरेशोंको रणभूमिमें मारा गया देखकर भी यह युद्धकी आग बुझ न सकी॥ ३०॥

अक्षौहिणीपतीन् दृष्ट्वा भीमसेननिपातितान्।
मोहाद् वा यदि वा लोभान्नैवाशाम्यत वैशसम्॥ ३१॥

'भीमसेनके द्वारा धराशायी किये गये अक्षौहिणी-पतियोंको देखकर भी मोहवश अथवा लोभके कारण युद्ध बंद न हो सका॥ ३१॥

को नु राजकुले जातः कौरवेयो विशेषतः।
निरर्थकं महद् वैरं कुर्यादन्यः सुयोधनात्॥ ३२॥

'राजाके कुलमें उत्पन्न होकर विशेषतः कुरुकुलकी संतान होकर दुर्योधनके सिवा दूसरा कौन ऐसा है, जो व्यर्थ ही (अपने बन्धुओंके साथ) महान् वैर बाँधे॥

गुणतोऽभ्यधिकान् ज्ञात्वा बलतः शौर्यतोऽपि वा।
अमूढः को नु युद्धयेत जानन् प्राज्ञो हिताहितम्॥ ३३॥

'दूसरोंको गुणसे, बलसे अथवा शौर्यसे भी अपनी

अपेक्षा महान् जानकर भी अपने हित और अहितको समझनेवाला मूढ़ताशून्य कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष होगा? जो उनके साथ युद्ध करेगा॥ ३३॥

यन्न तस्य मनो ह्यासीत् त्वयोक्तस्य हितं वचः।
प्रशमे पाण्डवैः सार्धं सोऽन्यस्य शृणुयात् कथम्॥ ३४॥

'आपके द्वारा हितकारक वचन कहे जानेपर भी जिसका पाण्डवोंके साथ संधि करनेका मन नहीं हुआ, वह दूसरेकी बात कैसे सुन सकता है?॥ ३४॥

येन शान्तनवो वीरो द्रोणो विदुर एव च।
प्रत्याख्याताः शमस्यार्थे किं नु तस्याद्य भेषजम्॥ ३५॥

'जिसने संधिके विषयमें वीर शान्तनुनन्दन भीष्म, द्रोणाचार्य और विदुरजीकी भी बात माननेसे इनकार कर दी, उसके लिये अब कौन-सी दवा है?॥ ३५॥

मौर्ख्याद् येन पिता वृद्धः प्रत्याख्यातो जनार्दन।
तथा माता हितं वाक्यं भाषमाणा हितैषिणी॥ ३६॥
प्रत्याख्याता ह्यसत्कृत्य स कस्मै रोचयेद् वचः।

'जनार्दन! जिसने मूर्खतावश अपने वृद्ध पिताकी भी बात नहीं मानी और हितकी बात बतानेवाली अपनी हितैषिणी माताका भी अपमान करके उसकी आज्ञा माननेसे इनकार कर दिया, उसे दूसरे किसीकी बात क्यों रुचेगी?॥

कुलान्तकरणो व्यक्तं जात एष जनार्दन॥ ३७॥
तथास्य दृश्यते चेष्टा नीतिश्चैव विशाम्पते।

'जनार्दन! निश्चय ही यह अपने कुलका विनाश करनेवाला पैदा हुआ है। प्रजानाथ! इसकी नीति और चेष्टा ऐसी ही दिखायी देती है॥ ३७½॥

नैष दास्यति नो राज्यमिति मे मतिरच्युत॥ ३८॥
उक्तोऽहं बहुशस्तात विदुरेण महात्मना।
न जीवन् दास्यते भागं धार्तराष्ट्रस्तु मानद॥ ३९॥

'अच्युत! मैं समझता हूँ, यह अब भी हमें अपना राज्य नहीं देगा। तात! महात्मा विदुरने मुझसे अनेक बार कहा है कि 'मानद! दुर्योधन जीते-जी राज्यका भाग नहीं लौटायेगा॥ ३८-३९॥

यावत् प्राणा धरिष्यन्ति धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः।
तावद् युष्मास्वपापेषु प्रचरिष्यति पापकम्॥ ४०॥

'दुर्बुद्धि दुर्योधनके प्राण जबतक शरीरमें स्थित रहेंगे, तबतक तुम निष्पाप बन्धुओंपर भी वह पापपूर्ण बर्ताव ही करता रहेगा॥ ४०॥

न च युक्तोऽन्यथा जेतुमृते युद्धेन माधव।
इत्यब्रवीत् सदा मां हि विदुरः सत्यदर्शनः॥ ४१॥

'माधव! युद्धके सिवा और किसी उपायसे दुर्योधनको जीतना सम्भव नहीं है।' यह बात सत्यदर्शी विदुरजी सदासे ही मुझे कहते आ रहे हैं॥ ४१॥

तत् सर्वमद्य जानामि व्यवसायं दुरात्मनः।
यदुक्तं वचनं तेन विदुरेण महात्मना॥ ४२॥

'महात्मा विदुरने जो बात कही है, उसके अनुसार मैं उस दुरात्माके सम्पूर्ण निश्चयको आज जानता हूँ॥

यो हि श्रुत्वा वचः पथ्यं जामदग्न्याद् यथातथम्।
अवामन्यत दुर्बुद्धिर्ध्रुवं नाशमुखे स्थितः॥ ४३॥

'जिस दुर्बुद्धिने यमदग्निनन्दन परशुरामजीके मुखसे यथार्थ एवं हितकारक वचन सुनकर भी उसकी अवहेलना कर दी, वह निश्चय ही विनाशके मुखमें स्थित है॥ ४३॥

उक्तं हि बहुशः सिद्धैर्जातमात्रे सुयोधने।
एनं प्राप्य दुरात्मानं क्षयं क्षत्रं गमिष्यति॥ ४४॥

'दुर्योधनके जन्म लेते ही सिद्ध पुरुषोंने बारंबार कहा था कि 'इस दुरात्माको पाकर क्षत्रियजातिका विनाश हो जायगा'॥ ४४॥

तदिदं वचनं तेषां निरुक्तं वै जनार्दन।
क्षयं याता हि राजानो दुर्योधनकृते भृशम्॥ ४५॥

'जनार्दन! उनकी वह बात यथार्थ हो गयी; क्योंकि दुर्योधनके कारण बहुत-से राजा नष्ट हो गये॥

सोऽद्य सर्वान् रणे योधान् निहनिष्यामि माधव।
क्षत्रियेषु हतेष्वाशु शून्ये च शिबिरे कृते॥ ४६॥
वधाय चात्मनोऽस्माभिः संयुगं रोचयिष्यति।
तदन्तं हि भवेद् वैरमनुमानेन माधव॥ ४७॥

'माधव! आज मैं रणभूमिमें शत्रुपक्षके समस्त योद्धाओंको मार गिराऊँगा। इन क्षत्रियोंका शीघ्र ही संहार हो जानेपर जब सारा शिविर सूना हो जायगा, तब वह अपने वधके लिये हमलोगोंके साथ जूझना पसंद करेगा। माधव! मेरे अनुमानसे उसका वध होनेपर ही इस वैरका अन्त होगा॥ ४७॥

एवं पश्यामि वार्ष्णेय चिन्तयन् प्रज्ञया स्वया।
विदुरस्य च वाक्येन चेष्टया च दुरात्मनः॥ ४८॥

'वृष्णिनन्दन! मैं अपनी बुद्धिसे, विदुरजीके वाक्यसे और दुरात्मा दुर्योधनकी चेष्टासे भी सोच-विचारकर ऐसा ही होता देखता हूँ॥ ४८॥

तस्माद् याहि चमूं वीर यावद्धन्मि शितैः शरैः।
दुर्योधनं महाबाहो वाहिनीं चास्य संयुगे॥ ४९॥

'अतः वीर! महाबाहो! आप कौरव-सेनाकी ओर चलिये, जिससे मैं पैने बाणोंद्वारा युद्धस्थलमें दुर्योधन और उसकी सेनाका संहार करूँ॥ ४९॥

क्षेममद्य करिष्यामि धर्मराजस्य माधव।
हत्वैतद् दुर्बलं सैन्यं धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः॥ ५०॥

'माधव! आज मैं दुर्योधनके देखते-देखते इस दुर्बल सेनाका नाश करके धर्मराजका कल्याण करूँगा'॥ ५०॥

संजय उवाच

अभीषुहस्तो दाशार्हस्तथोक्तः सव्यसाचिना।
तद् बलौघममित्राणामभीतः प्राविशद् बलात्॥ ५१॥

संजय कहते हैं—राजन्! सव्यसाची अर्जुनके ऐसा कहनेपर घोड़ोंकी बागडोर हाथमें लिये दशार्हकुल-नन्दन श्रीकृष्णने निर्भय हो शत्रुओंके उस सैन्य-सागरमें बलपूर्वक प्रवेश किया॥ ५१॥

कुन्तखड्गशरैर्घोरं शक्तिकण्टकसंकुलम्।
गदापरिघपन्थानं रथनागमहाद्रुमम्॥ ५२॥
हयपत्तिलताकीर्णं गाहमानो महायशाः।
व्यचरत्तत्र गोविन्दो रथेनातिपताकिना॥ ५३॥

वह सेना एक वनके समान थी। वह वन कुन्त, खड्ग और बाणोंसे अत्यन्त भयंकर प्रतीत होता था, शक्तिरूपी काँटोंसे भरा हुआ था, गदा और परिघ उसमें जानेके मार्ग थे, रथ और हाथी उसमें रहनेवाले बड़े-बड़े वृक्ष थे, घोड़े और पैदलरूपी लताओंसे वह व्याप्त हो रहा था, महायशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण ऊँची पताकावाले रथके द्वारा उस सैन्यवनमें प्रवेश करके सब ओर विचरने लगे॥

ते हयाः पाण्डुरा राजन् वहन्तोऽर्जुनमाहवे।
दिक्षु सर्वास्वदृश्यन्त दाशार्हेण प्रचोदिताः॥ ५४॥

राजन्! श्रीकृष्णके द्वारा हाँके गये वे सफेद घोड़े युद्धस्थलमें अर्जुनको ढोते हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें दिखायी पड़ते थे॥ ५४॥

ततः प्रायाद् रथेनाजौ सव्यसाची परंतपः।
किरन् शरशतांस्तीक्ष्णान् वारिधारा घनो यथा॥ ५५॥
प्रादुरासीन्महान् शब्दः शराणां नतपर्वणाम्।

फिर तो जैसे बादल पानीकी धारा बरसाता है, उसी प्रकार शत्रुओंको संताप देनेवाले अर्जुन युद्धस्थलमें सैकड़ों पैने बाणोंकी वर्षा करते हुए रथके द्वारा आगे बढ़े। उस समय झुकी हुई गाँठवाले बाणोंका महान् शब्द प्रकट होने लगा॥ ५५ $\frac{1}{2}$॥

इषुभिश्छाद्यमानानां समरे सव्यसाचिना॥ ५६॥
असज्जन्तस्तनुत्रेषु शरौघाः प्रापतन् भुवि।

सव्यसाची अर्जुनद्वारा समरभूमिमें बाणोंसे आच्छादित होनेवाले सैनिकोंके कवचोंपर उनके बाण अटकते नहीं थे। वे चोट करके पृथ्वीपर गिर जाते थे॥ ५६ $\frac{1}{2}$॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शा गाण्डीवप्रेषिताः शराः॥ ५७॥
नरान् नागान् समाहत्य हयांश्चापि विशाम्पते।
अपतन्त रणे बाणाः पतङ्गा इव घोषिणः॥ ५८॥

प्रजानाथ! इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर स्पर्शवाले बाण गाण्डीवसे प्रेरित हो मनुष्यों, घोड़ों और हाथियोंका भी संहार करके शब्द करनेवाले टिड्डीदलोंके समान रणभूमिमें गिर पड़ते थे॥ ५८॥

आसीत् सर्वमवच्छन्नं गाण्डीवप्रेषितैः शरैः।
न प्राज्ञायन्त समरे दिशो वा प्रदिशोऽपि वा॥ ५९॥

गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा उस रणभूमिकी सारी वस्तुएँ आच्छादित हो गयी थीं। दिशाओं अथवा विदिशाओंका भी ज्ञान नहीं हो पाता था॥ ५९॥

सर्वमासीज्जगत् पूर्णं पार्थनामाङ्कितैः शरैः।
रुक्मपुङ्खैस्तैलधौतैः कर्मारपरिमार्जितैः॥ ६०॥

अर्जुनके नामसे अंकित, तेलके धोये और कारीगरके साफ किये सुवर्णमय पंखवाले बाणोंद्वारा वहाँका सारा जगत् व्याप्त हो रहा था॥ ६०॥

ते दह्यमानाः पार्थेन पावकेनेव कुञ्जराः।
पार्थं न प्रजहुर्घोरा वध्यमानाः शितैः शरैः॥ ६१॥

दावानलके आगसे जलनेवाले हाथियोंके समान पार्थके पैने बाणोंकी मार खाकर दग्ध होते हुए वे घोर कौरवयोद्धा अर्जुनको छोड़कर हटते नहीं थे॥ ६१॥

शरचापधरः पार्थः प्रज्वलन्निव भास्करः।
ददाह समरे योधान् कक्षमग्निरिव ज्वलन्॥ ६२॥

जैसे जलती हुई आग घास-फूसके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाले धनुष-बाणधारी अर्जुनने समरांगणमें आपके योद्धाओंको दग्ध कर दिया॥ ६२॥

यथा वनान्ते वनपैर्विसृष्टः
कक्षं दहेत् कृष्णगतिः सुघोषः।
भूरिद्रुमं शुष्कलतावितानं
भृशं समृद्धो ज्वलनः प्रतापी॥ ६३॥
एवं स नाराचगणप्रतापी
शरार्चिरुच्चावचतिग्मतेजाः।
ददाह सर्वां तव पुत्रसेना-
ममृष्यमाणस्तरसा तरस्वी॥ ६४॥

जैसे वनचरोंद्वारा वनके भीतर लगायी हुई आग धीरे-धीरे बढ़कर प्रज्वलित एवं महान् तापसे युक्त हो घास-फूसके ढेरको, बहुसंख्यक वृक्षोंको और सूखी हुई लतावल्लरियोंको भी जलाकर भस्म कर देती है, उसी प्रकार नाराचसमूहोंद्वारा ताप देनेवाले, बाणरूपी ज्वालाओंसे युक्त, वेगवान्, प्रचण्ड तेजस्वी और अमर्षमें भरे हुए अर्जुनने समरांगणमें आपके पुत्रकी सारी रथसेनाको शीघ्रतापूर्वक भस्म कर डाला॥ ६३-६४॥

तस्येषवः प्राणहराः सुमुक्ता
नासज्जन् वै वर्मसु रुक्मपुङ्खाः।
न च द्वितीयं प्रमुमोच बाणं
नरे हये वा परमद्विपे वा॥ ६५॥

उनके अच्छी तरह छोड़े हुए सुवर्णमय पंखवाले प्राणान्तकारी बाण कवचोंपर नहीं अटकते थे। उन्हें छेदकर भीतर घुस जाते थे। वे मनुष्य, घोड़े अथवा विशालकाय हाथीपर भी दूसरा बाण नहीं छोड़ते थे (एक ही बाणसे उसका काम तमाम कर देते थे)॥ ६५॥

अनेकरूपाकृतिभिर्हि बाणै-
र्महारथानीकमनुप्रविश्य।
स एवैकस्तव पुत्रस्य सेनां
जघान दैत्यानिव वज्रपाणिः॥ ६६॥

जैसे वज्रधारी इन्द्र दैत्योंका संहार कर डालते हैं, उसी प्रकार एकमात्र अर्जुनने ही रथियोंकी विशाल सेनामें प्रवेश करके अनेक रूप-रंगवाले बाणोंद्वारा आपके पुत्रकी सेनाका विनाश कर दिया॥ ६६॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि संकुलयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें संकुलयुद्धविषयक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

अर्जुन और भीमसेनद्वारा कौरवोंकी रथसेना एवं गजसेनाका संहार, अश्वत्थामा आदिके द्वारा दुर्योधनकी खोज, कौरवसेनाका पलायन तथा सात्यकिद्वारा संजयका पकड़ा जाना

संजय उवाच

पश्यतां यतमानानां शूराणामनिवर्तिनाम्।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! यद्यपि कौरवयोद्धा युद्धसे पीछे न हटनेवाले शूरवीर थे और विजयके लिये पूरा प्रयत्न कर रहे थे तो भी उनके देखते-देखते अर्जुनने गाण्डीव धनुषसे उनके संकल्पको व्यर्थ कर दिया॥ १॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शानविषह्यान् महौजसः।
विसृजन् दृश्यते बाणान् धारा मुञ्चन्निवाम्बुदः॥ २॥

जैसे बादल पानीकी धारा गिराता है, उसी प्रकार वे बाणोंकी वर्षा करते दिखायी देते थे। उन बाणोंका स्पर्श इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर था। वे बाण असह्य एवं महान् शक्तिशाली थे॥ २॥

तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं किरीटिना।
सम्प्रदुद्राव संग्रामात् तव पुत्रस्य पश्यतः॥ ३॥

भरतश्रेष्ठ! किरीटधारी अर्जुनकी मार खाकर वह बची हुई सेना आपके पुत्रके देखते-देखते रणभूमिसे भाग चली॥ ३॥

पितॄन् भ्रातॄन् परित्यज्य वयस्यानपि चापरे।
हतधुर्या रथाः केचिद्धतसूतास्तथा परे॥ ४॥

कुछ लोग अपने पिता और भाइयोंको छोड़कर भागे तो दूसरे लोग मित्रोंको। कितने ही रथोंके घोड़े मारे गये थे और कितनोंके सारथि॥ ४॥

भग्नाक्षयुगचक्रेषाः केचिदासन् विशाम्पते।
अन्येषां सायकाः क्षीणास्तथान्ये बाणपीडिताः॥ ५॥

प्रजानाथ! किन्हींके रथोंके जूए, धुरे, पहिये और हरसे भी टूट गये थे, दूसरे योद्धाओंके बाण नष्ट हो गये और अन्य योद्धा अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित हो गये थे॥

अक्षता युगपत् केचित् प्राद्रवन् भयपीडिताः।
केचित् पुत्रानुपादाय हतभूयिष्ठबान्धवाः॥ ६॥

कुछ लोग घायल न होनेपर भी भयसे पीड़ित हो एक साथ ही भागने लगे और कुछ लोग अधिकांश बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर पुत्रोंको साथ लेकर भागे॥ ६॥

विचुक्रुशुः पितॄंस्त्वन्ये सहायानपरे पुनः।
बान्धवांश्च नरव्याघ्र भ्रातॄन् सम्बन्धिनस्तथा॥ ७॥
दुद्रुवुः केचिदुत्सृज्य तत्र तत्र विशाम्पते।
बहवोऽत्र भृशं विद्धा मुह्यमाना महारथाः॥ ८॥

नरव्याघ्र! कोई पिताको पुकारते थे, कोई सहायकोंको। प्रजानाथ! कुछ लोग अपने भाई-बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियोंको जहाँ-के-तहाँ छोड़कर भाग गये। बहुत-से महारथी पार्थके बाणोंसे अत्यन्त घायल हो मूर्च्छित हो रहे थे॥ ७-८॥

निःश्वसन्ति स्म दृश्यन्ते पार्थबाणहता नराः।
तानन्ये रथमारोप्य ह्याश्वास्य च मुहूर्तकम्॥ ९॥
विश्रान्ताश्च वितृष्णाश्च पुनर्युद्धाय जग्मिरे।

अर्जुनके बाणोंसे आहत हो कितने ही मनुष्य

रणभूमिमें ही पड़े-पड़े उच्छ्वास लेते दिखायी देते थे। उन्हें दूसरे लोग अपने रथपर बिठाकर घड़ी-दो-घड़ी आश्वासन दे स्वयं भी विश्राम करके प्यास बुझाकर पुनः युद्धके लिये जाते थे॥ ९½॥

तानपास्य गताः केचित् पुनरेव युयुत्सवः॥ १०॥
कुर्वन्तस्तव पुत्रस्य शासनं युद्धदुर्मदाः।

रणभूमिमें उन्मत्त होकर लड़नेवाले कितने ही युद्धाभिलाषी योद्धा उन घायलोंको वैसे ही छोड़कर आपके पुत्रकी आज्ञाका पालन करते हुए पुनः युद्धके लिये चल देते थे॥ १०½॥

पानीयमपरे पीत्वा पर्याश्वास्य च वाहनम्॥ ११॥
वर्माणि च समारोप्य केचिद् भरतसत्तम।
समाश्वास्यापरे भ्रातॄन् निक्षिप्य शिबिरेऽपि च॥ १२॥
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये पुनर्युद्धमरोचयन्।

भरतश्रेष्ठ! दूसरे लोग स्वयं पानी पीकर घोड़ोंको भी थकावट दूर करते। उसके बाद कवच धारण करके लड़नेके लिये जाते थे। अन्य बहुत-से सैनिक अपने घायल बन्धुओं, पुत्रों और पिताओंको आश्वासन दे उन्हें शिविरमें रख आते। उसके बाद युद्धमें मन लगाते थे॥ ११-१२½॥

सज्जयित्वा रथान् केचिद् यथामुख्यं विशाम्पते॥ १३॥
आप्लुत्य पाण्डवानीकं पुनर्युद्धमरोचयन्।

प्रजानाथ! कुछ लोग अपने रथको रणसामग्रीसे सुसज्जित करके पाण्डव-सेनापर चढ़ आते और अपनी प्रधानताके अनुसार किसी श्रेष्ठ वीरके साथ जूझना पसंद करते थे॥

ते शूराः किङ्किणीजालैः समाच्छन्ना बभासिरे॥ १४॥
त्रैलोक्यविजये युक्ता यथा दैतेयदानवाः।

वे शूरवीर कौरव-सैनिक रथमें लगे हुए किंकिणी-समूहसे आच्छादित हो तीनों लोकोंपर विजय पानेके लिये उद्यत हुए दैत्यों और दानवोंके समान सुशोभित होते थे॥

आगम्य सहसा केचिद् रथैः स्वर्णविभूषितैः॥ १५॥
पाण्डवानामनीकेषु धृष्टद्युम्नमयोधयन्।

कुछ लोग अपने सुवर्णभूषित रथोंके द्वारा सहसा आकर पाण्डवसेनाओंमें धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध करने लगे॥

धृष्टद्युम्नोऽपि पाञ्चाल्यः शिखण्डी च महारथः॥ १६॥
नाकुलिस्तु शतानीको रथानीकमयोधयन्।

पांचालराजपुत्र धृष्टद्युम्न, महारथी शिखण्डी और नकुलपुत्र शतानीक—ये आपकी रथसेनाके साथ युद्ध कर रहे थे॥ १६½॥

पाञ्चाल्यस्तु ततः क्रुद्धः सैन्येन महताऽऽवृतः॥ १७॥
अभ्यद्रवत् सुसंक्रुद्धस्तावकान् हन्तुमुद्यतः।

तदनन्तर आपके सैनिकोंका वध करनेके लिये उद्यत हो विशाल सेनासे घिरे हुए धृष्टद्युम्नने अत्यन्त क्रोधपूर्वक आक्रमण किया॥ १७½॥

ततस्त्वापततस्तस्य तव पुत्रो जनाधिप॥ १८॥
बाणसंघाननेकान् वै प्रेषयामास भारत।

नरेश्वर! भरतनन्दन! उस समय आपके पुत्रने आक्रमण करनेवाले धृष्टद्युम्नपर बहुत-से बाणसमूहोंका प्रहार किया॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजंस्तव पुत्रेण धन्विना॥ १९॥
नाराचैरर्धनाराचैर्बहुभिः क्षिप्रकारिभिः।
वत्सदन्तैश्च बाणैश्च कर्मारपरिमार्जितैः॥ २०॥
अश्वांश्च चतुरो हत्वा बाह्वोरुरसि चार्पितः।

राजन्! आपके धनुर्धर पुत्रने बहुत-से नाराच, अर्ध-नाराच, शीघ्रकारी वत्सदन्त और कारीगरद्वारा साफ किये हुए बाणोंसे धृष्टद्युम्नके चारों घोड़ोंको मारकर उनकी दोनों भुजाओं और छातीमें भी चोट पहुँचायी॥ १९-२०½॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तोत्रार्दित इव द्विपः॥ २१॥
तस्याश्वांश्चतुरो बाणैः प्रेषयामास मृत्यवे।
सारथेश्चास्य भल्लेन शिरः कायादपाहरत्॥ २२॥

दुर्योधनके प्रहारसे अत्यन्त घायल हुए महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न अंकुशसे पीड़ित हुए हाथीके समान कुपित हो उठे और उन्होंने अपने बाणोंद्वारा उसके चारों घोड़ोंको मौतके हवाले कर दिया तथा एक भल्लसे उसके सारथिका भी सिर धड़से काट लिया॥ २१-२२॥

ततो दुर्योधनो राजा पृष्ठमारुह्य वाजिनः।
अपाक्रामद्धतरथो नातिदूरमरिंदमः॥ २३॥

इस प्रकार रथके नष्ट हो जानेपर शत्रुदमन राजा दुर्योधन एक घोड़ेकी पीठपर सवार हो वहाँसे कुछ दूर हट गया॥ २३॥

दृष्ट्वा तु हतविक्रान्तं स्वमनीकं महाबलः।
तव पुत्रो महाराज प्रययौ यत्र सौबलः॥ २४॥

महाराज! अपनी सेनाका पराक्रम नष्ट हुआ देख आपका महाबली पुत्र दुर्योधन वहीं चला गया, जहाँ सुबलपुत्र शकुनि खड़ा था॥ २४॥

ततो रथेषु भग्नेषु त्रिसाहस्रा महाद्विपाः।
पाण्डवान् रथिनः सर्वान् समन्तात् पर्यवारयन्॥ २५॥

रथसेनाके भंग हो जानेपर तीन हजार विशालकाय गजराजोंने समस्त पाण्डवरथियोंको चारों ओरसे घेर लिया॥

ते वृताः समरे पञ्च गजानीकेन भारत।
अशोभन्त महाराज ग्रहा व्याप्ता घनैरिव॥ २६॥

भरतनन्दन! महाराज! समरांगणमें गजसेनासे घिरे हुए पाँचों पाण्डव मेघोंसे आवृत हुए पाँच ग्रहोंके समान शोभा पाते थे॥ २६॥

ततोऽर्जुनो महाराज लब्धलक्ष्यो महाभुजः।
विनिर्ययौ रथेनैव श्वेताश्वः कृष्णसारथिः॥ २७॥

राजेन्द्र! तब भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सारथि हैं, वे श्वेतवाहन महाबाहु अर्जुन अपने बाणोंका लक्ष्य पाकर रथके द्वारा आगे बढ़े॥ २७॥

तैः समन्तात् परिवृतः कुञ्जरैः पर्वतोपमैः।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्गजानीकमयोधयत् ॥ २८॥

उन्हें चारों ओरसे पर्वताकार हाथियोंने घेर रखा था। वे तीखी धारवाले निर्मल नाराचोंद्वारा उस गजसेनाके साथ युद्ध करने लगे॥ २८॥

तत्रैकबाणनिहतानपश्याम महागजान्।
पतितान् पात्यमानांश्च निर्भिन्नान् सव्यसाचिना॥ २९॥

वहाँ हमने देखा कि सव्यसाची अर्जुनके एक ही बाणकी चोट खाकर बड़े-बड़े हाथियोंके शरीर विदीर्ण होकर गिर गये हैं और लगातार गिराये जा रहे हैं॥ २९॥

भीमसेनस्तु तान् दृष्ट्वा नागान् मत्तगजोपमः।
करेणादाय महतीं गदामभ्यपतद् बली॥ ३०॥
अथाप्लुत्य रथात् तूर्णं दण्डपाणिरिवान्तकः।

मतवाले हाथीके समान पराक्रमी बलवान् भीमसेन उन गजराजोंको आते देख तुरंत ही रथसे कूदकर हाथमें विशाल गदा लिये दण्डधारी यमराजके समान उनपर टूट पड़े॥ ३०½॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा पाण्डवानां महारथम्॥ ३१॥
वित्रेसुस्तावकाः सैन्याः शकृन्मूत्रे च सुस्रुवुः।

पाण्डव-महारथी भीमसेनको गदा उठाये देख आपके सैनिक भयसे थर्रा उठे और मल-मूत्र करने लगे॥ ३१½॥

आविग्नं च बलं सर्वं गदाहस्ते वृकोदरे॥ ३२॥
गदया भीमसेनेन भिन्नकुम्भान् रजस्वलान्।
धावमानानपश्याम कुञ्जरान् पर्वतोपमान्॥ ३३॥

भीमसेनके गदा हाथमें लेते ही सारी कौरवसेना उद्विग्न हो उठी। हमने देखा, भीमसेनकी गदासे उन धूलिधूसर पर्वताकार हाथियोंके कुम्भस्थल फट गये हैं और वे इधर-उधर भाग रहे हैं॥ ३२-३३॥

प्राद्रवन् कुञ्जरास्ते तु भीमसेनगदाहताः।
पेतुरार्तस्वरं कृत्वा छिन्नपक्षा इवाद्रयः॥ ३४॥

भीमसेनकी गदासे घायल हो वे हाथी भाग चले और आर्तनाद करके पंख कटे हुए पर्वतोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३४॥

प्रभिन्नकुम्भांस्तु बहून् द्रवमाणानितस्ततः।
पतमानांश्च सम्प्रेक्ष्य वित्रेसुस्तव सैनिकाः॥ ३५॥

कुम्भस्थल फट जानेके कारण इधर-उधर भागते और गिरते हुए बहुत-से हाथियोंको देखकर आपके सैनिक संत्रस्त हो उठे॥ ३५॥

युधिष्ठिरोऽपि संक्रुद्धो माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
गार्ध्रपत्रैः शितैर्बाणैर्निन्युर्वै यमसादनम्॥ ३६॥

युधिष्ठिर तथा माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव भी अत्यन्त कुपित हो गीधकी पाँखोंसे युक्त पैने बाणोंद्वारा उन हाथियोंको यमलोक भेजने लगे॥ ३६॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे पराजित्य नराधिपम्।
अपक्रान्ते तव सुते हयपृष्ठं समाश्रिते॥ ३७॥
दृष्ट्वा च पाण्डवान् सर्वान् कुञ्जरैः परिवारितान्।
धृष्टद्युम्नो महाराज सहसा समुपाद्रवत्॥ ३८॥
पुत्रः पाञ्चालराजस्य जिघांसुः कुञ्जरान् ययौ।

उधर धृष्टद्युम्नने समरांगणमें राजा दुर्योधनको पराजित कर दिया था। महाराज! जब आपका पुत्र घोड़ेकी पीठपर सवार हो वहाँसे भाग गया, तब समस्त पाण्डवोंको हाथियोंसे घिरा हुआ देखकर धृष्टद्युम्नने सहसा उस गजसेनापर धावा किया। पांचालराजके पुत्र धृष्टद्युम्न उन हाथियोंको मार डालनेके लिये वहाँसे चल दिये॥ ३७-३८½॥

अदृष्ट्वा तु रथानीके दुर्योधनमरिंदमम्॥ ३९॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
अपृच्छन् क्षत्रियांस्तत्र क्व नु दुर्योधनो गतः॥ ४०॥

इधर रथसेनामें शत्रुदमन दुर्योधनको न देखकर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्माने समस्त क्षत्रियोंसे पूछा—'राजा दुर्योधन कहाँ चले गये?॥

तेऽपश्यमाना राजानं वर्तमाने जनक्षये।
मन्वाना निहतं तत्र तव पुत्रं महारथाः॥ ४१॥
विवर्णवदना भूत्वा पर्यपृच्छन्त ते सुतम्।

वर्तमान जनसंहारमें राजाको न देखकर वे महारथी आपके पुत्रको मारा गया मान बैठे और मुँह उदास करके सबसे आपके पुत्रका पता पूछने लगे॥ ४१½॥

आहुः केचिद्धते सूते प्रयातो यत्र सौबलः॥ ४२॥
हित्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम्।

कुछ लोगोंने कहा—'सारथिके मारे जानेपर पांचालराजकी उस दुःसह सेनाको त्यागकर राजा दुर्योधन वहीं गये हैं, जहाँ शकुनि हैं'॥ ४२½॥

अपरे त्वब्रुवंस्तत्र क्षत्रिया भृशविक्षताः॥ ४३॥
दुर्योधनेन किं कार्यं द्रक्ष्यध्वं यदि जीवति।
युद्ध्यध्वं सहिताः सर्वे किं वो राजा करिष्यति॥ ४४॥

दूसरे अत्यन्त घायल हुए क्षत्रिय वहाँ इस प्रकार कहने लगे—'अरे! दुर्योधनसे यहाँ क्या काम है? यदि

वे जीवित होंगे तो तुम सब लोग उन्हें देख ही लोगे। इस समय तो सब लोग एक साथ होकर केवल युद्ध करो। राजा तुम्हारी क्या (सहायता) करेंगे'॥ ४३-४४॥

ते क्षत्रियाः क्षतैर्गात्रैर्हतभूयिष्ठवाहनाः।
शरैः सम्पीड्यमानास्तु नातिव्यक्तमथाब्रुवन्॥ ४५॥
इदं सर्वं बलं हन्मो येन स्म परिवारिताः।
एते सर्वे गजान् हत्वा उपयान्ति स्म पाण्डवाः॥ ४६॥

वहाँ जो क्षत्रिय युद्ध कर रहे थे, उनके अधिकांश वाहन नष्ट हो गये थे। शरीर क्षत-विक्षत हो रहे थे। वे बाणोंसे पीड़ित होकर कुछ अस्पष्ट वाणीमें बोले—'हमलोग जिससे घिरे हैं, इस सारी सेनाको मार डालें। ये सारे पाण्डव गजसेनाका संहार करके हमारे समीप चले आ रहे हैं'॥ ४५-४६॥

श्रुत्वा तु वचनं तेषामश्वत्थामा महाबलः।
भित्त्वा पाञ्चालराजस्य तदनीकं दुरुत्सहम्॥ ४७॥
कृपश्च कृतवर्मा च प्रययौ यत्र सौबलः।
रथानीकं परित्यज्य शूराः सुदृढधन्विनः॥ ४८॥

उनकी बात सुनकर महाबली अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा—ये सभी दृढ़ धनुर्धर शूरवीर पांचालराजकी उस दुःसह सेनाका व्यूह तोड़कर, रथसेनाका परित्याग करके जहाँ शकुनि था, वहीं जा पहुँचे॥ ४७-४८॥

ततस्तेषु प्रयातेषु धृष्टद्युम्नपुरस्कृताः।
आययुः पाण्डवा राजन् विनिघ्नन्तः स्म तावकम्॥ ४९॥

राजन्! उन सबके आगे बढ़ जानेपर धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव आपकी सेनाका संहार करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥

दृष्ट्वा तु तानापततः सम्प्रहृष्टान् महारथान्।
पराक्रान्तास्ततो वीरा निराशा जीविते तदा॥ ५०॥

हर्ष और उत्साहमें भरे हुए उन महारथियोंको आक्रमण करते देख आपके पराक्रमी वीर उस समय जीवनसे निराश हो गये॥ ५०॥

विवर्णमुखभूयिष्ठमभवत् तावकं बलम्।
परिक्षीणायुधान् दृष्ट्वा तानहं परिवारितान्॥ ५१॥
राजन् बलेन द्व्यङ्गेन त्यक्त्वा जीवितमात्मनः।
आत्मना पञ्चमोऽयुद्ध्यं पाञ्चालस्य बलेन ह॥ ५२॥

आपकी सेनाके अधिकांश योद्धाओंका मुख उदास हो गया। उन सबके आयुध नष्ट हो गये थे और वे चारों ओरसे घिर गये थे। राजन्! उन सबकी वैसी अवस्था देख मैं जीवनका मोह छोड़कर अन्य चार महारथियोंको साथ ले हाथी और घोड़े दो अंगोंवाली सेनासे मिलकर धृष्टद्युम्नकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा॥ ५१-५२॥

तस्मिन् देशे व्यवस्थाय यत्र शारद्वतः स्थितः।
सम्प्रद्रुता वयं पञ्च किरीटिशरपीडिताः॥ ५३॥
धृष्टद्युम्नं महारौद्रं तत्र नोऽभूद् रणो महान्।
जितास्तेन वयं सर्वे व्यपयाम रणात् ततः॥ ५४॥

मैं उसी स्थानमें स्थित होकर युद्ध कर रहा था, जहाँ कृपाचार्य मौजूद थे; परंतु किरीटधारी अर्जुनके बाणोंसे पीड़ित होकर हम पाँचों वहाँसे भागकर महाभयंकर धृष्टद्युम्नके पास जा पहुँचे। वहाँ उनके साथ हमलोगोंका बड़ा भारी युद्ध हुआ। उन्होंने हम सबको परास्त कर दिया। तब हम वहाँसे भी भाग निकले॥ ५३-५४॥

अथापश्यं सात्यकिं तमुपायान्तं महारथम्।
रथैश्चतुःशतैर्वीरो मामभ्यद्रवदाहवे॥ ५५॥

इतनेमें ही मैंने महारथी सात्यकिको अपने पास आते देखा। वीर सात्यकिने युद्धस्थलमें चार सौ रथियोंके साथ मुझपर धावा किया॥ ५५॥

धृष्टद्युम्नादहं मुक्तः कथंचिच्छ्रान्तवाहनात्।
पतितो माधवानीकं दुष्कृती नरकं यथा॥ ५६॥

थके हुए वाहनोंवाले धृष्टद्युम्नसे किसी प्रकार छूटा तो मैं सात्यकिकी सेनामें आ फँसा; जैसे कोई पापी नरकमें गिर गया हो॥ ५६॥

तत्र युद्धमभूद् घोरं मुहूर्तमतिदारुणम्।
सात्यकिस्तु महाबाहुर्मम हत्वा परिच्छदम्॥ ५७॥
जीवग्राहमगृह्णान्मां मूर्च्छितं पतितं भुवि।

वहाँ दो घड़ीतक बड़ा भयंकर एवं घोर युद्ध हुआ। महाबाहु सात्यकिने मेरी सारी युद्धसामग्री नष्ट कर दी और जब मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा, तब मुझे जीवित ही पकड़ लिया॥ ५७½॥

ततो मुहूर्तादिव तद् गजानीकमवध्यत॥ ५८॥
गदया भीमसेनेन नाराचैरर्जुनेन च।

तदनन्तर दो ही घड़ीमें भीमसेनने गदासे और अर्जुनने नाराचोंसे उस गज-सेनाका संहार कर डाला॥

अभिपिष्टैर्महानागैः समन्तात् पर्वतोपमैः॥ ५९॥
नातिप्रसिद्धैव गतिः पाण्डवानामजायत।

चारों ओर पर्वताकार विशालकाय हाथी पड़े थे, जो भीमसेन और अर्जुनके आघातोंसे पिस गये थे। उनके कारण पाण्डवोंका आगे बढ़ना अत्यन्त दुष्कर हो गया था॥

रथमार्गं ततश्चक्रे भीमसेनो महाबलः॥ ६०॥
पाण्डवानां महाराज व्यपाकर्षन्महागजान्।

महाराज! तब महाबली भीमसेनने बड़े-बड़े हाथियोंको खींचकर हटाया और पाण्डवोंके लिये रथ जानेका मार्ग बनाया॥ ६०½॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः॥ ६१॥
अपश्यन्तो रथानीके दुर्योधनमरिंदमम्।
राजानं मृगयामासुस्तव पुत्रं महारथम्॥ ६२॥

इधर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये रथ-सेनामें आपके महारथी पुत्र शत्रुदमन राजा दुर्योधनको न देखकर उसकी खोज करने लगे॥ ६१-६२॥

परित्यज्य च पाञ्चाल्यं प्रयाता यत्र सौबलः।
राज्ञोऽदर्शनसंविग्ना वर्तमाने जनक्षये॥ ६३॥

वे धृष्टद्युम्नका सामना करना छोड़कर जहाँ शकुनि था, वहाँ चले गये। वर्तमान नरसंहारमें राजा दुर्योधनको न देखनेके कारण वे उद्विग्न हो उठे थे॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि दुर्योधनापयाने पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें दुर्योधनका पलायनविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः

भीमसेनके द्वारा धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका और बहुत-सी चतुरंगिणी सेनाका वध

संजय उवाच

गजानीके हते तस्मिन् पाण्डुपुत्रेण भारत।
वध्यमाने बले चैव भीमसेनेन संयुगे॥ १॥
चरन्तं च तथा दृष्ट्वा भीमसेनमरिंदमम्।
दण्डहस्तं यथा क्रुद्धमन्तकं प्राणहारिणम्॥ २॥
समेत्य समरे राजन् हतशेषाः सुतास्तव।
अदृश्यमाने कौरव्ये पुत्रे दुर्योधने तव॥ ३॥
सोदर्याः सहिता भूत्वा भीमसेनमुपाद्रवन्।

संजय कहते हैं—राजन्! भरतनन्दन! पाण्डुपुत्र भीमसेनके द्वारा आपकी गजसेना तथा दूसरी सेनाका भी संहार हो जानेपर जब आपका पुत्र कुरुवंशी दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया, तब मरनेसे बचे हुए आपके सभी पुत्र एक साथ हो गये और समरांगणमें दण्डधारी, प्राणान्तकारी यमराजके समान कुपित हुए शत्रुदमन भीमसेनको विचरते देख सब मिलकर उनपर टूट पड़े॥

दुर्मर्षणः श्रुतान्तश्च जैत्रो भूरिबलो रविः॥ ४॥
जयत्सेनः सुजातश्च तथा दुर्विषहोऽरिहा।
दुर्विमोचननामा च दुष्प्रधर्षस्तथैव च॥ ५॥
श्रुतर्वा च महाबाहुः सर्वे युद्धविशारदाः।
इत्येते सहिता भूत्वा तव पुत्राः समन्ततः॥ ६॥
भीमसेनमभिद्रुत्य रुरुधुः सर्वतोदिशम्।

दुर्मर्षण, श्रुतान्त (चित्रांग), जैत्र, भूरिबल (भीमबल), रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह (दुर्विगाह), शत्रुनाशक दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष (दुष्प्रधर्षण) और महाबाहु श्रुतर्वा—ये सभी आपके युद्धविशारद पुत्र एक साथ हो सब ओरसे भीमसेनपर धावा करके उनकी सम्पूर्ण दिशाओंको रोककर खड़े हो गये॥ ४—६½॥

ततो भीमो महाराज स्वरथं पुनरास्थितः॥ ७॥
मुमोच निशितान् बाणान् पुत्राणां तव मर्मसु।

महाराज! तब भीम पुनः अपने रथपर आरूढ़ हो आपके पुत्रोंके मर्मस्थानोंमें तीखे बाणोंका प्रहार करने लगे॥

ते कीर्यमाणा भीमेन पुत्रास्तव महारणे॥ ८॥
भीमसेनमपाकर्षन् प्रवणादिव कुञ्जरम्।

उस महासमरमें जब भीमसेन आपके पुत्रोंपर बाणोंका प्रहार करने लगे, तब वे भीमसेनको उसी प्रकार दूरतक खींच ले गये, जैसे शिकारी नीचे स्थानसे हाथीको खींचते हैं॥ ८½॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः शिरो दुर्मर्षणस्य ह॥ ९॥
क्षुरप्रेण प्रमथ्याशु पातयामास भूतले।

तब रणभूमिमें क्रुद्ध हुए भीमसेनने एक क्षुरप्रसे दुर्मर्षणका मस्तक शीघ्रतापूर्वक पृथ्वीपर काट गिराया॥

ततोऽपरेण भल्लेन सर्वावरणभेदिना॥ १०॥
श्रुतान्तमवधीद् भीमस्तव पुत्रं महारथः।

तत्पश्चात् समस्त आवरणोंका भेदन करनेवाले दूसरे भल्लके द्वारा महारथी भीमसेनने आपके पुत्र श्रुतान्तका अन्त कर दिया॥ १०½॥

जयत्सेनं ततो विद्ध्वा नाराचेन हसन्निव॥ ११॥
पातयामास कौरव्यं रथोपस्थादरिंदमः।

फिर हँसते-हँसते उन शत्रुदमन वीरने कुरुवंशी जयत्सेनको नाराचसे घायल करके उसे रथकी बैठकसे नीचे गिरा दिया॥ ११½॥

स पपात रथाद् राजन् भूमौ तूर्णं ममार च॥ १२॥
श्रुतर्वा तु ततो भीमं क्रुद्धो विव्याध मारिष।
शतेन गृध्रवाजानां शराणां नतपर्वणाम्॥ १३॥

राजन्! जयत्सेन रथसे पृथ्वीपर गिरा और तुरंत मर गया। मान्यवर नरेश! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए श्रुतर्वाने गीधकी पाँख और झुकी हुई गाँठवाले सौ बाणोंसे भीमसेनको बींध डाला॥ १२-१३॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमो जैत्रं भूरिबलं रविम्।
त्रीनेतांस्त्रिभिरानर्च्छद् विषाग्निप्रतिमैः शरैः॥ १४॥

यह देख भीमसेन क्रोधसे जल उठे और उन्होंने रणभूमिमें विष और अग्निके समान भयंकर तीन बाणोंद्वारा जैत्र, भूरिबल और रवि—इन तीनोंपर प्रहार किया॥ १४॥

ते हता न्यपतन् भूमौ स्यन्दनेभ्यो महारथाः।
वसन्ते पुष्पशबला निकृत्ता इव किंशुकाः॥ १५॥

उन बाणोंद्वारा मारे गये वे तीनों महारथी वसन्त-ऋतुमें कटे हुए पुष्पयुक्त पलाशके वृक्षोंकी भाँति रथोंसे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १५॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन च परंतपः।
दुर्विमोचनमाहत्य प्रेषयामास मृत्यवे॥ १६॥

इसके बाद शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमसेनने दूसरे तीखे भल्लसे दुर्विमोचनको मारकर मृत्युके लोकमें भेज दिया॥ १६॥

स हतः प्रापतद् भूमौ स्वरथाद् रथिनां वरः।
गिरेस्तु कूटजो भग्नो मारुतेनेव पादपः॥ १७॥

रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्विमोचन उस भल्लकी चोट खाकर अपने रथसे भूमिपर गिर पड़ा, मानो पर्वतके शिखरपर उत्पन्न हुआ वृक्ष वायुके वेगसे टूटकर धराशायी हो गया हो॥ १७॥

दुष्प्रधर्षं ततश्चैव सुजातं च सुतं तव।
एकैकं न्यहनत् संख्ये द्वाभ्यां द्वाभ्यां चमूमुखे॥ १८॥

तदनन्तर भीमसेनने आपके पुत्र दुष्प्रधर्ष और सुजातको रणक्षेत्रमें सेनाके मुहानेपर दो-दो बाणोंसे मार गिराया॥ १८॥

तौ शिलीमुखविद्धाङ्गौ पेततू रथसत्तमौ।
ततः पतन्तं समरे अभिवीक्ष्य सुतं तव॥ १९॥
भल्लेन पातयामास भीमो दुर्विषहं रणे।
स पपात हतो वाहात् पश्यतां सर्वधन्विनाम्॥ २०॥

वे दोनों महारथी वीर बाणोंसे सारा शरीर बिंध जानेके कारण रणभूमिमें गिर पड़े। तत्पश्चात् आपके पुत्र दुर्विषहको संग्राममें चढ़ाई करते देख भीमसेनने एक भल्लसे मार गिराया। उस भल्लकी चोट खाकर दुर्विषह सम्पूर्ण धनुर्धरोंके देखते-देखते रथसे नीचे जा गिरा॥ १९-२०॥

दृष्ट्वा तु निहतान् भ्रातॄन् बहूनेकेन संयुगे।
अमर्षवशमापन्नः श्रुतर्वा भीममभ्ययात्॥ २१॥

युद्धस्थलमें एकमात्र भीमके द्वारा अपने बहुत-से भाइयोंको मारा गया देख श्रुतर्वा अमर्षके वशीभूत हो भीमसेनका सामना करनेके लिये आ पहुँचा॥ २१॥

विक्षिपन् सुमहच्चापं कार्तस्वरविभूषितम्।
विसृजन् सायकांश्चैव विषाग्निप्रतिमान् बहून्॥ २२॥

वह अपने सुवर्णभूषित विशाल धनुषको खींचकर उसके द्वारा विष और अग्निके समान भयंकर बहुतेरे बाणोंकी वर्षा कर रहा था॥ २२॥

स तु राजन् धनुश्छित्त्वा पाण्डवस्य महामृधे।
अथैनं छिन्नधन्वानं विंशत्या समवाकिरत्॥ २३॥

राजन्! उसने उस महासमरमें पाण्डुपुत्रके धनुषको काटकर कटे हुए धनुषवाले भीमसेनको बीस बाणोंसे घायल कर दिया॥ २३॥

ततोऽन्यद् धनुरादाय भीमसेनो महाबलः।
अवाकिरत् तव सुतं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्॥ २४॥

तब महाबली भीमसेन दूसरा धनुष लेकर आपके पुत्रपर बाणोंकी वर्षा करने लगे और बोले—'खड़ा रह, खड़ा रह'॥ २४॥

महदासीत् तयोर्युद्धं चित्ररूपं भयानकम्।
यादृशं समरे पूर्वं जम्भवासवयोर्युधि॥ २५॥

उस समय उन दोनोंमें विचित्र, भयानक और महान् युद्ध होने लगा। पूर्वकालमें रणक्षेत्रमें जम्भ और इन्द्रका जैसा युद्ध हुआ था, वैसा ही उन दोनोंका भी हुआ॥ २५॥

तयोस्तत्र शितैर्मुक्तैर्यमदण्डनिभैः शरैः।
समाच्छन्ना धरा सर्वा खं दिशो विदिशस्तथा॥ २६॥

उन दोनोंके छोड़े हुए यमदण्डके समान तीखे बाणोंसे सारी पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ और विदिशाएँ आच्छादित हो गयीं॥ २६॥

ततः श्रुतर्वा संक्रुद्धो धनुरादाय सायकैः।
भीमसेनं रणे राजन् बाह्वोरुरसि चार्पयत्॥ २७॥

राजन्! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए श्रुतर्वाने धनुष लेकर अपने बाणोंसे रणभूमिमें भीमसेनकी दोनों भुजाओं और छातीमें प्रहार किया॥ २७॥

सोऽतिविद्धो महाराज तव पुत्रेण धन्विना।
भीमः संचुक्षुभे क्रुद्धः पर्वणीव महोदधिः॥ २८॥

महाराज! आपके धनुर्धर पुत्रद्वारा अत्यन्त घायल कर दिये जानेपर भीमसेनका क्रोध भड़क उठा और वे पूर्णिमाके दिन उमड़ते हुए महासागरके समान बहुत ही क्षुब्ध हो उठे॥ २८॥

ततो भीमो रुषाविष्टः पुत्रस्य तव मारिष।
सारथिं चतुरश्चाश्वान् शरैर्निन्ये यमक्षयम्॥ २९॥

आर्य! फिर रोषसे आविष्ट हुए भीमसेनने अपने

बाणोंद्वारा आपके पुत्रके सारथि और चारों घोड़ोंको यमलोक पहुँचा दिया॥ २९॥

विरथं तं समालक्ष्य विशिखैर्लोमवाहिभिः।
अवाकिरदमेयात्मा दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ ३०॥

अमेय आत्मबलसे सम्पन्न भीमसेन श्रुतर्वाको रथहीन हुआ देख अपने हाथोंकी फुर्ती दिखाते हुए उसके ऊपर पक्षियोंके पंखसे युक्त होकर उड़नेवाले बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ३०॥

श्रुतर्वा विरथो राजन्नाददे खड्गचर्मणी।
अथास्याददतः खड्गं शतचन्द्रं च भानुमत्॥ ३१॥
क्षुरप्रेण शिरः कायात् पातयामास पाण्डवः।

राजन्! रथहीन हुए श्रुतर्वाने अपने हाथोंमें ढाल और तलवार ले ली। वह सौ चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त ढाल तथा अपनी प्रभासे चमकती हुई तलवार ले ही रहा था कि पाण्डुपुत्र भीमसेनने एक क्षुरप्रद्वारा उसके मस्तकको धड़से काट गिराया॥ ३१½॥

छिन्नोत्तमाङ्गस्य ततः क्षुरप्रेण महात्मना॥ ३२॥
पपात कायः स रथाद् वसुधामनुनादयन्।

महामनस्वी भीमसेनके क्षुरप्रसे मस्तक कट जानेपर उसका धड़ वसुधाको प्रतिध्वनित करता हुआ रथसे नीचे गिर पड़ा॥ ३२½॥

तस्मिन् निपतिते वीरे तावका भयमोहिताः॥ ३३॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीमसेनं युयुत्सवः।

उस वीरके गिरते ही आपके सैनिक भयसे व्याकुल होनेपर भी संग्राममें जूझनेकी इच्छासे भीमसेनकी ओर दौड़े॥ ३३½॥

तानापतत एवाशु हतशेषाद् बलार्णवात्॥ ३४॥
दंशितान् प्रतिजग्राह भीमसेनः प्रतापवान्।

मरनेसे बचे हुए सैन्यसमूहसे निकलकर शीघ्रतापूर्वक अपने ऊपर आक्रमण करते हुए उन कवचधारी योद्धाओंको प्रतापी भीमसेनने आगे बढ़नेसे रोक दिया॥ ३४½॥

ते तु तं वै समासाद्य परिवव्रुः समन्ततः॥ ३५॥
ततस्तु संवृतो भीमस्तावकान् निशितैः शरैः।
पीडयामास तान् सर्वान् सहस्राक्ष इवासुरान्॥ ३६॥

वे योद्धा भीमसेनके पास पहुँचकर उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। तब जैसे इन्द्र असुरोंको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार घिरे हुए भीमसेनने पैने बाणोंद्वारा आपके उन समस्त सैनिकोंको पीड़ित करना आरम्भ किया॥ ३५-३६॥

ततः पञ्चशतान् हत्वा सवरूथान् महारथान्।
जघान कुञ्जरानीकं पुनः सप्तशतं युधि॥ ३७॥
हत्वा शतसहस्राणि पत्तीनां परमेषुभिः।
वाजिनां च शतान्यष्टौ पाण्डवः स्म विराजते॥ ३८॥

तदनन्तर भीमसेनने आवरणोंसहित पाँच सौ विशाल रथोंका संहार करके युद्धमें सात सौ हाथियोंकी सेनाको पुनः मार गिराया। फिर उत्तम बाणोंद्वारा एक लाख पैदलों और सवारोंसहित आठ सौ घोड़ोंका वध करके पाण्डव भीमसेन विजयश्रीसे सुशोभित होने लगे॥ ३७-३८॥

भीमसेनस्तु कौन्तेयो हत्वा युद्धे सुतांस्तव।
मेने कृतार्थमात्मानं सफलं जन्म च प्रभो॥ ३९॥

प्रभो! इस प्रकार कुन्तीपुत्र भीमसेनने युद्धमें आपके पुत्रोंका विनाश करके अपने-आपको कृतार्थ और जन्मको सफल हुआ समझा॥ ३९॥

तं तथा युद्ध्यमानं च विनिघ्नन्तं च तावकान्।
ईक्षितुं नोत्सहन्ते स्म तव सैन्या नराधिप॥ ४०॥

नरेश्वर! इस तरह युद्ध और आपके पुत्रोंका वध करते हुए भीमसेनको आपके सैनिक देखनेका भी साहस नहीं कर पाते थे॥ ४०॥

विद्राव्य च कुरून् सर्वांस्तांश्च हत्वा पदानुगान्।
दोर्भ्यां शब्दं ततश्चक्रे त्रासयानो महाद्विपान्॥ ४१॥

समस्त कौरवोंको भगाकर और उनके अनुगामी सैनिकोंका संहार करके भीमसेनने बड़े-बड़े हाथियोंको डराते हुए अपनी दोनों भुजाओंद्वारा ताल ठोंकनेका शब्द किया॥ ४१॥

हतभूयिष्ठयोधा तु तव सेना विशाम्पते।
किंचिच्छेषा महाराज कृपणं समपद्यत॥ ४२॥

प्रजानाथ! महाराज! आपकी सेनाके अधिकांश योद्धा मारे गये और बहुत थोड़े सैनिक शेष रह गये; अतः वह सेना अत्यन्त दीन हो गयी थी॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि एकादशधार्तराष्ट्रवधे षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें धृतराष्ट्रके ग्यारह पुत्रोंका वधविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण और अर्जुनकी बातचीत, अर्जुनद्वारा सत्यकर्मा, सत्येषु तथा पैंतालीस पुत्रों और सेनासहित सुशर्माका वध तथा भीमके द्वारा धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शनका अन्त

संजय उवाच

दुर्योधनो महाराज सुदर्शश्चापि ते सुतः।
हतशेषौ तदा संख्ये वाजिमध्ये व्यवस्थितौ॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! उस समय आपके पुत्र दुर्योधन और सुदर्शन ये—दो ही बच गये थे। दोनों ही घुड़सवारोंके बीचमें खड़े थे॥ १॥

ततो दुर्योधनं दृष्ट्वा वाजिमध्ये व्यवस्थितम्।
उवाच देवकीपुत्रः कुन्तीपुत्रं धनंजयम्॥ २॥

तदनन्तर दुर्योधनको घुड़सवारोंके बीचमें खड़ा देख देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने कुन्तीकुमार अर्जुनसे इस प्रकार कहा— ॥ २॥

शत्रवो हतभूयिष्ठा ज्ञातयः परिपालिताः।
गृहीत्वा संजयं चासौ निवृत्तः शिनिपुङ्गवः॥ ३॥
परिश्रान्तश्च नकुलः सहदेवश्च भारत।
योधयित्वा रणे पापान् धार्तराष्ट्रान् सहानुगान्॥ ४॥

'भरतनन्दन! शत्रुओंके अधिकांश योद्धा मारे गये और अपने कुटुम्बी जनोंकी रक्षा हुई। उधर देखो, वे शिनिप्रवर सात्यकि संजयको कैद करके उसे साथ लिये लौटे आ रहे हैं। रणभूमिमें सेवकोंसहित धृतराष्ट्रके पापी पुत्रोंसे युद्ध करके दोनों भाई नकुल और सहदेव भी बहुत थक गये हैं॥ ३-४॥

दुर्योधनमभित्यज्य त्रय एते व्यवस्थिताः।
कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः॥ ५॥

'उधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और महारथी अश्वत्थामा—ये तीनों युद्धभूमिमें दुर्योधनको छोड़कर कहीं अन्यत्र स्थित हैं॥ ५॥

असौ तिष्ठति पाञ्चाल्यः श्रिया परमया युतः।
दुर्योधनबलं हत्वा सह सर्वैः प्रभद्रकैः॥ ६॥

'इधर, सम्पूर्ण प्रभद्रकोंसहित दुर्योधनकी सेनाका संहार करके पांचालराजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित हो रहे हैं॥ ६॥

असौ दुर्योधनः पार्थ वाजिमध्ये व्यवस्थितः।
छत्रेण ध्रियमाणेन प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः॥ ७॥

'पार्थ! वह रहा दुर्योधन, जो छत्र धारण किये घुड़सवारोंके बीचमें खड़ा है और बारंबार इधर ही देख रहा है॥ ७॥

प्रतिव्यूह्य बलं सर्वं रणमध्ये व्यवस्थितः।
एनं हत्वा शितैर्बाणैः कृतकृत्यो भविष्यसि॥ ८॥

'वह अपनी सारी सेनाका व्यूह बनाकर युद्धभूमिमें खड़ा है। तुम इसे पैने बाणोंसे मारकर कृतकृत्य हो जाओगे॥ ८॥

गजानीकं हतं दृष्ट्वा त्वां च प्राप्तमरिंदम।
यावन्न विद्रवन्त्येते तावज्जहि सुयोधनम्॥ ९॥

'शत्रुदमन! गजसेनाका वध और तुम्हारा आगमन हुआ देख ये कौरव-योद्धा जबतक भाग नहीं जाते तभीतक दुर्योधनको मार डालो॥ ९॥

यातु कश्चित्तु पाञ्चाल्यं क्षिप्रमागम्यतामिति।
परिश्रान्तबलस्तात नैष मुच्येत किल्बिषी॥ १०॥

'अपने दलका कोई पुरुष पांचालराज धृष्टद्युम्नके पास जाय और कहे कि 'आप शीघ्रतापूर्वक चलें।' तात! यह पापात्मा दुर्योधन अब बच नहीं सकता, क्योंकि इसकी सारी सेना थक गयी है॥ १०॥

हत्वा तव बलं सर्वं संग्रामे धृतराष्ट्रजः।
जितान् पाण्डुसुतान् मत्वा रूपं धारयते महत्॥ ११॥

'दुर्योधन समझता है कि 'संग्रामभूमिमें तुम्हारी सारी सेनाका संहार करके पाण्डवोंको पराजित कर दूँगा।' इसीलिये वह अत्यन्त उग्र रूप धारण कर रहा है॥

निहतं स्वबलं दृष्ट्वा पीडितं चापि पाण्डवैः।
ध्रुवमेष्यति संग्रामे वधायैवात्मनो नृपः॥ १२॥

'परंतु अपनी सेनाको पाण्डवोंद्वारा पीड़ित एवं मारी गयी देख राजा दुर्योधन निश्चय ही अपने विनाशके लिये ही युद्धस्थलमें पदार्पण करेगा'॥ १२॥

एवमुक्तः फाल्गुनस्तु कृष्णं वचनमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रसुताः सर्वे हता भीमेन माधव॥ १३॥
यावेतावास्थितौ कृष्ण तावद्य न भविष्यतः।

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर अर्जुन उनसे इस प्रकार बोले—'माधव! धृतराष्ट्रके प्रायः सभी पुत्र भीमसेनके हाथसे मारे गये हैं। श्रीकृष्ण! ये जो दो पुत्र खड़े हैं, इनका भी आज अन्त हो जायगा॥ १३½॥

हतो भीष्मो हतो द्रोणः कर्णो वैकर्तनो हतः॥ १४॥
मद्रराजो हतः शल्यो हतः कृष्ण जयद्रथः।

'श्रीकृष्ण! भीष्म मारे जा चुके, द्रोणका भी अन्त हो

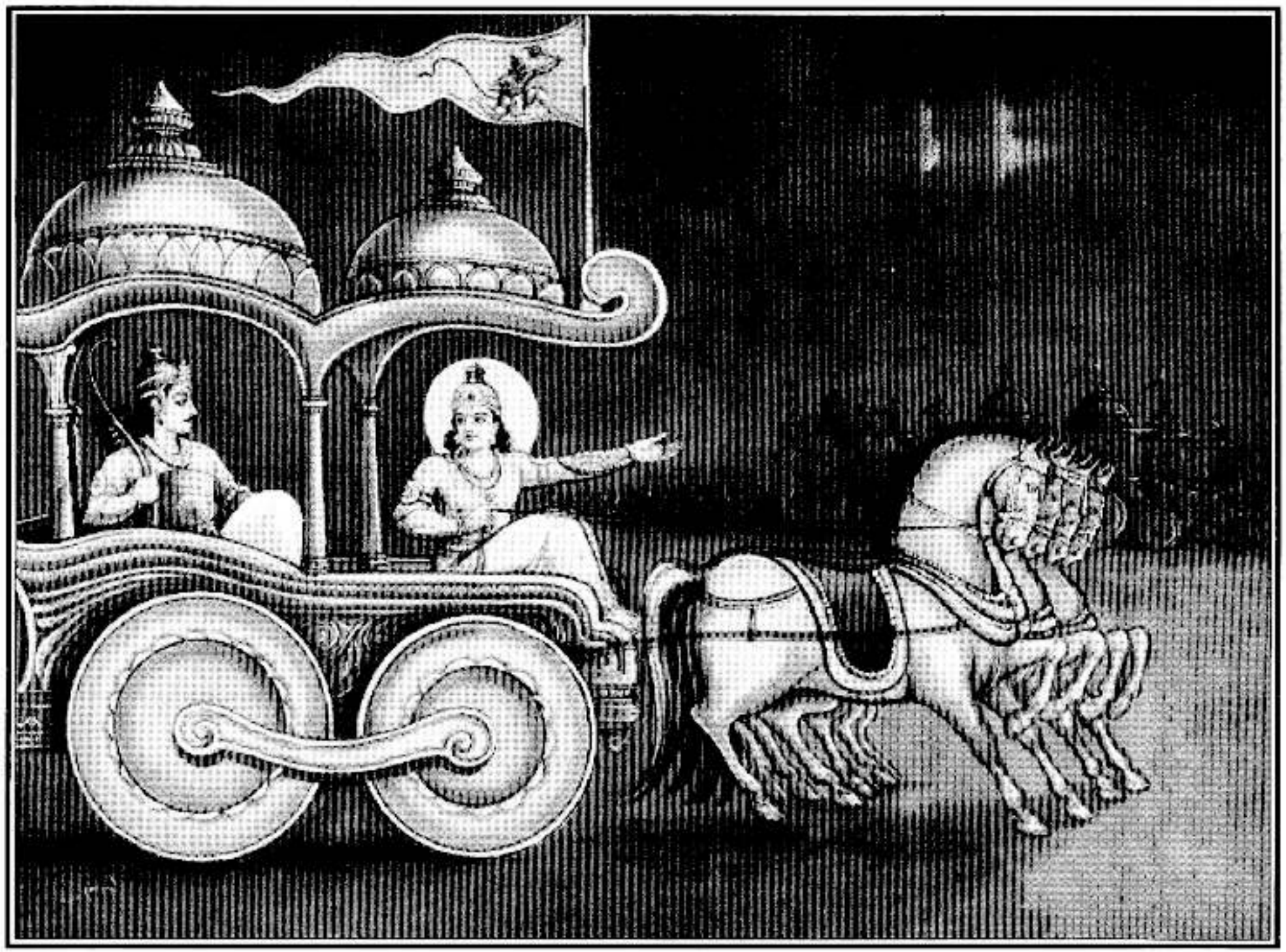

श्रीकृष्ण दुर्योधनकी ओर संकेत करते हुए उसे मारनेके लिये अर्जुनको प्रेरित कर रहे हैं

गया, वैकर्तन कर्ण भी मार डाला गया, मद्रराज शल्यका भी वध हो गया और जयद्रथ भी यमलोक पहुँच गया॥

हयाः पञ्चशताः शिष्टाः शकुनेः सौबलस्य च॥ १५॥
रथानां तु शते शिष्टे द्वे एव तु जनार्दन।
दन्तिनां च शतं साग्रं त्रिसाहस्राः पदातयः॥ १६॥

'सुबलपुत्र शकुनिके पास पाँच सौ घुड़सवारोंकी सेना अभी शेष है। जनार्दन! उसके पास दो सौ रथ, सौसे कुछ अधिक हाथी और तीन हजार पैदल सैनिक भी शेष रह गये हैं॥ १५-१६॥

अश्वत्थामा कृपश्चैव त्रिगर्ताधिपतिस्तथा।
उलूकः शकुनिश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः॥ १७॥
एतद् बलमभूच्छेषं धार्तराष्ट्रस्य माधव।

'माधव! दुर्योधनकी सेनामें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तराज सुशर्मा, उलूक, शकुनि और सात्वतवंशी कृतवर्मा—ये थोड़े-से ही वीर सैनिक शेष रह गये हैं॥

मोक्षो न नूनं कालात् तु विद्यते भुवि कस्यचित्॥ १८॥
तथा विनिहते सैन्ये पश्य दुर्योधनं स्थितम्।
अद्याहना हि महाराजो हतामित्रो भविष्यति॥ १९॥

'निश्चय ही इस पृथ्वीपर किसीको भी कालसे छुटकारा नहीं मिलता, तभी तो इस प्रकार अपनी सेनाका संहार होनेपर भी दुर्योधन युद्धके लिये खड़ा है, उसे देखिये। आजके दिन महाराज युधिष्ठिर शत्रुहीन हो जायँगे॥

न हि मे मोक्ष्यते कश्चित् परेषामिह चिन्तये।
ये त्वद्य समरं कृष्ण न हास्यन्ति मदोत्कटाः॥ २०॥
तान् वै सर्वान् हनिष्यामि यद्यपि स्युर्न मानुषाः।

'श्रीकृष्ण! मैं सोचता हूँ कि आज शत्रुदलका कोई भी योद्धा यहाँ मेरे हाथसे बचकर नहीं जा सकेगा। जो मदोन्मत्त वीर आज युद्ध छोड़कर भाग नहीं जायँगे, उन सबको, वे मनुष्य न होकर देवता या दैत्य ही क्यों न हों, मैं मार डालूँगा॥ २०½॥

अद्य युद्धे सुसंक्रुद्धो दीर्घं राज्ञा प्रजागरम्॥ २१॥
अपनेष्यामि गान्धारं घातयित्वा शितैः शरैः।

'आज मैं अत्यन्त कुपित हो गान्धारराज शकुनिको पैने बाणोंसे मरवाकर राजा युधिष्ठिरके दीर्घकालीन जागरणरूपी रोगको दूर कर दूँगा॥ २१½॥

निकृत्या वै दुराचारो यानि रत्नानि सौबलः॥ २२॥
सभायामहरद् द्यूते पुनस्तान्याहराम्यहम्।

'दुराचारी सुबलपुत्र शकुनिने द्यूतसभामें छल करके जिन रत्नोंको हर लिया था, उन सबको मैं वापस ले लूँगा॥

अद्य ता अपि रोत्स्यन्ति सर्वा नागपुरे स्त्रियः॥ २३॥
श्रुत्वा पतींश्च पुत्रांश्च पाण्डवैर्निहतान् युधि।

'आज हस्तिनापुरकी वे सारी स्त्रियाँ भी युद्धमें पाण्डवोंके हाथसे अपने पतियों और पुत्रोंको मारा गया सुनकर फूट-फूटकर रोयेंगी॥ २३½॥

समाप्तमद्य वै कर्म सर्वं कृष्ण भविष्यति॥ २४॥
अद्य दुर्योधनो दीप्तां श्रियं प्राणांश्च मोक्ष्यति।

'श्रीकृष्ण! आज हमलोगोंका सारा कार्य समाप्त हो जायगा। आज दुर्योधन अपनी उज्ज्वल राजलक्ष्मी और प्राणोंको भी खो बैठेगा॥ २४½॥

नापयाति भयात् कृष्ण संग्रामाद् यदि चेन्मम॥ २५॥
निहतं विद्धि वार्ष्णेय धार्तराष्ट्रं सुबालिशम्।

'वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण! यदि वह मेरे भयसे युद्धसे भाग न जाय, तो मेरे द्वारा उस मूढ़ दुर्योधनको आप मारा गया ही समझें॥ २५½॥

मम ह्येतदशक्तं वै वाजिवृन्दमरिंदम॥ २६॥
सोढुं ज्यातलनिर्घोषं याहि यावन्निहन्म्यहम्।

'शत्रुदमन! यह घुड़सवारोंकी सेना मेरे गाण्डीव धनुषकी टंकारको नहीं सह सकेगी। आप घोड़े बढ़ाइये, मैं अभी इन सबको मारे डालता हूँ'॥ २६½॥

एवमुक्तस्तु दाशार्हः पाण्डवेन यशस्विना॥ २७॥
अचोदयद्धयान् राजन् दुर्योधनबलं प्रति।

राजन्! यशस्वी पाण्डुपुत्र अर्जुनके ऐसा कहनेपर दशार्हकुलनन्दन श्रीकृष्णने दुर्योधनकी सेनाकी ओर घोड़े बढ़ा दिये॥ २७½॥

तदनीकमभिप्रेक्ष्य त्रयः सज्जा महारथाः॥ २८॥
भीमसेनोऽर्जुनश्चैव सहदेवश्च मारिष।
प्रययुः सिंहनादेन दुर्योधनजिघांसया॥ २९॥

मान्यवर! उस सेनाको देखकर तीन महारथी भीमसेन, अर्जुन और सहदेव युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित हो दुर्योधनके वधकी इच्छासे सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े॥ २८-२९॥

तान् प्रेक्ष्य सहितान् सर्वान् जवेनोद्यतकार्मुकान्।
सौबलोऽभ्यद्रवद् युद्धे पाण्डवानाततायिनः॥ ३०॥

उन सबको बड़े वेगसे धनुष उठाये एक साथ आक्रमण करते देख सुबलपुत्र शकुनि रणभूमिमें आततायी पाण्डवोंकी ओर दौड़ा॥ ३०॥

सुदर्शनस्तव सुतो भीमसेनं समभ्ययात्।
सुशर्मा शकुनिश्चैव युयुधाते किरीटिना॥ ३१॥

आपका पुत्र सुदर्शन भीमका सामना करने लगा। सुशर्मा और शकुनिने किरीटधारी अर्जुनके साथ युद्ध छेड़ दिया॥

सहदेवं तव सुतो हयपृष्ठगतोऽभ्ययात्।
ततो हि यत्नतः क्षिप्रं तव पुत्रो जनाधिप॥ ३२॥
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम्।

नरेश्वर! घोड़ेकी पीठपर बैठा हुआ आपका पुत्र दुर्योधन सहदेवके सामने आया। उसने बड़े यत्नसे सहदेवके मस्तकपर शीघ्रतापूर्वक प्रासका प्रहार किया॥

सोपाविशद् रथोपस्थे तव पुत्रेण ताडितः॥ ३३॥
रुधिराप्लुतसर्वाङ्ग आशीविष इव श्वसन्।

आपके पुत्रद्वारा ताड़ित होकर सहदेव फुफकारते हुए विषधर सर्पके समान लंबी साँस खींचते हुए रथके पिछले भागमें बैठ गये। उनका सारा शरीर लहूलुहान हो गया॥ ३३ ½॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां सहदेवो विशाम्पते॥ ३४॥
दुर्योधनं शरैस्तीक्ष्णैः संक्रुद्धः समवाकिरत्।

प्रजानाथ! थोड़ी देरमें सचेत होनेपर क्रोधमें भरे हुए सहदेव दुर्योधनपर पैने बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ ३४ ½॥

पार्थोऽपि युधि विक्रम्य कुन्तीपुत्रो धनंजयः॥ ३५॥
शूराणामश्वपृष्ठेभ्यः शिरांसि निचकर्त ह।

कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी युद्धमें पराक्रम करके घोड़ोंकी पीठोंसे शूरवीरोंके मस्तक काट गिराये॥ ३५ ½॥

तदनीकं तदा पार्थो व्यधमद् बहुभिः शरैः॥ ३६॥
पातयित्वा हयान् सर्वांस्त्रिगर्तानां रथान् ययौ।

पार्थने अपने बहुसंख्यक बाणोंद्वारा घुड़सवारोंकी उस सेनाको छिन्न-भिन्न कर डाला तथा समस्त घोड़ोंको धराशायी करके त्रिगर्तदेशीय रथियोंपर चढ़ाई कर दी॥

ततस्ते सहिता भूत्वा त्रिगर्तानां महारथाः॥ ३७॥
अर्जुनं वासुदेवं च शरवर्षैरवाकिरन्।

तब वे त्रिगर्तदेशीय महारथी एक साथ होकर अर्जुन और श्रीकृष्णको अपने बाणोंकी वर्षासे आच्छादित करने लगे॥

सत्यकर्माणमाक्षिप्य क्षुरप्रेण महायशाः॥ ३८॥
ततोऽस्य स्यन्दनस्येषां चिच्छिदे पाण्डुनन्दनः।
शिलाशितेन च विभो क्षुरप्रेण महायशाः॥ ३९॥
शिरश्चिच्छेद सहसा तप्तकुण्डलभूषणम्।

प्रभो! उस समय महायशस्वी पाण्डुनन्दन अर्जुनने क्षुरप्रद्वारा सत्यकर्मापर प्रहार करके उसके रथकी ईषा (हरसा) काट डाली। तत्पश्चात् उन महायशस्वी वीरने शिलापर तेज किये हुए क्षुरप्रद्वारा उसके तपाये हुए सुवर्णके कुण्डलोंसे विभूषित मस्तकको सहसा काट लिया॥ ३८-३९ ½॥

सत्येषुमथ चादत्त योधानां मिषतां ततः॥ ४०॥
यथा सिंहो वने राजन् मृगं परिबुभुक्षितः।

राजन्! जैसे वनमें भूखा सिंह किसी मृगको दबोच लेता है, उसी प्रकार अर्जुनने समस्त योद्धाओंके देखते-देखते सत्येषुके भी प्राण हर लिये॥ ४० ½॥

तं निहत्य ततः पार्थः सुशर्माणं त्रिभिः शरैः॥ ४१॥
विद्ध्वा तानहनत् सर्वान् रथान् रुक्मविभूषितान्।

सत्येषुका वध करके अर्जुनने सुशर्माको तीन बाणोंसे घायल कर दिया और उन समस्त स्वर्णभूषित रथोंका विध्वंस कर डाला॥ ४१ ½॥

ततः प्रायात् त्वरन् पार्थो दीर्घकालं सुसंवृतम्॥ ४२॥
मुञ्चन् क्रोधविषं तीक्ष्णं प्रस्थलाधिपतिं प्रति।

तत्पश्चात् पार्थ अपने दीर्घकालसे संचित किये हुए तीखे क्रोधरूपी विषको प्रस्थलेश्वर सुशर्मापर छोड़नेके लिये तीव्र गतिसे आगे बढ़े॥ ४२ ½॥

तमर्जुनः पृषत्कानां शतेन भरतर्षभ॥ ४३॥
पूरयित्वा ततो वाहान् प्राहरत् तस्य धन्विनः।

भरतश्रेष्ठ! अर्जुनने सौ बाणोंद्वारा उसे आच्छादित करके उस धनुर्धर वीरके घोड़ोंपर घातक प्रहार किया॥

ततः शरं समादाय यमदण्डोपमं तदा॥ ४४॥
सुशर्माणं समुद्दिश्य चिक्षेपाशु हसन्निव।

इसके बाद यमदण्डके समान भयंकर बाण हाथमें लेकर सुशर्माको लक्ष्य करके हँसते हुए-से शीघ्र ही छोड़ दिया॥

स शरः प्रेषितस्तेन क्रोधदीप्तेन धन्विना॥ ४५॥
सुशर्माणं समासाद्य बिभेद हृदयं रणे।

क्रोधसे तमतमाये हुए धनुर्धर अर्जुनके द्वारा चलाये गये उस बाणने सुशर्मापर चोट करके उसकी छाती छेद डाली॥

स गतासुर्महाराज पपात धरणीतले॥ ४६॥
नन्दयन् पाण्डवान् सर्वान् व्यथयंश्चापि तावकान्।

महाराज! सुशर्मा आपके पुत्रोंको व्यथित और समस्त पाण्डवोंको आनन्दित करता हुआ प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४६ ½॥

सुशर्माणं रणे हत्वा पुत्रानस्य महारथान्॥ ४७॥
सप्त चाष्टौ च त्रिंशच्च सायकैरनयत् क्षयम्।

रणभूमिमें सुशर्माका वध करके अर्जुनने अपने बाणोंद्वारा उसके पैंतालीस महारथी पुत्रोंको भी यमलोक पहुँचा दिया॥ ४७ ½॥

ततोऽस्य निशितैर्बाणैः सर्वान् हत्वा पदानुगान्॥ ४८॥
अभ्यगाद् भारतीं सेनां हतशेषां महारथः।

तदनन्तर पैने बाणोंद्वारा उसके सारे सेवकोंका संहार करके महारथी अर्जुनने मरनेसे बची हुई कौरवी सेनापर आक्रमण किया॥ ४८ ½॥

भीमस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रं तव जनाधिप॥ ४९॥
सुदर्शनमदृश्यं तं शरैश्चक्रे हसन्निव।
ततोऽस्य प्रहसन् क्रुद्धः शिरः कायादपाहरत्॥ ५०॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतः प्रापतद् भुवि।

जनेश्वर! दूसरी ओर कुपित हुए भीमसेनने हँसते-हँसते बाणोंकी वर्षा करके सुदर्शनको ढक दिया। फिर क्रोधपूर्वक अट्टहास करते हुए उन्होंने उसके मस्तकको तीखे क्षुरप्रद्वारा धड़से काट लिया। सुदर्शन मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४९-५०½॥

तस्मिंस्तु निहते वीरे ततस्तस्य पदानुगाः॥ ५१॥
परिवव्रू रणे भीमं किरन्तो विविधान् शरान्।

उस वीरके मारे जानेपर उसके सेवकोंने नाना प्रकारके बाणोंकी वर्षा करते हुए रणभूमिमें भीमसेनको सब ओरसे घेर लिया॥ ५१½॥

ततस्तु निशितैर्बाणैस्तवानीकं वृकोदरः॥ ५२॥
इन्द्राशनिसमस्पर्शैः समन्तात् पर्यवाकिरत्।

तत्पश्चात् भीमसेनने इन्द्रके वज्रकी भाँति कठोर स्पर्शवाले तीखे बाणोंद्वारा आपकी सेनाको चारों ओरसे ढक दिया॥ ५२½॥

ततः क्षणेन तद् भीमो न्यहनद् भरतर्षभ॥ ५३॥
तेषु तूत्साद्यमानेषु सेनाध्यक्षा महारथाः।
भीमसेनं समासाद्य ततोऽयुद्ध्यन्त भारत॥ ५४॥

भरतश्रेष्ठ! इसके बाद भीमसेनने क्षणभरमें आपकी सेनाका संहार कर डाला। भारत! जब उन कौरव-सैनिकोंका संहार होने लगा, तब महारथी सेनापतिगण भीमसेनपर आक्रमण करके उनके साथ युद्ध करने लगे॥ ५३-५४॥

स तान् सर्वान् शरैर्घोरैरवाकिरत पाण्डवः।
तथैव तावका राजन् पाण्डवेयान् महारथान्॥ ५५॥
शरवर्षेण महता समन्तात् पर्यवारयन्।

राजन्! पाण्डुपुत्र भीमने उन सबपर भयंकर बाणोंकी वृष्टि की। इसी प्रकार आपके सैनिकोंने भी बड़ी भारी बाण-वर्षा करके पाण्डव महारथियोंको सब ओरसे आच्छादित कर दिया॥ ५५½॥

व्याकुलं तदभूत् सर्वं पाण्डवानां परैः सह॥ ५६॥
तावकानां च समरे पाण्डवेयैर्युयुत्सताम्।

शत्रुओंके साथ जूझनेवाले पाण्डवोंका और पाण्डवोंके साथ युद्धकी इच्छा रखनेवाले आपके सैनिकोंका सारा सैन्यदल समरांगणमें परस्पर मिलकर एक-सा हो गया॥

तत्र योधास्तदा पेतुः परस्परसमाहताः।
उभयोः सेनयो राजन् संशोचन्तः स्म बान्धवान्॥ ५७॥

राजन्! उस समय वहाँ एक-दूसरेकी मार खाकर दोनों दलोंके योद्धा अपने भाई-बन्धुओंके लिये शोक करते हुए धराशायी हो जाते थे॥ ५७॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि सुशर्मवधे सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें सुशर्माका वधविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

सहदेवके द्वारा उलूक और शकुनिका वध एवं बची हुई सेनासहित दुर्योधनका पलायन

संजय उवाच

तस्मिन् प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये।
शकुनिः सौबलो राजन् सहदेवं समभ्ययात्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! हाथी-घोड़ों और मनुष्योंका संहार करनेवाले उस युद्धका आरम्भ होनेपर सुबलपुत्र शकुनिने सहदेवपर धावा किया॥ १॥

ततोऽस्यापततस्तूर्णं सहदेवः प्रतापवान्।
शरौघान् प्रेषयामास पतङ्गानिव शीघ्रगान्॥ २॥

तब प्रतापी सहदेवने भी अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शकुनिपर तुरंत ही बहुत-से शीघ्रगामी बाणसमूहोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, जो आकाशमें टिड्डीदलोंके समान छा रहे थे॥ २॥

उलूकश्च रणे भीमं विव्याध दशभिः शरैः।
शकुनिश्च महाराज भीमं विद्ध्वा त्रिभिः शरैः॥ ३॥
सायकानां नवत्या वै सहदेवमवाकिरत्।

महाराज! शकुनिके साथ उलूक भी था, उसने भीमसेनको दस बाणोंसे बींध डाला। फिर शकुनिने भी तीन बाणोंसे भीमको घायल करके नब्बे बाणोंसे सहदेवको ढक दिया॥ ३½॥

ते शूराः समरे राजन् समासाद्य परस्परम्॥ ४॥
विव्यधुर्निशितैर्बाणैः कङ्कबर्हिणवाजितैः।
स्वर्णपुङ्खैः शिलाधौतैराकर्णप्रहितैः शरैः॥ ५॥

राजन्! वे शूरवीर समरांगणमें एक-दूसरेसे टक्कर लेकर कंक और मोरके-से पंखवाले तीखे बाणोंद्वारा परस्पर आघात-प्रत्याघात करने लगे। उनके वे बाण सुनहरी पाँखोंसे सुशोभित, शिलापर साफ किये हुए और कानोंतक खींचकर छोड़े गये थे॥ ४-५॥

तेषां चापभुजोत्सृष्टा शरवृष्टिर्विशाम्पते।
आच्छादयद् दिशः सर्वा धारा इव पयोमुचः॥ ६॥

प्रजानाथ! उन वीरोंके धनुष और बाहुबलसे छोड़े

गये बाणोंकी उस वर्षाने सम्पूर्ण दिशाओंको उसी प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघकी जलधारा सारी दिशाओंको ढक देती है॥ ६॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमः सहदेवश्च भारत।
चेरतुः कदनं संख्ये कुर्वन्तौ सुमहाबलौ॥ ७॥

भारत! तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए भीमसेन और सहदेव दोनों महाबली वीर युद्धस्थलमें भीषण संहार मचाते हुए विचरने लगे॥ ७॥

ताभ्यां शरशतैश्छन्नं तद् बलं तव भारत।
सान्धकारमिवाकाशमभवत् तत्र तत्र ह॥ ८॥

भरतनन्दन! उन दोनोंके सैकड़ों बाणोंसे ढकी हुई आपकी सेना जहाँ-तहाँ अन्धकारपूर्ण आकाशके समान प्रतीत होती थी॥ ८॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः शरच्छन्नैर्विशाम्पते।
तत्र तत्र वृतो मार्गो विकर्षद्भिर्हतान् बहून्॥ ९॥

प्रजानाथ! बाणोंसे ढके हुए भागते घोड़ोंने, जो बहुत-से मरे हुए वीरोंको अपने साथ इधर-उधर खींचे लिये जाते थे, यत्र-तत्र जानेका मार्ग अवरुद्ध कर दिया॥

निहतानां हयानां च सहैव हयसादिभिः।
वर्मभिर्विनिकृत्तैश्च प्रासैश्छिन्नैश्च मारिष॥ १०॥
ऋष्टिभिः शक्तिभिश्चैव सासिप्रासपरश्वधैः।
संछन्ना पृथिवी जज्ञे कुसुमैः शबला इव॥ ११॥

मान्यवर नरेश! घुड़सवारोंसहित मारे गये घोड़ोंके शरीरों, कटे हुए कवचों, टूक-टूक हुए प्रासों, ऋष्टियों, शक्तियों, खड्गों, भालों और फरसोंसे ढकी हुई पृथ्वी बहुरंगी फलोंसे आच्छादित हो चितकबरी हुई-सी जान पड़ती थी॥ १०-११॥

योधास्तत्र महाराज समासाद्य परस्परम्।
व्यचरन्त रणे क्रुद्धा विनिघ्नन्तः परस्परम्॥ १२॥

महाराज! वहाँ रणभूमिमें कुपित हुए योद्धा एक-दूसरेसे भिड़कर परस्पर चोट करते हुए घूम रहे थे॥

उद्वृत्तनयनै रोषात् संदष्टौष्ठपुटैर्मुखैः।
सकुण्डलैर्मही च्छन्ना पद्मकिञ्जल्कसंनिभैः॥ १३॥

कमलकेसरकी-सी कान्तिवाले कुण्डलमण्डित कटे हुए मस्तकोंसे यह पृथ्वी ढक गयी थी। उनकी आँखें घूर रही थीं और उन्होंने रोषके कारण अपने ओठोंको दाँतोंसे दबा रखा था॥ १३॥

भुजैश्छिन्नैर्महाराज नागराजकरोपमैः।
साङ्गदैः सतनुत्रैश्च सासिप्रासपरश्वधैः॥ १४॥
कबन्धैरुत्थितैश्छिन्नैर्नृत्यद्भिश्चापरैर्युधि।
क्रव्यादगणसंछन्ना घोराभूत् पृथिवी विभो॥ १५॥

महाराज! अंगद, कवच, खड्ग, प्रास और फरसोंसहित कटी हुई हाथीकी सूड़के समान भुजाओं, छिन्न-भिन्न एवं खड़े होकर नाचते हुए कबन्धों तथा अन्य लोगोंसे भरी और मांसभक्षी जीव-जन्तुओंसे आच्छादित हुई यह पृथ्वी बड़ी भयंकर प्रतीत होती थी॥

अल्पावशिष्टे सैन्ये तु कौरवेयान् महाहवे।
प्रहृष्टाः पाण्डवा भूत्वा निन्यिरे यमसादनम्॥ १६॥

इस प्रकार उस महासमरमें जब कौरवोंके पास बहुत थोड़ी सेना शेष रह गयी, तब हर्ष और उत्साहमें भरकर पाण्डव वीर उन सबको यमलोक पहुँचाने लगे॥

एतस्मिन्नन्तरे शूरः सौबलेयः प्रतापवान्।
प्रासेन सहदेवस्य शिरसि प्राहरद् भृशम्॥ १७॥

इसी समय प्रतापी वीर सुबलपुत्र शकुनिने अपने प्राससे सहदेवके मस्तकपर गहरी चोट पहुँचायी॥ १७॥

स विह्वलो महाराज रथोपस्थ उपाविशत्।
सहदेवं तथा दृष्ट्वा भीमसेनः प्रतापवान्॥ १८॥
सर्वसैन्यानि संक्रुद्धो वारयामास भारत।
निर्बिभेद च नाराचैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १९॥

महाराज! उस चोटसे व्याकुल होकर सहदेव रथकी बैठकमें धम्मसे बैठ गये। उनकी वैसी अवस्था देख प्रतापी भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे। भारत! उन्होंने आपकी सारी सेनाओंको आगे बढ़नेसे रोक दिया तथा सैकड़ों और हजारों नाराचोंकी वर्षा करके उन सबको विदीर्ण कर डाला॥ १८-१९॥

विनिर्भिद्याकरोच्चैव सिंहनादमरिंदमः।
तेन शब्देन वित्रस्ताः सर्वे सहयवारणाः॥ २०॥
प्राद्रवन् सहसा भीताः शकुनेश्च पदानुगाः।

शत्रुदमन भीमसेनने शत्रुसेनाको विदीर्ण करके बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उनकी उस गर्जनासे भयभीत हो शकुनिके पीछे चलनेवाले सारे सैनिक घोड़े और हाथियोंसहित सहसा भाग खड़े हुए॥ २०½॥

प्रभग्नानथ तान् दृष्ट्वा राजा दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ २१॥
निवर्तध्वमधर्मज्ञा युध्यध्वं किं सृतेन वः।
इह कीर्तिं समाधाय प्रेत्य लोकान् समश्नुते॥ २२॥
प्राणान् जहाति यो धीरो युद्धे पृष्ठमदर्शयन्।

उन सबको भागते देख राजा दुर्योधनने इस प्रकार कहा—'अरे पापियो! लौट आओ और युद्ध करो। भागनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? जो धीर वीर रणभूमिमें पीठ न दिखाकर प्राणोंका परित्याग करता है, वह इस लोकमें अपनी कीर्ति स्थापित करके मृत्युके पश्चात् उत्तम लोकोंमें सुख भोगता है'॥ २१-२२½॥

एवमुक्तास्तु ते राज्ञा सौबलस्य पदानुगाः॥ २३॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त मृत्युं कृत्वा निवर्तनम्।

राजा दुर्योधनके ऐसा कहनेपर सुबलपुत्र शकुनिके पीछे चलनेवाले सैनिक 'अब हमें मृत्यु ही युद्धसे लौटा सकती है' ऐसा संकल्प लेकर पुनः पाण्डवोंपर टूट पड़े॥

द्रवद्भिस्तत्र राजेन्द्र कृतः शब्दोऽतिदारुणः॥ २४॥
क्षुब्धसागरसंकाशाः क्षुभिताः सर्वतोऽभवन्।

राजेन्द्र! वहाँ धावा करते समय उन सैनिकोंने बड़ा भयंकर कोलाहल मचाया। वे विक्षुब्ध समुद्रके समान क्षोभमें भरकर सब ओर छा गये॥ २४½॥

तांस्तथा पुरतो दृष्ट्वा सौबलस्य पदानुगान्॥ २५॥
प्रत्युद्ययुर्महाराज पाण्डवा विजयोद्यताः।

महाराज! शकुनिके सेवकोंको इस प्रकार सामने आया देख विजयके लिये उद्यत हुए पाण्डव वीर आगे बढ़े॥ २५½॥

प्रत्याश्वस्य च दुर्धर्षः सहदेवो विशाम्पते॥ २६॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा हयांश्चास्य त्रिभिः शरैः।
धनुश्चिच्छेद च शरैः सौबलस्य हसन्निव॥ २७॥

प्रजानाथ! इतनेहीमें स्वस्थ होकर दुर्धर्ष वीर सहदेवने हँसते हुए-से दस बाणोंसे शकुनिको बींध डाला और तीन बाणोंसे उसके घोड़ोंको मारकर हँसते हुए-से अनेक बाणोंद्वारा सुबलपुत्रके धनुषको भी टूक-टूक कर डाला॥ २६-२७॥

अथान्यद् धनुरादाय शकुनिर्युद्धदुर्मदः।
विव्याध नकुलं षष्ट्या भीमसेनं च सप्तभिः॥ २८॥

तदनन्तर दूसरा धनुष हाथमें लेकर रणदुर्मद शकुनिने नकुलको साठ और भीमसेनको सात बाणोंसे घायल कर दिया॥ २८॥

उलूकोऽपि महाराज भीमं विव्याध सप्तभिः।
सहदेवं च सप्तत्या परीप्सन् पितरं रणे॥ २९॥

महाराज! रणभूमिमें पिताकी रक्षा करते हुए उलूकने भीमसेनको सात और सहदेवको सत्तर बाणोंसे क्षत-विक्षत कर दिया॥ २९॥

तं भीमसेनः समरे विव्याध नवभिः शरैः।
शकुनिं च चतुःषष्ट्या पार्श्वस्थांश्च त्रिभिस्त्रिभिः॥ ३०॥

तब भीमसेनने समरांगणमें नौ बाणोंसे उलूकको, चौसठ बाणोंसे शकुनिको और तीन-तीन बाणोंसे उसके पार्श्वरक्षकोंको भी घायल कर दिया॥ ३०॥

ते हन्यमाना भीमेन नाराचैस्तैलपायितैः।
सहदेवं रणे क्रुद्धाश्छादयन् शरवृष्टिभिः॥ ३१॥
पर्वतं वारिधाराभिः सविद्युत इवाम्बुदाः।

भीमसेनके नाराचोंको तेल पिलाया गया था। उनके द्वारा भीमसेनके हाथसे मार खाये हुए शत्रु-सैनिकोंने रणभूमिमें कुपित होकर सहदेवको अपने बाणोंकी वर्षासे ढक दिया, मानो बिजलीसहित मेघोंने जलकी धाराओंसे पर्वतको आच्छादित कर दिया हो॥

ततोऽस्यापततः शूरः सहदेवः प्रतापवान्॥ ३२॥
उलूकस्य महाराज भल्लेनापाहरच्छिरः।

महाराज! तब प्रतापी शूरवीर सहदेवने एक भल्ल मारकर अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले उलूकका मस्तक काट डाला॥ ३२½॥

स जगाम रथाद् भूमिं सहदेवेन पातितः॥ ३३॥
रुधिराप्लुतसर्वाङ्गो नन्दयन् पाण्डवान् युधि।

सहदेवके हाथसे मारा गया उलूक युद्धमें पाण्डवोंको आनन्दित करता हुआ रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय उसके सारे अंग खूनसे लथपथ हो गये थे॥ ३३½॥

पुत्रं तु निहतं दृष्ट्वा शकुनिस्तत्र भारत॥ ३४॥
साश्रुकण्ठो विनिःश्वस्य क्षत्तुर्वाक्यमनुस्मरन्।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं स बाष्पपूर्णेक्षणः श्वसन्॥ ३५॥

भारत! अपने पुत्रको मारा गया देख वहाँ शकुनिका गला भर आया। वह लंबी साँस खींचकर विदुरजीकी बातोंको याद करने लगा। अपनी आँखोंमें आँसू भरकर उच्छ्वास लेता हुआ दो घड़ीतक चिन्तामें डूबा रहा॥ ३४-३५॥

सहदेवं समासाद्य त्रिभिर्विव्याध सायकैः।
तानपास्य शरान् मुक्तान् शरसंघैः प्रतापवान्॥ ३६॥
सहदेवो महाराज धनुश्चिच्छेद संयुगे।

महाराज! इसके बाद सहदेवके पास जाकर उसने तीन बाणोंद्वारा उनपर प्रहार किया। उसके छोड़े हुए उन बाणोंका अपने शरसमूहोंसे निवारण करके प्रतापी सहदेवने युद्धस्थलमें उसका धनुष काट डाला॥ ३६½॥

छिन्ने धनुषि राजेन्द्र शकुनिः सौबलस्तदा॥ ३७॥
प्रगृह्य विपुलं खड्गं सहदेवाय प्राहिणोत्।

राजेन्द्र! धनुष कट जानेपर उस समय सुबलपुत्र शकुनिने एक विशाल खड्ग लेकर उसे सहदेवपर दे मारा॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते॥ ३८॥
द्विधा चिच्छेद समरे सौबलस्य हसन्निव।

प्रजानाथ! शकुनिके उस घोर खड्गको सहसा आते देख समरांगणमें सहदेवने हँसते हुए-से उसके दो टुकड़े कर डाले॥ ३८½॥

असिं दृष्ट्वा तथा च्छिन्नं प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ ३९॥
प्राहिणोत् सहदेवाय सा मोघा न्यपतद् भुवि।

उस खड्गको कटा हुआ देख शकुनिने सहदेवपर एक विशाल गदा चलायी; परंतु वह विफल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ३९ १/२ ॥

ततः शक्तिं महाघोरां कालरात्रिमिवोद्यताम्॥ ४०॥
प्रेषयामास संक्रुद्धः पाण्डवं प्रति सौबलः।

यह देख सुबलपुत्र क्रोधसे जल उठा। अबकी बार उसने उठी हुई कालरात्रिके समान एक महाभयंकर शक्ति सहदेवको लक्ष्य करके चलायी॥ ४० १/२ ॥

तामापतन्तीं सहसा शरैः कनकभूषणैः॥ ४१॥
त्रिधा चिच्छेद समरे सहदेवो हसन्निव।

अपने ऊपर आती हुई उस शक्तिको सुवर्णभूषित बाणोंद्वारा मारकर सहदेवने समरांगणमें हँसते हुए-से सहसा उसके तीन टुकड़े कर डाले॥ ४१ १/२ ॥

सा पपात त्रिधा च्छिन्ना भूमौ कनकभूषणा॥ ४२॥
शीर्यमाणा यथा दीप्ता गगनाद् वै शतह्रदा।

तीन टुकड़ोंमें कटी हुई वह सुवर्णभूषित शक्ति आकाशसे गिरनेवाली चमकीली बिजलीके समान पृथ्वीपर बिखर गयी॥ ४२ १/२ ॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा सौबलं च भयार्दितम्॥ ४३॥
दुद्रुवुस्तावकाः सर्वे भये जाते ससौबलाः।

उस शक्तिको नष्ट हुई देख और सुबलपुत्र शकुनिको भी भयसे पीड़ित जान आपके सभी सैनिक भयभीत हो शकुनिसहित वहाँसे भाग खड़े हुए॥ ४३ १/२ ॥

अथोत्क्रुष्टं महच्चासीत् पाण्डवैर्जितकाशिभिः॥ ४४॥
धार्तराष्ट्रास्ततः सर्वे प्रायशो विमुखाभवन्।

उस समय विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डवोंने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। इससे आपके सभी सैनिक प्रायः युद्धसे विमुख हो गये॥ ४४ १/२ ॥

तान् वै विमनसो दृष्ट्वा माद्रीपुत्रः प्रतापवान्॥ ४५॥
शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास संयुगे।

उन सबको युद्धसे उदासीन देख प्रतापी माद्रीकुमार सहदेवने अनेक सहस्र बाणोंकी वर्षा करके उन्हें युद्धस्थलमें ही रोक दिया॥ ४५ १/२ ॥

ततो गान्धारकैर्गुप्तं पुष्टैरश्वैर्जये धृतम्॥ ४६॥
आससाद रणे यान्तं सहदेवोऽथ सौबलम्।

इसके बाद गन्धारदेशके हृष्ट-पुष्ट घोड़ों और घुड़सवारोंसे सुरक्षित तथा विजयके लिये दृढ़संकल्प होकर रणभूमिमें जाते हुए सुबलपुत्र शकुनिपर सहदेवने आक्रमण किया॥ ४६ १/२ ॥

स्वमंशमवशिष्टं तं संस्मृत्य शकुनिं नृप॥ ४७॥
रथेन काञ्चनाङ्गेन सहदेवः समभ्ययात्।

नरेश्वर! शकुनिको अपना अवशिष्ट भाग मानकर सहदेवने सुवर्णमय अंगोंवाले रथके द्वारा उसका पीछा किया॥ ४७ १/२ ॥

अधिज्यं बलवत् कृत्वा व्याक्षिपन् सुमहद् धनुः॥ ४८॥
स सौबलमभिद्रुत्य गार्ध्रपत्रैः शिलाशितैः।
भृशमभ्यहनत् क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम्॥ ४९॥

उन्होंने एक विशाल धनुषपर बलपूर्वक प्रत्यंचा चढ़ाकर शिलापर तेज किये हुए गीधके पंखोंवाले बाणोंद्वारा शकुनिपर आक्रमण किया और जैसे किसी विशाल गजराजको अंकुशोंसे मारा जाय, उसी प्रकार कुपित हो उसको गहरी चोट पहुँचायी॥ ४८-४९॥

उवाच चैनं मेधावी विगृह्य स्मारयन्निव।
क्षत्रधर्मे स्थिरो भूत्वा युध्यस्व पुरुषो भव॥ ५०॥
यत् तदा हृष्यसे मूढ ग्लहन्नक्षैः सभातले।
फलमद्य प्रपश्यस्व कर्मणस्तस्य दुर्मते॥ ५१॥

बुद्धिमान् सहदेवने उसपर आक्रमण करके कुछ याद दिलाते हुए-से इस प्रकार कहा—'ओ मूढ़! क्षत्रियधर्ममें स्थित होकर युद्ध कर और पुरुष बन। खोटी बुद्धिवाले शकुनि! तू सभामें पासे फेंककर जूआ खेलते समय जो उस दिन बहुत खुश हो रहा था, आज उस दुष्कर्मका महान् फल प्राप्त कर ले॥ ५०-५१॥

निहतास्ते दुरात्मानो येऽस्मानवहसन् पुरा।
दुर्योधनः कुलाङ्गारः शिष्टस्त्वं चास्य मातुलः॥ ५२॥
अद्य ते निहनिष्यामि क्षुरेणोन्मथितं शिरः।
वृक्षात् फलमिवाविद्धं लगुडेन प्रमाथिना॥ ५३॥

'जिन दुरात्माओंने पूर्वकालमें हमलोगोंकी हँसी उड़ायी थी, वे सब मारे गये। अब केवल कुलांगार दुर्योधन और उसका मामा तू—ये दो ही बच गये हैं। जैसे मथ डालनेवाले डंडेसे मारकर पेड़से फल तोड़ लिया जाता है, उसी प्रकार आज मैं क्षुरके द्वारा तेरा मस्तक काटकर तुझे मौतके हवाले कर दूँगा'॥ ५२-५३॥

एवमुक्त्वा महाराज सहदेवो महाबलः।
संक्रुद्धो रणशार्दूलो वेगेनाभिजगाम तम्॥ ५४॥

महाराज! ऐसा कहकर रणक्षेत्रमें सिंहके समान पराक्रम दिखानेवाले महाबली सहदेवने अत्यन्त कुपित हो बड़े वेगसे उसपर आक्रमण किया॥ ५४॥

अभिगम्य सुदुर्धर्षः सहदेवो युधां पतिः।
विकृष्य बलवच्चापं क्रोधेन प्रज्वलन्निव॥ ५५॥
शकुनिं दशभिर्विद्ध्वा चतुर्भिश्चास्य वाजिनः।
छत्रं ध्वजं धनुश्चास्य च्छित्त्वा सिंह इवानदत्॥ ५६॥

योद्धाओंमें श्रेष्ठ सहदेव अत्यन्त दुर्जय वीर हैं।

उन्होंने क्रोधसे जलते हुए-से पास जाकर अपने धनुषको बलपूर्वक खींचा और दस बाणोंसे शकुनिको घायल करके चार बाणोंसे उसके घोड़ोंको भी बींध डाला। तत्पश्चात् उसके छत्र, ध्वज और धनुषको भी काटकर सिंहके समान गर्जना की॥ ५५-५६॥

छिन्नध्वजधनुश्छत्रः सहदेवेन सौबलः।
कृतो विद्धश्च बहुभिः सर्वमर्मसु सायकैः॥ ५७॥

सहदेवने शकुनिके ध्वज, छत्र और धनुषको काट देनेके पश्चात् उसके सम्पूर्ण मर्मस्थानोंमें बाणोंद्वारा गहरी चोट पहुँचायी॥ ५७॥

ततो भूयो महाराज सहदेवः प्रतापवान्।
शकुनेः प्रेषयामास शरवृष्टिं दुरासदाम्॥ ५८॥

महाराज! तत्पश्चात् प्रतापी सहदेवने पुनः शकुनिपर दुर्जय बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी॥ ५८॥

ततस्तु क्रुद्धः सुबलस्य पुत्रो
माद्रीसुतं सहदेवं विमर्दे।
प्रासेन जाम्बूनदभूषणेन
जिघांसुरेकोऽभिपपात शीघ्रम्॥ ५९॥

इससे सुबलपुत्र शकुनिको बड़ा क्रोध हुआ। उसने उस संग्राममें माद्रीकुमार सहदेवको सुवर्णभूषित प्रासके द्वारा मार डालनेकी इच्छासे अकेले ही उनपर तीव्र गतिसे आक्रमण किया॥ ५९॥

माद्रीसुतस्तस्य समुद्यतं तं
प्रासं सुवृत्तौ च भुजौ रणाग्रे।
भल्लैस्त्रिभिर्युगपत् संचकर्त
ननाद चोच्चैस्तरसाऽऽजिमध्ये॥ ६०॥

माद्रीकुमारने शकुनिके उस उठे हुए प्रासको और उसकी दोनों सुन्दर गोल-गोल भुजाओंको भी युद्धके मुहानेपर तीन भल्लोंद्वारा एक साथ ही काट डाला और युद्धस्थलमें उच्चस्वरसे वेगपूर्वक गर्जना की॥ ६०॥

तस्याशुकारी सुसमाहितेन
सुवर्णपुङ्खेन दृढायसेन।
भल्लेन सर्वावरणातिगेन
शिरः शरीरात् प्रममाथ भूयः॥ ६१॥

तत्पश्चात् शीघ्रता करनेवाले सहदेवने अच्छी तरह संधान करके छोड़े गये सुवर्णमय पंखवाले लोहेके बने हुए सुदृढ़ भल्लके द्वारा, जो समस्त आवरणोंको छेद डालनेवाला था, शकुनिके मस्तकको पुनः धड़से काट गिराया॥ ६१॥

शरेण कार्तस्वरभूषितेन
दिवाकराभेण सुसंहितेन।
हृतोत्तमाङ्गो युधि पाण्डवेन
पपात भूमौ सुबलस्य पुत्रः॥ ६२॥

वह सुवर्णभूषित बाण सूर्यके समान तेजस्वी तथा अच्छी तरह संधान करके चलाया गया था। उसके द्वारा पाण्डुकुमार सहदेवने युद्धस्थलमें जब सुबलपुत्र शकुनिका मस्तक काट डाला, तब वह प्राणशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ६२॥

स तच्छिरो वेगवता शरेण
सुवर्णपुङ्खेन शिलाशितेन।
प्रावेरयत् कुपितः पाण्डुपुत्रो
यत्तत् कुरूणामनयस्य मूलम्॥ ६३॥

क्रोधमें भरे हुए पाण्डुपुत्र सहदेवने शिलापर तेज किये हुए और सुवर्णमय पंखवाले वेगवान् बाणसे शकुनिके उस मस्तकको काट गिराया, जो कौरवोंके अन्यायका मूल कारण था॥ ६३॥

भुजौ सुवृत्तौ प्रचकर्त वीरः
पश्चात् कबन्धं रुधिरावसिक्तम्।
विस्पन्दमानं निपपात घोरं
रथोत्तमात् पार्थिव पार्थिवस्य॥ ६४॥

राजन्! वीर सहदेवने जब उसकी गोल-गोल सुन्दर दोनों भुजाएँ काट दीं, उसके पश्चात् राजा शकुनिका भयंकर धड़ लहूलुहान होकर श्रेष्ठ रथसे नीचे गिर पड़ा और छटपटाने लगा॥ ६४॥

हृतोत्तमाङ्गं शकुनिं समीक्ष्य
भूमौ शयानं रुधिरार्द्रगात्रम्।
योधास्त्वदीया भयनष्टसत्त्वा
दिशः प्रजग्मुः प्रगृहीतशस्त्राः॥ ६५॥

शकुनिको मस्तकसे रहित एवं खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर पड़ा देख आपके योद्धा भयके कारण अपना धैर्य खो बैठे और हथियार लिये हुए सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये॥ ६५॥

प्रविद्रुताः शुष्कमुखा विसंज्ञा
गाण्डीवघोषेण समाहताश्च।
भयार्दिता भग्नरथाश्वनागाः
पदातयश्चैव सधार्तराष्ट्राः॥ ६६॥

उनके मुख सूख गये थे। उनकी चेतना लुप्त-सी हो रही थी। वे गाण्डीवकी टंकारसे मृतप्राय हो रहे थे; उनके रथ, घोड़े और हाथी नष्ट हो गये थे; अतः वे भयसे पीड़ित हो आपके पुत्र दुर्योधनसहित पैदल ही भाग चले॥ ६६॥

ततो रथाच्छकुनिं पातयित्वा
मुदान्विता भारत पाण्डवेयाः।

शङ्खान् प्रदध्मुः समरेऽतिहृष्टाः
सकेशवाः सैनिकान् हर्षयन्तः॥ ६७॥

भरतनन्दन! रथसे शकुनिको गिराकर समरांगणमें श्रीकृष्णसहित समस्त पाण्डव अत्यन्त हर्षमें भरकर सैनिकोंका हर्ष बढ़ाते हुए प्रसन्नतापूर्वक शंखनाद करने लगे॥

तं चापि सर्वे प्रतिपूजयन्तो
दृष्ट्वा ब्रुवाणाः सहदेवमाजौ।
दिष्ट्या हतो नैकृतिको महात्मा
सहात्मजो वीर रणे त्वयेति॥ ६८॥

सहदेवको देखकर युद्धक्षेत्रमें सब लोग उनकी पूजा (प्रशंसा) करते हुए इस प्रकार कहने लगे—'वीर! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने रणभूमिमें कपटद्यूतके विधायक महामना शकुनिको पुत्रसहित मार डाला है'॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि शकुन्युलूकवधेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वमें शकुनि और उलूकका वधविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

(ह्रदप्रवेशपर्व)

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

बची हुई समस्त कौरव-सेनाका वध, संजयका कैदसे छूटना, दुर्योधनका सरोवरमें प्रवेश तथा युयुत्सुका राजमहिलाओंके साथ हस्तिनापुरमें जाना

संजय उवाच

ततः क्रुद्धा महाराज सौबलस्य पदानुगाः।
त्यक्त्वा जीवितमाक्रन्दे पाण्डवान् पर्यवारयन्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! तदनन्तर शकुनिके अनुचर क्रोधमें भर गये और प्राणोंका मोह छोड़कर उन्होंने उस महासमरमें पाण्डवोंको चारों ओरसे घेर लिया॥ १॥

तानर्जुनः प्रत्यगृह्णात् सहदेवजये धृतः।
भीमसेनश्च तेजस्वी क्रुद्धाशीविषदर्शनः॥ २॥

उस समय सहदेवकी विजयको सुरक्षित रखनेका दृढ़ निश्चय लेकर अर्जुनने उन समस्त सैनिकोंको आगे बढ़नेसे रोका। उनके साथ तेजस्वी भीमसेन भी थे, जो कुपित हुए विषधर सर्पके समान दिखायी देते थे॥ २॥

शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां सहदेवं जिघांसताम्।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः॥ ३॥

सहदेवको मारनेकी इच्छासे शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लेकर आक्रमण करनेवाले उन समस्त योद्धाओंका संकल्प अर्जुनने गाण्डीव धनुषके द्वारा व्यर्थ कर दिया॥ ३॥

संगृहीतायुधान् बाहून् योधानामधिधावताम्।
भल्लैश्चिच्छेद बीभत्सुः शिरांस्यपि हयानपि॥ ४॥

सहदेवपर धावा करनेवाले उन योद्धाओंकी अस्त्र-शस्त्रयुक्त भुजाओं, मस्तकों और उनके घोड़ोंको भी अर्जुनने भल्लोंसे काट गिराया॥ ४॥

ते हयाः प्रत्यपद्यन्त वसुधां विगतासवः।
चरता लोकवीरेण प्रहताः सव्यसाचिना॥ ५॥

रणभूमिमें विचरते हुए विश्वविख्यात वीर सव्यसाची अर्जुनके द्वारा मारे गये वे घोड़े और घुड़सवार प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५॥

ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा स्वबलसंक्षयम्।
हतशेषान् समानीय क्रुद्धो रथगणान् बहून्॥ ६॥
कुञ्जरांश्च हयांश्चैव पादातांश्च समन्ततः।
उवाच सहितान् सर्वान् धार्तराष्ट्र इदं वचः॥ ७॥

अपनी सेनाका इस प्रकार संहार होता देख राजा दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ। उसने मरनेसे बचे हुए बहुत-से रथियों, हाथीसवारों, घुड़सवारों और पैदलोंको सब ओरसे एकत्र करके उन सबसे इस प्रकार कहा—॥

समासाद्य रणे सर्वान् पाण्डवान् ससुहृद्गणान्।
पाञ्चाल्यं चापि सबलं हत्वा शीघ्रं न्यवर्तत॥ ८॥

'वीरो! तुम सब लोग रणभूमिमें समस्त पाण्डवों तथा उनके मित्रोंसे भिड़कर उन्हें मार डालो और पांचालराज धृष्टद्युम्नका भी सेनासहित संहार करके शीघ्र लौट आओ'॥ ८॥

तस्य ते शिरसा गृह्य वचनं युद्धदुर्मदाः।
अभ्युद्ययू रणे पार्थांस्तव पुत्रस्य शासनात्॥ ९॥

राजन्! आपके पुत्रकी आज्ञासे उसके उस वचनको शिरोधार्य करके वे रणदुर्मद योद्धा युद्धके लिये आगे बढ़े॥

तानभ्यापततः शीघ्रं हतशेषान् महारणे।
शरैराशीविषाकारैः पाण्डवाः समवाकिरन्॥ १०॥

उस महासमरमें शीघ्रतापूर्वक आक्रमण करनेवाले मरनेसे बचे हुए उन सैनिकोंपर समस्त पाण्डवोंने विषधर सर्पके समान आकारवाले बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी॥

तत् सैन्यं भरतश्रेष्ठ मुहूर्तेन महात्मभिः।
अवध्यत रणं प्राप्य त्रातारं नाभ्यविन्दत॥ ११॥
प्रतिष्ठमानं तु भयान्नावतिष्ठति दंशितम्।

भरतश्रेष्ठ! वह सेना युद्धस्थलमें आकर महात्मा पाण्डवोंद्वारा दो ही घड़ीमें मार डाली गयी। उस समय उसे कोई भी अपना रक्षक नहीं मिला। वह युद्धके लिये कवच बाँधकर प्रस्थित तो हुई, किंतु भयके मारे वहाँ टिक न सकी॥ ११½॥

अश्वैर्विपरिधावद्भिः सैन्येन रजसा वृते॥ १२॥
न प्राज्ञायन्त समरे दिशः सप्रदिशस्तथा।

चारों ओर दौड़ते हुए घोड़ों तथा सेनाके द्वारा उड़ायी हुई धूलसे वहाँका सारा प्रदेश छा गया था। अतः समरभूमिमें दिशाओं तथा विदिशाओंका कुछ पता नहीं चलता था॥ १२½॥

ततस्तु पाण्डवानीकान्निःसृत्य बहवो जनाः॥ १३॥
अभ्यघ्नंस्तावकान् युद्धे मुहूर्तादिव भारत।
ततो निःशेषमभवत् तत् सैन्यं तव भारत॥ १४॥

भारत! पाण्डव-सेनासे बहुत-से सैनिकोंने निकलकर युद्धमें एक ही मुहूर्तके भीतर आपके सम्पूर्ण योद्धाओंका संहार कर डाला। भरतनन्दन! उस समय आपकी वह सेना सर्वथा नष्ट हो गयी। उसमेंसे एक भी योद्धा बच न सका॥ १३-१४॥

अक्षौहिण्यः समेतास्तु तव पुत्रस्य भारत।
एकादश हता युद्धे ताः प्रभो पाण्डुसृञ्जयैः॥ १५॥

प्रभो! भरतवंशी नरेश! आपके पुत्रके पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएँ थीं; परन्तु युद्धमें पाण्डवों और सृंजयोंने उन सबका विनाश कर डाला॥ १५॥

तेषु राजसहस्रेषु तावकेषु महात्मसु।
एको दुर्योधनो राजन्नदृश्यत भृशं क्षतः॥ १६॥

राजन्! आपके दलके उन सहस्रों महामनस्वी राजाओंमें एकमात्र दुर्योधन ही उस समय दिखायी देता था; परंतु वह भी बहुत घायल हो चुका था॥ १६॥

ततो वीक्ष्य दिशः सर्वा दृष्ट्वा शून्यां च मेदिनीम्।
विहीनः सर्वयोधैश्च पाण्डवान् वीक्ष्य संयुगे॥ १७॥
मुदितान् सर्वतः सिद्धान् नर्दमानान् समन्ततः।
बाणशब्दरवांश्चैव श्रुत्वा तेषां महात्मनाम्॥ १८॥
दुर्योधनो महाराज कश्मलेनाभिसंवृतः।
अपयाने मनश्चक्रे विहीनबलवाहनः॥ १९॥

उस समय उसे सम्पूर्ण दिशाएँ और सारी पृथ्वी सूनी दिखायी दी। वह अपने समस्त योद्धाओंसे हीन हो चुका था। महाराज! दुर्योधनने युद्धस्थलमें पाण्डवोंको सर्वथा प्रसन्न, सफलमनोरथ और सब ओरसे सिंहनाद करते देख तथा उन महामनस्वी वीरोंके बाणोंकी सनसनाहट सुनकर शोकसे संतप्त हो वहाँसे भाग जानेका विचार किया। उसके पास न तो सेना थी और न कोई सवारी ही॥ १७—१९॥

धृतराष्ट्र उवाच

निहते मामके सैन्ये निःशेषे शिबिरे कृते।
पाण्डवानां बले सूत किं नु शेषमभूत् तदा॥ २०॥

धृतराष्ट्रने पूछा—सूत! जब मेरी सेना मार डाली गयी और सारी छावनी सूनी कर दी गयी, उस समय पाण्डवोंकी सेनामें कितने सैनिक शेष रह गये थे?॥

एतन्मे पृच्छतो ब्रूहि कुशलो ह्यसि संजय।
यच्च दुर्योधनो मन्दः कृतवांस्तनयो मम॥ २१॥
बलक्षयं तथा दृष्ट्वा स एकः पृथिवीपतिः।

संजय! मैं यह बात पूछ रहा हूँ, तुम मुझे बताओ; क्योंकि यह सब बतानेमें तुम कुशल हो। अपनी सेनाका संहार हुआ देखकर अकेले बचे हुए मेरे मूर्ख पुत्र राजा दुर्योधनने क्या किया?॥ २१½॥

संजय उवाच

रथानां द्वे सहस्रे तु सप्त नागशतानि च॥ २२॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः।
एतच्छेषमभूद् राजन् पाण्डवानां महद् बलम्॥ २३॥

संजयने कहा—राजन्! पाण्डवोंकी विशाल सेनामें-से केवल दो हजार रथ, सात सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े और दस हजार पैदल बच गये थे॥ २२-२३॥

परिगृह्य हि यद् युद्धे धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः।
एकाकी भरतश्रेष्ठ ततो दुर्योधनो नृपः॥ २४॥

इन सबको साथ लेकर सेनापति धृष्टद्युम्न युद्धभूमिमें खड़े थे। उधर राजा दुर्योधन अकेला हो गया था॥ २४॥

नापश्यत् समरे कंचित् सहायं रथिनां वरः।
नर्दमानान् परान् दृष्ट्वा स्वबलस्य च संक्षयम्॥ २५॥
तथा दृष्ट्वा महाराज एकः स पृथिवीपतिः।
हतं स्वहयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात्॥ २६॥

महाराज! रथियोंमें श्रेष्ठ दुर्योधनने जब समरभूमिमें अपने किसी सहायकको न देखकर शत्रुओंको गर्जते देखा और अपनी सेनाके विनाशपर दृष्टिपात किया, तब वह अकेला भूपाल अपने मरे हुए घोड़ेको वहीं छोड़कर भयके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग चला॥ २५-२६॥

एकादशचमूभर्ता पुत्रो दुर्योधनस्तव।
गदामादाय तेजस्वी पदातिः प्रस्थितो ह्रदम्॥ २७॥

जो किसी समय ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका सेनापति

था, वही आपका तेजस्वी पुत्र दुर्योधन अब गदा लेकर पैदल ही सरोवरकी ओर भागा जा रहा था॥ २७॥

नातिदूरं ततो गत्वा पद्भ्यामेव नराधिपः।
सस्मार वचनं क्षत्तुर्धर्मशीलस्य धीमतः॥ २८॥

अपने पैरोंसे ही थोड़ी ही दूर जानेके पश्चात् राजा दुर्योधनको धर्मशील बुद्धिमान् विदुरजीकी कही हुई बातें याद आने लगीं॥ २८॥

इदं नूनं महाप्राज्ञो विदुरो दृष्टवान् पुरा।
महद् वैशसमस्माकं क्षत्रियाणां च संयुगे॥ २९॥

वह मन-ही-मन सोचने लगा कि हमारा और इन क्षत्रियोंका जो महान् संहार हुआ है, इसे महाज्ञानी विदुरजीने अवश्य पहले ही देख और समझ लिया था॥

एवं विचिन्तयानस्तु प्रविविक्षुर्ह्रदं नृपः।
दुःखसंतप्तहृदयो दृष्ट्वा राजन् बलक्षयम्॥ ३०॥

राजन्! अपनी सेनाका संहार देखकर इस प्रकार चिन्ता करते हुए राजा दुर्योधनका हृदय दुःख और शोकसे संतप्त हो उठा था। उसने सरोवरमें प्रवेश करनेका विचार किया॥ ३०॥

पाण्डवास्तु महाराज धृष्टद्युम्नपुरोगमाः।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धास्तव राजन् बलं प्रति॥ ३१॥
शक्त्यृष्टिप्रासहस्तानां बलानामभिगर्जताम्।
संकल्पमकरोन्मोघं गाण्डीवेन धनंजयः॥ ३२॥

महाराज! धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवोंने अत्यन्त कुपित होकर आपकी सेनापर धावा किया था तथा शक्ति, ऋष्टि और प्रास हाथमें लेकर गर्जना करनेवाले आपके योद्धाओंका सारा संकल्प अर्जुनने अपने गाण्डीव धनुषसे व्यर्थ कर दिया था॥ ३१-३२॥

तान् हत्वा निशितैर्बाणैः सामात्यान् सह बन्धुभिः।
रथे श्वेतहये तिष्ठन्नर्जुनो बह्वशोभत॥ ३३॥

अपने पैने बाणोंसे बन्धुओं और मन्त्रियोंसहित उन योद्धाओंका संहार करके श्वेत घोड़ोंवाले रथपर स्थित हुए अर्जुनकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ३३॥

सुबलस्य हते पुत्रे सवाजिरथकुञ्जरे।
महावनमिव च्छिन्नमभवत् तावकं बलम्॥ ३४॥

घोड़े, रथ और हाथियोंसहित सुबलपुत्रके मारे जानेपर आपकी सेना कटे हुए विशाल वनके समान प्रतीत होती थी॥ ३४॥

अनेकशतसाहस्त्रे बले दुर्योधनस्य ह।
नान्यो महारथो राजन् जीवमानो व्यदृश्यत॥ ३५॥
द्रोणपुत्रादृते वीरात् तथैव कृतवर्मणः।
कृपाच्च गौतमाद् राजन् पार्थिवाच्च तवात्मजात्॥ ३६॥

राजन्! दुर्योधनकी कई लाख सेनामेंसे द्रोणपुत्र वीर अश्वत्थामा, कृतवर्मा, गौतमवंशी कृपाचार्य तथा आपके पुत्र राजा दुर्योधनके अतिरिक्त दूसरा कोई महारथी जीवित नहीं दिखायी देता था॥ ३५-३६॥

धृष्टद्युम्नस्तु मां दृष्ट्वा हसन् सात्यकिमब्रवीत्।
किमनेन गृहीतेन नानेनार्थोऽस्ति जीवता॥ ३७॥

उस समय मुझे कैदमें पड़ा हुआ देखकर हँसते हुए धृष्टद्युम्नने सात्यकिसे कहा—'इसको कैद करके क्या करना है? इसके जीवित रहनेसे अपना कोई लाभ नहीं है'॥ ३७॥

धृष्टद्युम्नवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता महारथः।
उद्यम्य निशितं खड्गं हन्तुं मामुद्यतस्तदा॥ ३८॥

धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर शिनिपौत्र महारथी सात्यकि तीखी तलवार उठाकर उसी क्षण मुझे मार डालनेके लिये उद्यत हो गये॥ ३८॥

तमागम्य महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
मुच्यतां संजयो जीवन्न हन्तव्यः कथंचन॥ ३९॥

उस समय महाज्ञानी श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी सहसा आकर बोले—'संजयको जीवित छोड़ दो। यह किसी प्रकार वधके योग्य नहीं है'॥ ३९॥

द्वैपायनवचः श्रुत्वा शिनेर्नप्ता कृताञ्जलिः।
ततो मामब्रवीन्मुक्त्वा स्वस्ति संजय साधय॥ ४०॥

हाथ जोड़े हुए शिनिपौत्र सात्यकिने व्यासजीकी वह बात सुनकर मुझे कैदसे मुक्त करके कहा—'संजय! तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, अपना अभीष्ट साधन करो'॥ ४०॥

अनुज्ञातस्त्वहं तेन न्यस्तवर्मा निरायुधः।
प्रातिष्ठं येन नगरं सायाह्ने रुधिरोक्षितः॥ ४१॥

उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने कवच उतार दिया और अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित हो सायंकालके समय नगरकी ओर प्रस्थित हुआ। उस समय मेरा सारा शरीर रक्तसे भीगा हुआ था॥ ४१॥

क्रोशमात्रमपक्रान्तं गदापाणिमवस्थितम्।
एकं दुर्योधनं राजन्नपश्यं भृशविक्षतम्॥ ४२॥

राजन्! एक कोस आनेपर मैंने भागे हुए दुर्योधनको गदा हाथमें लिये अकेला खड़ा देखा। उसके शरीरपर बहुत-से घाव हो गये थे॥ ४२॥

स तु मामश्रुपूर्णाक्षो नाशक्नोदभिवीक्षितुम्।
उपप्रैक्षत मां दृष्ट्वा तथा दीनमवस्थितम्॥ ४३॥

मुझपर दृष्टि पड़ते ही उसके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वह अच्छी तरह मेरी ओर देख न सका। मैं उस

समय दीनभावसे खड़ा था। वह मेरी उस अवस्थापर दृष्टिपात करता रहा॥ ४३॥

तं चाहमपि शोचन्तं दृष्ट्वैकाकिनमाहवे।
मुहूर्तं नाशकं वक्तुमतिदुःखपरिप्लुतः॥ ४४॥

मैं भी युद्धक्षेत्रमें अकेले शोकमग्न हुए दुर्योधनको देखकर अत्यन्त दुःखशोकमें डूब गया और दो घड़ीतक कोई बात मुँहसे न निकाल सका॥ ४४॥

(यस्य मूर्धाभिषिक्तानां सहस्रं मणिमौलिनाम्।
आहत्य च करं सर्वं स्वस्य वै वशमागतम्॥
चतुःसागरपर्यन्ता पृथिवी रत्नभूषिता।
कर्णेनैकेन यस्यार्थे करमाहारिता पुरा॥
यस्याज्ञा परराष्ट्रेषु कर्णेनैव प्रसारिता।
नाभवद् यस्य शस्त्रेषु खेदो राज्ञः प्रशासतः॥
आसीनो हास्तिनपुरे क्षेमं राज्यमकण्टकम्।
अन्वपालयदैश्वर्यात् कुबेरमपि नास्मरत्॥
भवनाद् भवनं राजन् प्रयातुः पृथिवीपते।
देवालयप्रवेशे च पन्था यस्य हिरण्मयः॥
आरुह्यैरावतप्रख्यं नागमिन्द्रसमो बली।
विभूत्या सुमहत्या यः प्रयाति पृथिवीपतिः॥
तं भृशक्षतमिन्द्राभं पद्भ्यामेव धरातले।
तिष्ठन्तमेकं दृष्ट्वा तु ममाभूत् क्लेश उत्तमः॥
तस्य चैवंविधस्यास्य जगन्नाथस्य भूपतेः।
विपदप्रतिमाभूद् या बलीयान् विधिरेव हि॥)

मस्तकपर मुकुट धारण करनेवाले सहस्रों मूर्धाभिषिक्त नरेश जिसके लिये भेंट लाकर देते थे और वे सब-के-सब जिसकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे, पूर्वकालमें एकमात्र वीर कर्णने जिसके लिये चारों समुद्रोंतक फैली हुई इस रत्नभूषित पृथ्वीसे कर वसूल किया था, कर्णने ही दूसरे राष्ट्रोंमें जिसकी आज्ञाका प्रसार किया था, जिस राजाको राज्य-शासन करते समय कभी हथियार उठानेका कष्ट नहीं सहन करना पड़ा था, जो हस्तिनापुरमें ही रहकर अपने कल्याणमय निष्कण्टक राज्यका निरन्तर पालन करता था, जिसने अपने ऐश्वर्यसे कुबेरको भी भुला दिया था, राजन्! पृथ्वीनाथ! एक घरसे दूसरे घरमें जाने अथवा देवालयमें प्रवेश करनेके हेतु जिसके लिये सुवर्णमय मार्ग बनाया गया था, जो इन्द्रके समान बलवान् भूपाल ऐरावतके समान कान्तिमान् गजराजपर आरूढ़ हो महान् ऐश्वर्यके साथ यात्रा करता था, उसी इन्द्र-तुल्य तेजस्वी राजा दुर्योधनको अत्यन्त घायल हो पाँव-पयादे ही पृथ्वीपर अकेला खड़ा देख मुझे महान् क्लेश हुआ। ऐसे प्रतापी और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी इस भूपालको जो अनुपम विपत्ति प्राप्त हुई, उसे देखकर कहना पड़ता है कि 'विधाता ही सबसे बड़ा बलवान् है'।

ततोऽस्मै तदहं सर्वमुक्तवान् ग्रहणं तदा।
द्वैपायनप्रसादाच्च जीवतो मोक्षमाहवे॥ ४५॥

तत्पश्चात् मैंने युद्धमें अपने पकड़े जाने और व्यासजीकी कृपासे जीवित छूटनेका सारा समाचार उससे कह सुनाया॥ ४५॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा प्रतिलभ्य च चेतनाम्।
भ्रातॄंश्च सर्वसैन्यानि पर्यपृच्छत मां ततः॥ ४६॥

उसने दो घड़ीतक कुछ सोच-विचारकर सचेत होनेपर मुझसे अपने भाइयों तथा सम्पूर्ण सेनाओंका समाचार पूछा॥ ४६॥

तस्मै तदहमाचक्षे सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान्।
भ्रातॄंश्च निहतान् सर्वान् सैन्यं च विनिपातितम्॥ ४७॥
त्रयः किल रथाः शिष्टास्तावकानां नराधिप।
इति प्रस्थानकाले मां कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्॥ ४८॥

मैंने भी जो कुछ आँखों देखा था, वह सब कुछ उसे इस प्रकार बताया—'नरेश्वर! तुम्हारे सारे भाई मार डाले गये और समस्त सेनाका भी संहार हो गया। रणभूमिसे प्रस्थान करते समय व्यासजीने मुझसे कहा था कि 'तुम्हारे पक्षमें तीन ही महारथी बच गये हैं'॥ ४७-४८॥

स दीर्घमिव निःश्वस्य प्रत्यवेक्ष्य पुनः पुनः।
असौ मां पाणिना स्पृष्ट्वा पुत्रस्ते पर्यभाषत॥ ४९॥
त्वदन्यो नेह संग्रामे कश्चिज्जीवति संजय।
द्वितीयं नेह पश्यामि ससहायाश्च पाण्डवाः॥ ५०॥

यह सुनकर आपके पुत्रने लंबी साँस खींचकर बारंबार मेरी ओर देखा और हाथसे मेरा स्पर्श करके इस प्रकार कहा—'संजय! इस संग्राममें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मेरा आत्मीय जन सम्भवतः जीवित नहीं है; क्योंकि मैं यहाँ दूसरे किसी स्वजनको देख नहीं रहा हूँ। उधर पाण्डव अपने सहायकोंसे सम्पन्न हैं॥ ४९-५०॥

ब्रूयाः संजय राजानं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम्।
दुर्योधनस्तव सुतः प्रविष्टो ह्रदमित्युत॥ ५१॥
सुहृद्भिस्तादृशैर्हीनः पुत्रैर्भ्रातृभिरेव च।
पाण्डवैश्च हृते राज्ये को नु जीवेत मादृशः॥ ५२॥
आचक्षीथाः सर्वमिदं मां च मुक्तं महाहवात्।
अस्मिंस्तोयह्रदे गुप्तं जीवन्तं भृशविक्षतम्॥ ५३॥

'संजय! तुम प्रज्ञाचक्षु ऐश्वर्यशाली महाराजसे कहना कि 'आपका पुत्र दुर्योधन वैसे पराक्रमी सुहृदों, पुत्रों और भ्राताओंसे हीन होकर सरोवरमें प्रवेश

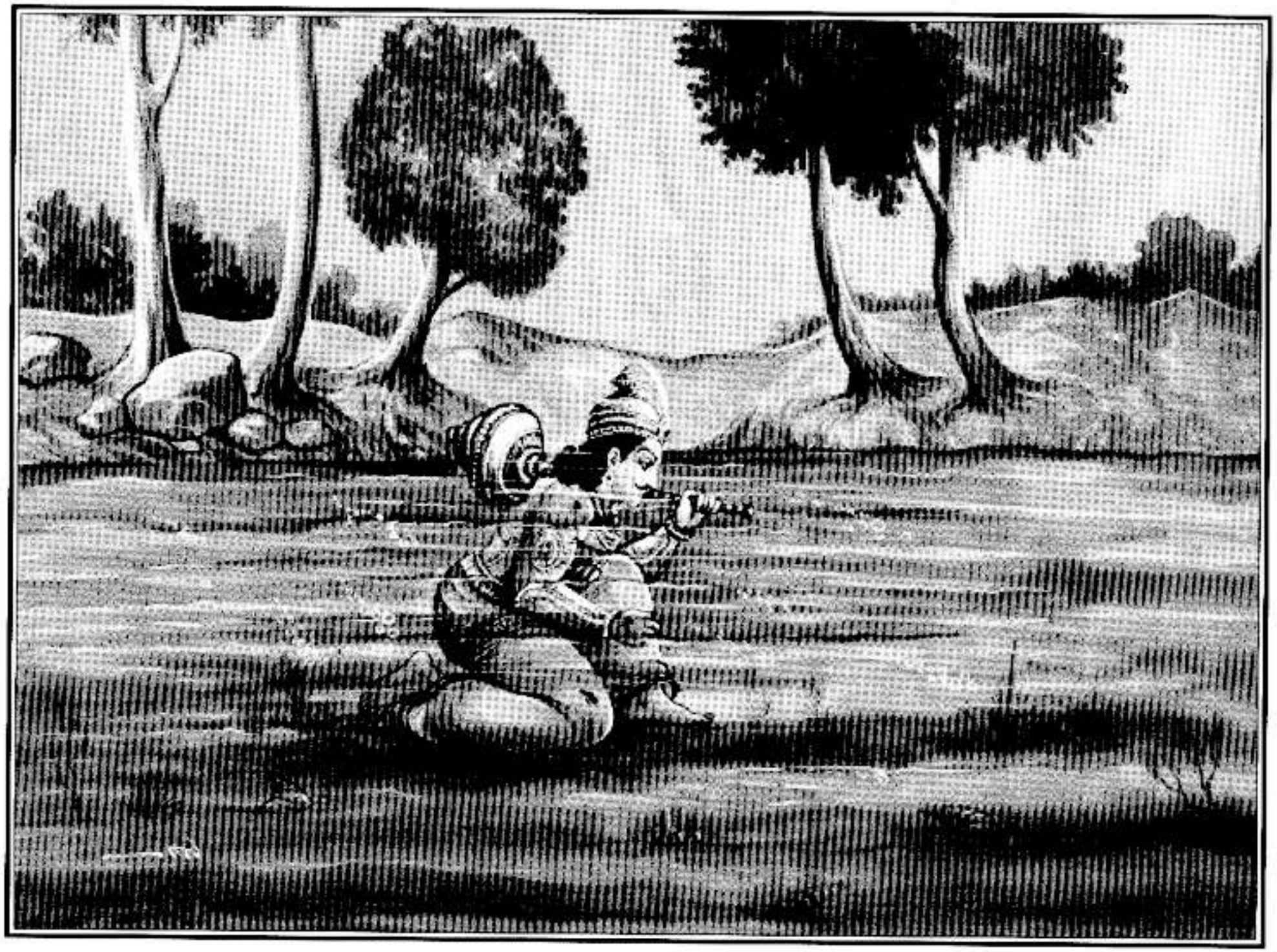

विश्रामके लिये सरोवरमें छिपे हुए दुर्योधन

कर गया है। जब पाण्डवोंने मेरा राज्य हर लिया, तब इस दयनीय दशामें मेरे-जैसा कौन पुरुष जीवन धारण कर सकता है?' संजय! तुम ये सारी बातें कहना और यह भी बताना कि 'दुर्योधन उस महासंग्रामसे जीवित बचकर पानीसे भरे हुए इस सरोवरमें छिपा है और उसका सारा शरीर अत्यन्त घायल हो गया है'॥ ५१—५३॥

एवमुक्त्वा महाराज प्राविशत् तं महाह्रदम्।
अस्तम्भयत तोयं च मायया मनुजाधिपः॥ ५४॥

महाराज! ऐसा कहकर राजा दुर्योधनने उस महान् सरोवरमें प्रवेश किया और मायासे उसका पानी बाँध दिया॥ ५४॥

तस्मिन् ह्रदं प्रविष्टे तु त्रीन् रथान् श्रान्तवाहनान्।
अपश्यं सहितानेकस्तं देशं समुपेयुषः॥ ५५॥

जब दुर्योधन सरोवरमें समा गया, उसके बाद अकेले खड़े हुए मैंने अपने पक्षके तीन महारथियोंको वहाँ उपस्थित देखा, जो एक साथ उस स्थानपर आ पहुँचे थे। उन तीनोंके घोड़े थक गये थे॥ ५५॥

कृपं शारद्वतं वीरं द्रौणिं च रथिनां वरम्।
भोजं च कृतवर्माणं सहितान् शरविक्षतान्॥ ५६॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—शरद्वान्के पुत्र वीर कृपाचार्य, रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणकुमार अश्वत्थामा तथा भोजवंशी कृतवर्मा। ये सब लोग एक साथ थे और बाणोंसे क्षत-विक्षत हो रहे थे॥ ५६॥

ते सर्वे मामभिप्रेक्ष्य तूर्णमश्वाननोदयन्।
उपायाय तु मामूचुर्दिष्ट्या जीवसि संजय॥ ५७॥

मुझे देखते ही उन तीनोंने शीघ्रतापूर्वक अपने घोड़े बढ़ाये और निकट आकर मुझसे कहा—'संजय! सौभाग्यकी बात है कि तुम जीवित हो'॥ ५७॥

अपृच्छंश्चैव मां सर्वे पुत्रं तव जनाधिपम्।
कच्चिद् दुर्योधनो राजा स नो जीवति संजय॥ ५८॥

फिर उन सबने आपके पुत्र राजा दुर्योधनका समाचार पूछा—'संजय! क्या हमारे राजा दुर्योधन जीवित हैं?'॥ ५८॥

आख्यातवानहं तेभ्यस्तदा कुशलिनं नृपम्।
तच्चैव सर्वमाचक्षं यन्मां दुर्योधनोऽब्रवीत्॥ ५९॥
ह्रदं चैवाहमाचक्षं यं प्रविष्टो नराधिपः।

तब मैंने उन लोगोंसे दुर्योधनका कुशल-समाचार बताया तथा दुर्योधनने मुझे जो संदेश दिया था, वह भी सब उनसे कह सुनाया और जिस सरोवरमें वह घुसा था, उसका भी पता बता दिया॥ ५९½॥

अश्वत्थामा तु तद् राजन् निशम्य वचनं मम॥ ६०॥
तं ह्रदं विपुलं प्रेक्ष्य करुणं पर्यदेवयत्।
अहोधिक् स न जानाति जीवतोऽस्मान् नराधिपः॥ ६१॥
पर्याप्ता हि वयं तेन सह योधयितुं परान्।

राजन्! मेरी बात सुनकर अश्वत्थामाने उस विशाल सरोवरकी ओर देखा और करुण विलाप करते हुए कहा—'अहो! धिक्कार है, राजा दुर्योधन नहीं जानते हैं कि हम सब जीवित हैं। उनके साथ रहकर हमलोग शत्रुओंसे जूझनेके लिये पर्याप्त हैं'॥ ६०-६१½॥

ते तु तत्र चिरं कालं विलप्य च महारथाः॥ ६२॥
प्राद्रवन् रथिनां श्रेष्ठा दृष्ट्वा पाण्डुसुतान् रणे।

तत्पश्चात् वे महारथी दीर्घकालतक वहाँ विलाप करते रहे। फिर रणभूमिमें पाण्डवोंको आते देख वे रथियोंमें श्रेष्ठ तीनों वीर वहाँसे भाग निकले॥ ६२½॥

ते तु मां रथमारोप्य कृपस्य सुपरिष्कृतम्॥ ६३॥
सेनानिवेशमाजग्मुर्हतशेषास्त्रयो रथाः।
तत्र गुल्माः परित्रस्ताः सूर्ये चास्तमिते सति॥ ६४॥
सर्वे विचुक्रुशुः श्रुत्वा पुत्राणां तव संक्षयम्।

मरनेसे बचे हुए वे तीनों रथी मुझे भी कृपाचार्यके सुसज्जित रथपर बिठाकर छावनीतक ले आये। सूर्य अस्ताचलपर जा चुके थे। वहाँ छावनीके पहरेदार भयसे घबराये हुए थे। आपके पुत्रोंके विनाशका समाचार सुनकर वे सभी फूट-फूटकर रोने लगे॥ ६३-६४½॥

ततो वृद्धा महाराज योषितां रक्षिणो नराः॥ ६५॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति।

महाराज! तदनन्तर स्त्रियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए वृद्ध पुरुषोंने राजकुलकी महिलाओंको साथ लेकर नगरकी ओर प्रस्थान करनेकी तैयारी की॥ ६५½॥

तत्र विक्रोशमानानां रुदतीनां च सर्वशः॥ ६६॥
प्रादुरासीन्महान् शब्दः श्रुत्वा तद् बलसंक्षयम्।
ततस्ता योषितो राजन् क्रन्दन्त्यो वै मुहुर्मुहुः॥ ६७॥
कुरर्य इव शब्देन नादयन्त्यो महीतलम्।

उस समय वहाँ अपने पतियोंको पुकारती और रोती-बिलखती हुई राजमहिलाओंका महान् आर्तनाद सब ओर गूँज उठा। राजन्! अपनी सेना और पतियोंके संहारका समाचार सुनकर वे राजकुलकी युवतियाँ अपने आर्तनादसे भूतलको प्रतिध्वनित करती हुई बारंबार कुररीकी भाँति विलाप करने लगीं॥ ६६-६७½॥

आजघ्नुः करजैश्चापि पाणिभिश्च शिरांस्युत॥ ६८॥
लुलुचुश्च तदा केशान् क्रोशन्त्यस्तत्र तत्र ह।
हाहाकारविनादिन्यो विनिघ्नन्त्य उरांसि च॥ ६९॥
शोचन्त्यस्तत्र रुरुदुः क्रन्दमाना विशाम्पते।

वे जहाँ-तहाँ हाहाकार करती हुई अपने ऊपर नखोंसे आघात करने, हाथोंसे सिर और छाती पीटने तथा केश नोचने लगीं। प्रजानाथ! शोकमें डूबकर पतिको पुकारती हुई वे रानियाँ करुण स्वरसे क्रन्दन करने लगीं॥

ततो दुर्योधनामात्याः साश्रुकण्ठा भृशातुराः॥ ७०॥
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति।

इससे दुर्योधनके मन्त्रियोंका गला भर आया और वे अत्यन्त व्याकुल हो राजमहिलाओंको साथ ले नगरकी ओर चल दिये॥ ७०½॥

वेत्रव्यासक्तहस्ताश्च द्वाराध्यक्षा विशाम्पते॥ ७१॥
शयनीयानि शुभ्राणि स्पर्ध्यास्तरणवन्ति च।
समादाय ययुस्तूर्णं नगरं दाररक्षिणः॥ ७२॥

प्रजानाथ! उनके साथ हाथोंमें बेंतकी छड़ी लिये द्वारपाल भी चल रहे थे। रानियोंकी रक्षामें नियुक्त हुए सेवक शुभ्र एवं बहुमूल्य बिछौने लेकर शीघ्रतापूर्वक नगरकी ओर चलने लगे॥ ७१-७२॥

आस्थायाश्वतरीयुक्तान् स्यन्दनानपरे पुनः।
स्वान् स्वान् दारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति॥ ७३॥

अन्य बहुत-से राजकीय पुरुष खच्चरियोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ़ हो अपनी-अपनी रक्षामें स्थित स्त्रियोंको लेकर नगरकी ओर यात्रा करने लगे॥ ७३॥

अदृष्टपूर्वा या नार्यो भास्करेणापि वेश्मसु।
ददृशुस्ता महाराज जना याताः पुरं प्रति॥ ७४॥

महाराज! जिन राजमहिलाओंको महलोंमें रहते समय पहले सूर्यदेवने भी नहीं देखा होगा, उन्हें ही नगरकी ओर जाते हुए साधारण लोग भी देख रहे थे॥ ७४॥

ताः स्त्रियो भरतश्रेष्ठ सौकुमार्यसमन्विताः।
प्रययुर्नगरं तूर्णं हतस्वजनबान्धवाः॥ ७५॥

भरतश्रेष्ठ! जिनके स्वजन और बान्धव मारे गये थे, वे सुकुमारी स्त्रियाँ तीव्र गतिसे नगरकी ओर जा रही थीं॥

आगोपालाविपालेभ्यो द्रवन्तो नगरं प्रति।
ययुर्मनुष्याः सम्भ्रान्ता भीमसेनभयार्दिताः॥ ७६॥

उस समय भीमसेनके भयसे पीड़ित हो सभी मनुष्य गायों और भेड़ोंके चरवाहेतक घबराकर नगरकी ओर भाग रहे थे॥ ७६॥

अपि चैषां भयं तीव्रं पार्थेभ्योऽभूत् सुदारुणम्।
प्रेक्षमाणास्तदान्योन्यमाधावन्नगरं प्रति॥ ७७॥

उन्हें कुन्तीके पुत्रोंसे दारुण एवं तीव्र भय प्राप्त हुआ था। वे एक-दूसरेकी ओर देखते हुए नगरकी ओर भागने लगे॥ ७७॥

तस्मिंस्तथा वर्तमाने विद्रवे भृशदारुणे।
युयुत्सुः शोकसम्मूढः प्राप्तकालमचिन्तयत्॥ ७८॥

जब इस प्रकार अति भयंकर भगदड़ मची हुई थी, उस समय युयुत्सु शोकसे मूर्च्छित हो मन-ही-मन समयोचित कर्तव्यका विचार करने लगा—॥ ७८॥

जितो दुर्योधनः संख्ये पाण्डवैर्भीमविक्रमैः।
एकादशचमूभर्ता भ्रातरश्चास्य सूदिताः॥ ७९॥

'भयंकर पराक्रमी पाण्डवोंने ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके स्वामी राजा दुर्योधनको युद्धमें परास्त कर दिया और उसके भाइयोंको भी मार डाला॥ ७९॥

हताश्च कुरवः सर्वे भीष्मद्रोणपुरःसराः।
अहमेको विमुक्तस्तु भाग्ययोगाद् यदृच्छया॥ ८०॥

'भीष्म और द्रोणाचार्य जिनके अगुआ थे, वे समस्त कौरव मारे गये। अकस्मात् भाग्य-योगसे अकेला मैं ही बच गया हूँ॥ ८०॥

विद्रुतानि च सर्वाणि शिबिराणि समन्ततः।
इतस्ततः पलायन्ते हतनाथा हतौजसः॥ ८१॥

'सारे शिविरके लोग सब ओर भाग गये। स्वामीके मारे जानेसे हतोत्साह होकर सभी सेवक इधर-उधर पलायन कर रहे हैं॥ ८१॥

अदृष्टपूर्वा दुःखार्ता भयव्याकुललोचनाः।
हरिणा इव वित्रस्ता वीक्षमाणा दिशो दश॥ ८२॥
दुर्योधनस्य सचिवा ये केचिदवशेषिताः।
राजदारानुपादाय प्रययुर्नगरं प्रति॥ ८३॥

'उन सबकी ऐसी अवस्था हो गयी है, जैसी पहले कभी नहीं देखी गयी। सभी दुःखसे आतुर हैं और सबके नेत्र भयसे व्याकुल हो उठे हैं। सभी लोग भयभीत मृगोंके समान दसों दिशाओंकी ओर देख रहे हैं। दुर्योधनके मन्त्रियोंमेंसे जो कोई बच गये हैं, वे राजमहिलाओंको साथ लेकर नगरकी ओर जा रहे हैं॥

प्राप्तकालमहं मन्ये प्रवेशं तैः सह प्रभुम्।
युधिष्ठिरमनुज्ञाय वासुदेवं तथैव च॥ ८४॥

'मैं राजा युधिष्ठिर और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर उन मन्त्रियोंके साथ ही नगरमें प्रवेश करूँ, यही मुझे समयोचित कर्तव्य जान पड़ता है'॥ ८४॥

एतमर्थं महाबाहुरुभयोः स न्यवेदयत्।
तस्य प्रीतोऽभवद् राजा नित्यं करुणवेदिता॥ ८५॥
परिष्वज्य महाबाहुर्वैश्यापुत्रं व्यसर्जयत्।

ऐसा सोचकर महाबाहु युयुत्सुने उन दोनोंके सामने अपना विचार प्रकट किया। उसकी बात सुनकर निरन्तर करुणाका अनुभव करनेवाले महाबाहु राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने वैश्यकुमारीके पुत्र युयुत्सुको छातीसे लगाकर बिदा कर दिया॥ ८५½॥

ततः स रथमास्थाय द्रुतमश्वानचोदयत्॥ ८६॥
संवाहयितवांश्चापि राजदारान् पुरं प्रति।

तत्पश्चात् उसने रथपर बैठाकर तुरंत ही अपने घोड़े बढ़ाये और राजकुलकी स्त्रियोंको राजधानीमें पहुँचा दिया॥ ८६½॥

तैश्चैव सहितः क्षिप्रमस्तं गच्छति भास्करे॥ ८७॥
प्रविष्टो हास्तिनपुरं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः।

सूर्यके अस्त होते-होते नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए उसने उन सबके साथ हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। उस समय उसका गला भर आया था॥ ८७½॥

अपश्यत महाप्राज्ञं विदुरं साश्रुलोचनम्॥ ८८॥
राज्ञः समीपान्निष्क्रान्तं शोकोपहतचेतसम्।

राजन्! वहाँ उसने आपके पाससे निकले हुए महाज्ञानी विदुरजीका दर्शन किया, जिनके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे और मन शोकमें डूबा हुआ था॥ ८८½॥

तमब्रवीत् सत्यधृतिः प्रणतं त्वग्रतः स्थितम्॥ ८९॥
दिष्ट्या कुरुक्षये वृत्ते अस्मिंस्त्वं पुत्र जीवसि।
विना राज्ञः प्रवेशाद् वै किमसि त्वमिहागतः॥ ९०॥
एतद् वै कारणं सर्वं विस्तरेण निवेदय।

सत्यपरायण विदुरने प्रणाम करके सामने खड़े हुए युयुत्सुसे कहा-'बेटा! बड़े सौभाग्यकी बात है कि कौरवोंके इस विकट संहारमें भी तुम जीवित बच गये हो; परंतु राजा युधिष्ठिरके हस्तिनापुरमें प्रवेश करनेसे पहले ही तुम यहाँ कैसे चले आये? यह सारा कारण मुझे विस्तारपूर्वक बताओ'॥ ८९-९०½॥

युयुत्सुरुवाच

निहते शकुनौ तत्र सज्ञातिसुतबान्धवे॥ ९१॥
हतशेषपरीवारो राजा दुर्योधनस्ततः।
स्वकं स हयमुत्सृज्य प्राङ्मुखः प्राद्रवद् भयात्॥ ९२॥

युयुत्सुने कहा—चाचाजी! जाति, भाई और पुत्रसहित शकुनिके मारे जानेपर जिसके शेष परिवार नष्ट हो गये थे, वह राजा दुर्योधन अपने घोड़ेको युद्धभूमिमें ही छोड़कर भयके मारे पूर्व दिशाकी ओर भाग गया॥ ९१-९२॥

अपक्रान्ते तु नृपतौ स्कन्धावारनिवेशनात्।
भयव्याकुलितं सर्वं प्राद्रवन्नगरं प्रति॥ ९३॥

राजाके छावनीसे दूर भाग जानेपर सब लोग भयसे व्याकुल हो राजधानीकी ओर भाग चले॥ ९३॥

ततो राज्ञः कलत्राणि भ्रातॄणां चास्य सर्वतः।
वाहनेषु समारोप्य अध्यक्षाः प्राद्रवन् भयात्॥ ९४॥

तब राजा तथा उनके भाइयोंकी पत्नियोंको सब ओरसे सवारियोंपर बिठाकर अन्तःपुरके अध्यक्ष भी भयके मारे भाग खड़े हुए॥ ९४॥

ततोऽहं समनुज्ञाप्य राजानं सहकेशवम्।
प्रविष्टो हास्तिनपुरं रक्षल्ँलोकान् प्रधावितान्॥ ९५॥

तदनन्तर मैं भगवान् श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिरकी आज्ञा लेकर भागे हुए लोगोंकी रक्षाके लिये हस्तिनापुरमें चला आया हूँ॥ ९५॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं वैश्यापुत्रेण भाषितम्।
प्राप्तकालमिति ज्ञात्वा विदुरः सर्वधर्मवित्॥ ९६॥
अपूजयदमेयात्मा युयुत्सुं वाक्यमब्रवीत्।
प्राप्तकालमिदं सर्वं ब्रुवता भरतक्षये॥ ९७॥
रक्षितः कुलधर्मश्च सानुक्रोशतया त्वया।

वैश्यापुत्र युयुत्सुकी कही हुई यह बात सुनकर और इसे समयोचित जानकर सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा अमेय आत्मबलसे सम्पन्न विदुरजीने युयुत्सुकी भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं इस प्रकार कहा—'भरतवंशियोंके इस विनाशके समय जो यह समयोचित कर्तव्य प्राप्त था, वह सब बताकर अपनी दयालुताके कारण तुमने कुल-धर्मकी रक्षा की है॥ ९६-९७½॥

दिष्ट्या त्वामिह संग्रामादस्माद् वीरक्षयात् पुरम्॥ ९८॥
समागतमपश्याम ह्यंशुमन्तमिव प्रजाः।

'वीरोंका विनाश करनेवाले इस संग्रामसे बचकर तुम कुशलपूर्वक नगरमें लौट आये—इस अवस्थामें हमने तुम्हें उसी प्रकार देखा है, जैसे रात्रिके अन्तमें प्रजा भगवान् भास्करका दर्शन करती है॥ ९८½॥

अन्धस्य नृपतेर्यष्टिर्लुब्धस्यादीर्घदर्शिनः॥ ९९॥
बहुशो याच्यमानस्य दैवोपहतचेतसः।
त्वमेको व्यसनार्तस्य ध्रियसे पुत्र सर्वथा॥ १००॥

'लोभी, अदूरदर्शी और अन्धे राजाके लिये तुम लाठीके सहारे हो। मैंने उनसे युद्ध रोकनेके लिये बारंबार याचना की थी, परंतु दैवसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी। आज वे संकटसे पीड़ित हैं, बेटा! इस अवस्थामें एकमात्र तुम्हीं उन्हें सहारा देनेके लिये जीवित हो॥ ९९-१००॥

अद्य त्वमिह विश्रान्तः श्वोऽभिगन्ता युधिष्ठिरम्।
एतावदुक्त्वा वचनं विदुरः साश्रुलोचनः॥ १०१॥

युयुत्सुं समनुप्राप्य प्रविवेश नृपक्षयम्।
पौरजानपदैर्दुःखाद्धाहेति भृशनादितम्॥ १०२॥

'आज यहीं विश्राम करो। कल सबेरे युधिष्ठिरके पास चले जाना' ऐसा कहकर नेत्रोंमें आँसू भरे विदुरजीने युयुत्सुको साथ लेकर राजमहलमें प्रवेश किया। वह भवन नगर और जनपदके लोगोंद्वारा दुःखपूर्वक किये जानेवाले हाहाकार एवं भयंकर आर्तनादसे गूँज उठा था॥ १०२॥

निरानन्दं गतश्रीकं हताराममिवाशयम्।
शून्यरूपमपध्वस्तं दुःखाद् दुःखतरोऽभवत्॥ १०३॥

वहाँ न तो आनन्द था और न वैभवजनित शोभा ही दृष्टिगोचर होती थी। वह राजभवन उस जलाशयके समान जनशून्य और विध्वस्त-सा जान पड़ता था, जिसके तटका उद्यान नष्ट हो गया हो। वहाँ पहुँचकर विदुरजी दुःखसे अत्यन्त खिन्न हो गये॥ १०३॥

विदुरः सर्वधर्मज्ञो विक्लवेनान्तरात्मना।
विवेश नगरे राजन् निःश्वास शनैः शनैः॥ १०४॥

राजन्! सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता विदुरजीने व्याकुल अन्तःकरणसे नगरमें प्रवेश किया और धीरे-धीरे वे लंबी साँस खींचने लगे॥ १०४॥

युयुत्सुरपि तां रात्रिं स्वगृहे न्यवसत् तदा।
वन्द्यमानः स्वकैश्चापि नाभ्यनन्दत् सुदुःखितः।
चिन्तयानः क्षयं तीव्रं भरतानां परस्परम्॥ १०५॥

युयुत्सु भी उस रातमें अपने घरपर ही रहे। उनके मनमें अत्यन्त दुःख था, इसलिये वे स्वजनोंद्वारा वन्दित होनेपर भी प्रसन्न नहीं हुए। इस पारस्परिक युद्धसे भरतवंशियोंका जो घोर संहार हुआ था, उसीकी चिन्तामें वे निमग्न हो गये थे॥ १०५॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि ह्रदप्रवेशपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत ह्रदप्रवेशपर्वमें उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ८ श्लोक मिलाकर कुल ११३ श्लोक हैं।)

(गदापर्व)

त्रिंशोऽध्यायः

अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्यका सरोवरपर जाकर दुर्योधनसे युद्ध करनेके विषयमें बातचीत करना, व्याधोंसे दुर्योधनका पता पाकर युधिष्ठिरका सेनासहित सरोवरपर जाना और कृपाचार्य आदिका दूर हट जाना

धृतराष्ट्र उवाच

हतेषु सर्वसैन्येषु पाण्डुपुत्रै रणाजिरे।
मम सैन्यावशिष्टास्ते किमकुर्वत संजय॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! जब पाण्डुके पुत्रोंने समरांगणमें समस्त सेनाओंका संहार कर डाला, तब मेरी सेनाके शेष वीरोंने क्या किया?॥ १॥

कृतवर्मा कृपश्चैव द्रोणपुत्रश्च वीर्यवान्।
दुर्योधनश्च मन्दात्मा राजा किमकरोत् तदा॥ २॥

कृतवर्मा, कृपाचार्य, पराक्रमी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तथा मन्दबुद्धि राजा दुर्योधनने उस समय क्या किया?॥

संजय उवाच

सम्प्राद्रवत्सु दारेषु क्षत्रियाणां महात्मनाम्।
विद्रुते शिबिरे शून्ये भृशोद्विग्नास्त्रयो रथाः॥ ३॥

संजयने कहा—राजन्! जब महामनस्वी क्षत्रिय राजाओंकी पत्नियाँ भाग चलीं और सब लोगोंके पलायन करनेसे सारा शिविर सूना हो गया, उस समय पूर्वोक्त तीनों रथी अत्यन्त उद्विग्न हो गये॥ ३॥

निशम्य पाण्डुपुत्राणां तदा वै जयिनां स्वनम्।
विद्रुतं शिबिरं दृष्ट्वा सायाह्ने राजगृद्धिनः॥ ४॥
स्थानं नारोचयंस्तत्र ततस्ते ह्रदमभ्ययुः।

सायंकालमें विजयी पाण्डवोंकी गर्जना सुनकर और अपने सारे शिविरके लोगोंको भागा हुआ देखकर राजा दुर्योधनको चाहनेवाले उन तीनों महारथियोंको वहाँ ठहरना अच्छा न लगा; इसलिये वे उसी सरोवरके तटपर गये॥ ४½॥

युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितो रणे॥ ५॥
हृष्टः पर्यचरद् राजन् दुर्योधनवधेप्सया।

राजन्! इधर धर्मात्मा युधिष्ठिर भी रणभूमिमें दुर्योधनके वधकी इच्छासे बड़े हर्षके साथ भाइयोंसहित विचर रहे थे॥ ५½॥

मार्गमाणास्तु संक्रुद्धास्तव पुत्रं जयैषिणः॥ ६॥
यत्नतोऽन्वेषमाणास्ते नैवापश्यञ्जनाधिपम्।

विजयके अभिलाषी पाण्डव अत्यन्त कुपित होकर आपके पुत्रका पता लगाने लगे; परंतु यत्नपूर्वक खोज करनेपर भी उन्हें राजा दुर्योधन कहीं दिखायी नहीं दिया॥

स हि तीव्रेण वेगेन गदापाणिरपाक्रमत्॥ ७॥
तं ह्रदं प्राविशच्चापि विष्टभ्यापः स्वमायया।

वह हाथमें गदा लेकर तीव्र वेगसे भागा और अपनी मायासे जलको स्तम्भित करके उस सरोवरके भीतर जा घुसा॥ ७½॥

यदा तु पाण्डवाः सर्वे सुपरिश्रान्तवाहनाः॥ ८॥
ततः स्वशिबिरं प्राप्य व्यतिष्ठन्त ससैनिकाः।

दुर्योधनकी खोज करते-करते जब पाण्डवोंके वाहन बहुत थक गये, तब सभी पाण्डव सैनिकोंसहित अपने शिविरमें आकर ठहर गये॥ ८½॥

ततः कृपश्च द्रौणिश्च कृतवर्मा च सात्वतः॥ ९॥
संनिविष्टेषु पार्थेषु प्रयातास्तं ह्रदं शनैः।

तदनन्तर जब कुन्तीके सभी पुत्र शिविरमें विश्राम करने लगे, तब कृपाचार्य, अश्वत्थामा और सात्वतवंशी कृतवर्मा धीरे-धीरे उस सरोवरके तटपर जा पहुँचे॥ ९½॥

ते तं ह्रदं समासाद्य यत्र शेते जनाधिपः॥ १०॥
अभ्यभाषन्त दुर्धर्षं राजानं सुप्तमम्भसि।
राजन्नुत्तिष्ठ युद्ध्यस्व सहास्माभिर्युधिष्ठिरम्॥ ११॥
जित्वा वा पृथिवीं भुङ्क्ष्व हतो वा स्वर्गमाप्नुहि।

जिसमें राजा दुर्योधन सो रहा था, उस सरोवरके समीप पहुँचकर, वे जलमें सोये हुए उस दुर्धर्ष नरेशसे इस प्रकार बोले—'राजन्! उठो और हमारे साथ चलकर युधिष्ठिरसे युद्ध करो। विजयी होकर पृथ्वीका राज्य भोगो अथवा मारे जाकर स्वर्गलोक प्राप्त करो॥ १०-११½॥

तेषामपि बलं सर्वं हतं दुर्योधन त्वया॥ १२॥
प्रतिविद्धाश्च भूयिष्ठं ये शिष्टास्तत्र सैनिकाः।
न ते वेगं विषहितुं शक्तास्तव विशाम्पते॥ १३॥
अस्माभिरपि गुप्तस्य तस्मादुत्तिष्ठ भारत।

'प्रजानाथ दुर्योधन! भरतनन्दन! तुमने भी तो पाण्डवोंकी सारी सेनाका संहार कर डाला है। वहाँ जो सैनिक शेष रह गये हैं, वे भी बहुत घायल हो चुके हैं; अतः जब तुम हमारेद्वारा सुरक्षित होकर उनपर आक्रमण करोगे तो वे तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे; इसलिये तुम युद्धके लिये उठो'॥ १२-१३½॥

दुर्योधन उवाच

दिष्ट्या पश्यामि वो मुक्तानीदृशात् पुरुषक्षयात्॥ १४॥
पाण्डुकौरवसम्मर्दाज्जीवमानान् नरर्षभान्।

दुर्योधन बोला—मैं ऐसे जनसंहारकारी पाण्डव-कौरव-संग्रामसे आप सभी नरश्रेष्ठ वीरोंको जीवित बचा हुआ देख रहा हूँ, यह बड़े सौभाग्यकी बात है॥

विजेष्यामो वयं सर्वे विश्रान्ता विगतक्लमाः॥ १५॥
भवन्तश्च परिश्रान्ता वयं च भृशविक्षताः।
उदीर्णं च बलं तेषां तेन युद्धं न रोचये॥ १६॥

हम सब लोग विश्राम करके अपनी थकावट दूर कर लें तो अवश्य विजयी होंगे। आप लोग भी बहुत थके हुए हैं और हम भी अत्यन्त घायल हो चुके हैं। उधर पाण्डवोंका बल बढ़ा हुआ है; इसलिये इस समय मेरी युद्ध करनेकी रुचि नहीं हो रही है॥ १५-१६॥

न त्वेतदद्भुतं वीरा यद् वो महदिदं मनः।
अस्मासु च परा भक्तिर्न तु कालः पराक्रमे॥ १७॥

वीरो! आपके मनमें जो युद्धके लिये महान् उत्साह बना हुआ है, यह कोई अद्भुत बात नहीं है। आपलोगोंका मुझपर महान् प्रेम भी है, तथापि यह पराक्रम प्रकट करनेका समय नहीं है॥ १७॥

विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे।
प्रतियोत्स्याम्यहं शत्रून् श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः॥ १८॥

आज एक रात विश्राम करके कल सबेरे रणभूमिमें आप लोगोंके साथ रहकर मैं शत्रुओंके साथ युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ १८॥

संजय उवाच

एवमुक्तोऽब्रवीद् द्रौणी राजानं युद्धदुर्मदम्।
उत्तिष्ठ राजन् भद्रं ते विजेष्यामो वयं परान्॥ १९॥

संजय कहते हैं—राजन्! दुर्योधनके ऐसा कहनेपर द्रोणकुमारने उस रणदुर्मद राजासे इस प्रकार कहा—'महाराज! उठो, तुम्हारा कल्याण हो। हम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे॥ १९॥

इष्टापूर्तेन दानेन सत्येन च जपेन च।
शपे राजन् यथा ह्यद्य निहनिष्यामि सोमकान्॥ २०॥

'राजन्! मैं अपने इष्टापूर्त कर्म, दान, सत्य और जयकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आज सोमकोंका संहार कर डालूँगा॥ २०॥

मा स्म यज्ञकृतां प्रीतिमाप्नुयां सज्जनोचिताम्।
यदीमां रजनीं व्युष्टां न हि हन्मि परान् रणे॥ २१॥

'यदि यह रात बीतते ही प्रातःकाल रणभूमिमें शत्रुओंको न मार डालूँ तो मुझे सज्जन पुरुषोंके योग्य और यज्ञकर्ताओंको प्राप्त होनेवाली प्रसन्नता न प्राप्त हो॥

नाहत्वा सर्वपञ्चालान् विमोक्ष्ये कवचं विभो।
इति सत्यं ब्रवीम्येतत्तन्मे शृणु जनाधिप॥ २२॥

'प्रभो! नरेश्वर! मैं समस्त पांचालोंका संहार किये

बिना अपना कवच नहीं उतारूँगा, यह तुमसे सच्ची बात कहता हूँ। मेरे इस कथनको तुम ध्यानसे सुनो'॥ २२॥

तेषु सम्भाषमाणेषु व्याधास्तं देशमाययुः।
मांसभारपरिश्रान्ताः पानीयार्थं यदृच्छया॥ २३॥

वे इस प्रकार बात कर ही रहे थे कि मांसके भारसे थके हुए बहुत-से व्याध उस स्थानपर पानी पीनेके लिये अकस्मात् आ पहुँचे॥ २३॥

ते तत्र धिष्ठितास्तेषां सर्वं तद् वचनं रहः।
दुर्योधनवचश्चैव शुश्रुवुः संगता मिथः॥ २४॥

उन्होंने वहाँ खड़े होकर उनकी एकान्तमें होनेवाली सारी बातें सुन लीं। परस्पर मिले हुए उन व्याधोंने दुर्योधनकी भी बात सुनी॥ २४॥

तेऽपि सर्वे महेष्वासा अयुद्धार्थिनि कौरवे।
निर्बन्धं परमं चक्रुस्तदा वै युद्धकाङ्क्षिणः॥ २५॥

कुरुराज दुर्योधन युद्ध नहीं चाहता था तो भी युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले वे सभी महाधनुर्धर योद्धा उससे युद्ध छेड़नेके लिये बड़ा आग्रह कर रहे थे॥ २५॥

तांस्तथा समुदीक्ष्याथ कौरवाणां महारथान्।
अयुद्धमनसं चैव राजानं स्थितमम्भसि॥ २६॥
तेषां श्रुत्वा च संवादं राज्ञश्च सलिले सतः।
व्याधाभ्यजानन् राजेन्द्र सलिलस्थं सुयोधनम्॥ २७॥

राजन्! उन कौरवमहारथियोंकी वैसी मनोवृत्ति जानकर जलमें ठहरे हुए राजा दुर्योधनके मनमें युद्धका उत्साह न देखकर और सलिलनिवासी नरेशके साथ उन तीनोंका संवाद सुनकर व्याध यह समझ गये कि 'दुर्योधन इसी सरोवरके जलमें छिपा हुआ है'॥ २६-२७॥

ते पूर्वं पाण्डुपुत्रेण पृष्टा ह्यासन् सुतं तव।
यदृच्छोपगतास्तत्र राजानं परिमार्गता॥ २८॥

पहले राजा दुर्योधनकी खोज करते हुए पाण्डुकुमार युधिष्ठिरने दैववश अपने पास पहुँचे हुए उन व्याधोंसे आपके पुत्रका पता पूछा था॥ २८॥

ततस्ते पाण्डुपुत्रस्य स्मृत्वा तद् भाषितं तदा।
अन्योन्यमब्रुवन् राजन् मृगव्याधाः शनैरिव॥ २९॥

राजन्! उस समय पाण्डुपुत्रकी कही हुई बात याद करके वे व्याध आपसमें धीरे-धीरे बोले—॥ २९॥

दुर्योधनं ख्यापयामो धनं दास्यति पाण्डवः।
सुव्यक्तमिह नः ख्यातो ह्रदे दुर्योधनो नृपः॥ ३०॥

'यदि हम दुर्योधनका पता बता दें तो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर हमें धन देंगे। हमें तो यहाँ यह स्पष्टरूपसे ज्ञात हो गया कि राजा दुर्योधन इसी सरोवरमें छिपा हुआ है॥ ३०॥

तस्माद् गच्छामहे सर्वे यत्र राजा युधिष्ठिरः।
आख्यातुं सलिले सुप्तं दुर्योधनममर्षणम्॥ ३१॥

अतः जलमें सोये हुए अमर्षशील दुर्योधनका पता बतानेके लिये हम सब लोग उस स्थानपर चलें, जहाँ राजा युधिष्ठिर मौजूद हैं॥ ३१॥

धृतराष्ट्रात्मजं तस्मै भीमसेनाय धीमते।
शयानं सलिले सर्वे कथयामो धनुर्भृते॥ ३२॥

'बुद्धिमान् धनुर्धर भीमसेनको हम सब यह बता दें कि धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन जलमें सो रहा है॥ ३२॥

स नो दास्यति सुप्रीतो धनानि बहुलान्युत।
किं नो मांसेन शुष्केण परिक्लिष्टेन शोषिणा॥ ३३॥

'इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर वे हमें बहुत धन देंगे। फिर हमें शरीरका रक्त सुखा देनेवाले इस सूखे मांसको ढोकर व्यर्थ कष्ट उठानेकी क्या आवश्यकता है?'॥ ३३॥

एवमुक्त्वा तु ते व्याधाः सम्प्रहृष्टा धनार्थिनः।
मांसभारानुपादाय प्रययुः शिबिरं प्रति॥ ३४॥

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप करके धनकी अभिलाषा रखनेवाले वे व्याध बड़े प्रसन्न हुए और मांसके बोझ उठाकर पाण्डव-शिविरकी ओर चल दिये॥ ३४॥

पाण्डवापि महाराज लब्धलक्ष्याः प्रहारिणः।
अपश्यमानाः समरे दुर्योधनमवस्थितम्॥ ३५॥
निकृतेस्तस्य पापस्य ते पारं गमनेप्सवः।
चारान् सम्प्रेषयामासुः समन्तात् तद्रणाजिरे॥ ३६॥

महाराज! प्रहार करनेमें कुशल पाण्डवोंने अपना लक्ष्य सिद्ध कर लिया था; उन्होंने दुर्योधनको समरांगण-में खड़ा न देख उस पापीके किये हुए छल-कपटका बदला चुकाकर वैरके पार जानेकी इच्छासे उस संग्रामभूमिमें चारों ओर गुप्तचर भेज रखे थे॥ ३५-३६॥

आगम्य तु ततः सर्वे नष्टं दुर्योधनं नृपम्।
न्यवेदयन्त सहिता धर्मराजस्य सैनिकाः॥ ३७॥

धर्मराजके उन सभी गुप्तचर सैनिकोंने एक साथ लौटकर यह निवेदन किया कि 'राजा दुर्योधन लापता हो गया है'॥ ३७॥

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा चाराणां भरतर्षभ।
चिन्तामभ्यगमत् तीव्रां निःशश्वास च पार्थिवः॥ ३८॥

भरतश्रेष्ठ! उन गुप्तचरोंकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर घोर चिन्तामें पड़ गये और लंबी साँस खींचने लगे॥ ३८॥

अथ स्थितानां पाण्डूनां दीनानां भरतर्षभ।
तस्माद् देशादपक्रम्य त्वरिता लुब्धका विभो॥ ३९॥
आजग्मुः शिबिरं हृष्टा दृष्ट्वा दुर्योधनं नृपम्।
वार्यमाणाः प्रविष्टाश्च भीमसेनस्य पश्यतः॥ ४०॥

भरतभूषण! नरेश! तदनन्तर जब पाण्डव खिन्न होकर बैठे हुए थे, उसी समय वे व्याध राजा दुर्योधनको अपनी आँखों देखकर तुरंत ही उस स्थानसे हट गये और बड़े हर्षके साथ पाण्डव-शिविरमें जा पहुँचे। द्वारपालोंके रोकनेपर भी वे भीमसेनके देखते-देखते भीतर घुस गये॥

ते तु पाण्डवमासाद्य भीमसेनं महाबलम्।
तस्मै तत् सर्वमाचख्युर्यद् वृत्तं यच्च वैश्रुतम्॥ ४१॥

महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेनके पास जाकर उन्होंने सरोवरके तटपर जो कुछ हुआ था और जो कुछ सुननेमें आया था, वह सब कह सुनाया॥ ४१॥

ततो वृकोदरो राजन् दत्त्वा तेषां धनं बहु।
धर्मराजाय तत् सर्वमाचचक्षे परंतपः॥ ४२॥

राजन्! तब शत्रुओंको संताप देनेवाले भीमने उन व्याधोंको बहुत धन देकर धर्मराजसे सारा समाचार कहा॥

असौ दुर्योधनो राजन् विज्ञातो मम लुब्धकैः।
संस्तभ्य सलिलं शेते यस्यार्थे परितप्यसे॥ ४३॥

वे बोले—'धर्मराज! मेरे व्याधोंने राजा दुर्योधनका पता लगा लिया है। आप जिसके लिये संतप्त हैं, वह मायासे पानी बाँधकर सरोवरमें सो रहा है'॥ ४३॥

तद् वचो भीमसेनस्य प्रियं श्रुत्वा विशाम्पते।
अजातशत्रुः कौन्तेयो हृष्टोऽभूत् सह सोदरैः॥ ४४॥

प्रजानाथ! भीमसेनका वह प्रिय वचन सुनकर अजातशत्रु कुन्तीकुमार युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए॥ ४४॥

तं च श्रुत्वा महेष्वासं प्रविष्टं सलिलह्रदे।
क्षिप्रमेव ततोऽगच्छन् पुरस्कृत्य जनार्दनम्॥ ४५॥

महाधनुर्धर दुर्योधनको पानीसे भरे सरोवरमें घुसा सुनकर राजा युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णको आगे करके शीघ्र ही वहाँसे चल दिये॥ ४५॥

ततः किलकिलाशब्दः प्रादुरासीद् विशाम्पते।
पाण्डवानां प्रहृष्टानां पञ्चालानां च सर्वशः॥ ४६॥

प्रजानाथ! फिर तो हर्षमें भरे हुए पाण्डव और पांचालोंकी किलकिलाहटका शब्द सब ओर गूँजने लगा॥ ४६॥

सिंहनादांस्ततश्चक्रुः क्ष्वेडाश्च भरतर्षभ।
त्वरिताः क्षत्रिया राजन् जग्मुर्द्वैपायनं ह्रदम्॥ ४७॥

भरतभूषण नरेश! वे सभी क्षत्रिय सिंहनाद एवं गर्जना करने लगे तथा तुरंत ही द्वैपायन नामक सरोवरके पास जा पहुँचे॥ ४७॥

ज्ञातः पापो धार्तराष्ट्रो दृष्टश्चेत्यसकृद्रणे।
प्राक्रोशन् सोमकास्तत्र हृष्टरूपाः समन्ततः॥ ४८॥

हर्षमें भरे हुए सोमकवीर रणभूमिमें सब ओर पुकार-पुकारकर कहने लगे 'धृतराष्ट्रके पापी पुत्रका पता लग गया और उसे देख लिया गया'॥ ४८॥

तेषामाशु प्रयातानां रथानां तत्र वेगिनाम्।
बभूव तुमुलः शब्दो दिविस्पृक् पृथिवीपते॥ ४९॥

पृथ्वीनाथ! वहाँ शीघ्रतापूर्वक यात्रा करनेवाले उनके वेगशाली रथोंका घोर घर्घर शब्द आकाशमें व्याप्त हो गया॥ ४९॥

दुर्योधनं परीप्सन्तस्तत्र तत्र युधिष्ठिरम्।
अन्वयुस्त्वरितास्ते वै राजानं श्रान्तवाहनाः॥ ५०॥
अर्जुनो भीमसेनश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यः शिखण्डी चापराजितः॥ ५१॥
उत्तमौजा युधामन्युः सात्यकिश्च महारथः।
पञ्चालानां च ये शिष्टा द्रौपदेयाश्च भारत॥ ५२॥
हयाश्च सर्वे नागाश्च शतशश्च पदातयः।

भारत! उस समय अर्जुन, भीमसेन, माद्रीकुमार पाण्डुपुत्र नकुल-सहदेव, पांचालराजकुमार धृष्टद्युम्न, अपराजित वीर शिखण्डी, उत्तमौजा, युधामन्यु, महारथी सात्यकि, द्रौपदीके पाँचों पुत्र तथा पांचालोंमेंसे जो जीवित बच गये थे, वे वीर दुर्योधनको पकड़नेकी इच्छासे अपने वाहनोंके थके होनेपर भी बड़ी उतावलीके साथ राजा युधिष्ठिरके पीछे-पीछे गये। उनके साथ सभी घुड़सवार, हाथीसवार और सैकड़ों पैदल सैनिक भी थे॥ ५०—५२½॥

ततः प्राप्तो महाराज धर्मराजः प्रतापवान्॥ ५३॥
द्वैपायनं ह्रदं घोरं यत्र दुर्योधनोऽभवत्।

महाराज! तत्पश्चात् प्रतापी धर्मराज युधिष्ठिर उस भयंकर द्वैपायनह्रदके तटपर जा पहुँचे, जिसके भीतर दुर्योधन छिपा हुआ था॥ ५३½॥

शीतामलजलं ह्रद्यं द्वितीयमिव सागरम्॥ ५४॥
मायया सलिलं स्तभ्य यत्राभूत् ते स्थितः सुतः।
अत्यद्भुतेन विधिना दैवयोगेन भारत॥ ५५॥

उसका जल शीतल और निर्मल था। वह देखनेमें मनोरम और दूसरे समुद्रके समान विशाल था। भारत! उसीके भीतर मायाद्वारा जलको स्तम्भित करके दैवयोग एवं अद्भुत विधिसे आपका पुत्र विश्राम कर रहा था॥ ५४-५५॥

सलिलान्तर्गतः शेते दुर्दर्शः कस्यचित् प्रभो।
मानुषस्य मनुष्येन्द्र गदाहस्तो जनाधिपः॥ ५६॥

प्रभो! नरेन्द्र! हाथमें गदा लिये राजा दुर्योधन जलके भीतर सोया था। उस समय किसी भी मनुष्यके लिये उसको देखना कठिन था॥ ५६॥

ततो दुर्योधनो राजा सलिलान्तर्गतो वसन्।
शुश्रुवे तुमुलं शब्दं जलदोपमनि:स्वनम्॥ ५७॥

तदनन्तर पानीके भीतर बैठे हुए राजा दुर्योधनने मेघकी गर्जनाके समान भयंकर शब्द सुना॥ ५७॥

युधिष्ठिरश्च राजेन्द्र तं ह्रदं सह सोदरै:।
आजगाम महाराज तव पुत्रवधाय वै॥ ५८॥

राजेन्द्र! महाराज! आपके पुत्रका वध करनेके लिये राजा युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ उस सरोवरके तटपर आ पहुँचे॥ ५८॥

महता शङ्खनादेन रथनेमिस्वनेन च।
ऊर्ध्वं धुन्वन् महारेणुं कम्पयंश्चापि मेदिनीम्॥ ५९॥
यौधिष्ठिरस्य सैन्यस्य श्रुत्वा शब्दं महारथा:।
कृतवर्मा कृपो द्रौणी राजानमिदमब्रुवन्॥ ६०॥

वे महान् शंखनाद तथा रथके पहियोंकी घर्घराहटसे पृथ्वीको कँपाते और धूलका महान् ढेर ऊपर उड़ाते हुए वहाँ आये थे। युधिष्ठिरकी सेनाका कोलाहल सुनकर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा तीनों महारथी राजा दुर्योधनसे इस प्रकार बोले— ॥ ५९-६०॥

इमे ह्यायान्ति संहृष्टा: पाण्डवा जितकाशिन:।
अपयास्यामहे तावदनुजानातु नो भवान्॥ ६१॥

'ये विजयसे उल्लसित होनेवाले पाण्डव बड़े हर्षमें भरकर इधर ही आ रहे हैं। अत: हमलोग यहाँसे हट जायँगे। इसके लिये तुम हमें आज्ञा प्रदान करो'॥ ६१॥

दुर्योधनस्तु तच्छ्रुत्वा तेषां तत्र तरस्विनाम्।
तथेत्युक्त्वा ह्रदं तं वै मायया स्तम्भयत् प्रभो॥ ६२॥

प्रभो! उन वेगशाली वीरोंकी वह बात सुनकर दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर उस सरोवरके जलको पुन: मायाद्वारा स्तम्भित कर दिया॥ ६२॥

ते त्वनुज्ञाप्य राजानं भृशं शोकपरायणा:।
जग्मुर्दूरं महाराज कृपप्रभृतयो रथा:॥ ६३॥

महाराज! राजाकी आज्ञा लेकर अत्यन्त शोकमें डूबे हुए कृपाचार्य आदि महारथी वहाँसे दूर चले गये॥ ६३॥

ते गत्वा दूरमध्वानं न्यग्रोधं प्रेक्ष्य मारिष।
न्यविशन्त भृशं श्रान्ताश्चिन्तयन्तो नृपं प्रति॥ ६४॥

मान्यवर! दूरके मार्गपर जाकर उन्हें एक बरगदका वृक्ष दिखायी दिया। वे अत्यन्त थके होनेके कारण राजा दुर्योधनके विषयमें चिन्ता करते हुए उसीके नीचे बैठ गये॥ ६४॥

विष्टभ्य सलिलं सुप्तो धार्तराष्ट्रो महाबल:।
पाण्डवाश्चापि सम्प्राप्तास्तं देशं युद्धमीप्सव:॥ ६५॥

इधर महाबली धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन पानी बाँधकर सो गया। इतनेहीमें युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले पाण्डव भी वहाँ आ पहुँचे॥ ६५॥

कथं नु युद्धं भविता कथं राजा भविष्यति।
कथं नु पाण्डवा राजन् प्रतिपत्स्यन्ति कौरवम्॥ ६६॥
इत्येवं चिन्तयानास्तु रथेभ्योऽश्वान् विमुच्यते।
तत्रासांचक्रिरे राजन् कृपप्रभृतयो रथा:॥ ६७॥

राजन्! उधर कृपाचार्य आदि महारथी रथोंसे घोड़ोंको खोलकर यह सोचने लगे कि 'अब युद्ध किस तरह होगा? राजा दुर्योधनकी क्या दशा होगी और पाण्डव किस प्रकार कुरुराज दुर्योधनका पता पायेंगे' ऐसी चिन्ता करते हुए वे वहाँ बैठकर आराम करने लगे॥ ६६-६७॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि त्रिंशोऽध्याय:॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्याय:

पाण्डवोंका द्वैपायनसरोवरपर जाना, वहाँ युधिष्ठिर और श्रीकृष्णकी बातचीत तथा तालाबमें छिपे हुए दुर्योधनके साथ युधिष्ठिरका संवाद

संजय उवाच

ततस्तेष्वपयातेषु रथेषु त्रिषु पाण्डवा:।
ते ह्रदं प्रत्यपद्यन्त यत्र दुर्योधनोऽभवत्॥ १॥

संजय कहते हैं—महाराज! उन तीनों रथियोंके हट जानेपर पाण्डव उस सरोवरके तटपर आये, जिसमें दुर्योधन छिपा हुआ था॥ १॥

आसाद्य च कुरुश्रेष्ठ तदा द्वैपायनं ह्रदम्।
स्तम्भितं धार्तराष्ट्रेण दृष्ट्वा तं सलिलाशयम्॥ २॥
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत् कुरुनन्दन:।
पश्येमां धार्तराष्ट्रेण मायामप्सु प्रयोजिताम्॥ ३॥

कुरुश्रेष्ठ! द्वैपायन-कुण्डपर पहुँचकर युधिष्ठिरने देखा कि दुर्योधनने इस जलाशयके जलको स्तम्भित कर दिया है। यह देखकर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने भगवान् वासुदेवसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! देखिये तो सही, दुर्योधनने जलके भीतर इस मायाका कैसा प्रयोग किया है?॥ २-३॥

विष्टभ्य सलिलं शेते नास्य मानुषतो भयम्।
दैवीं मायामिमां कृत्वा सलिलान्तर्गतो ह्ययम्॥ ४॥

'यह पानीको रोककर सो रहा है। इसे यहाँ मनुष्यसे किसी प्रकारका भय नहीं है; क्योंकि यह इस दैवी मायाका प्रयोग करके जलके भीतर निवास करता है॥

निकृत्या निकृतिप्रज्ञो न मे जीवन् विमोक्ष्यते।
यद्यस्य समरे साह्यं कुरुते वज्रभृत् स्वयम्॥ ५॥
तथाप्येनं हतं युद्धे लोका द्रक्ष्यन्ति माधव।

'माधव! यद्यपि यह छल-कपटकी विद्यामें बड़ा चतुर है, तथापि कपट करके मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकता। यदि समरांगणमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्र इसकी सहायता करें तो भी युद्धमें इसे सब लोग मरा हुआ ही देखेंगे'॥ ५½॥

वासुदेव उवाच

मायाविन इमां मायां मायया जहि भारत॥ ६॥
मायावी मायया वध्यः सत्यमेतद् युधिष्ठिर।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भारत! मायावी दुर्योधनकी इस मायाको आप मायाद्वारा ही नष्ट कर डालिये! युधिष्ठिर! मायावीका वध मायासे ही करना चाहिये, यह सच्ची नीति है॥ ६½॥

क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्मायामप्सु प्रयोज्य च॥ ७॥
जहि त्वं भरतश्रेष्ठ मायात्मानं सुयोधनम्।

भरतश्रेष्ठ! आप बहुत-से रचनात्मक उपायोंद्वारा जलमें मायाका प्रयोग करके मायामय दुर्योधनका वध कीजिये॥ ७½॥

क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण निहता दैत्यदानवाः॥ ८॥
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्बलिर्बद्धो महात्मना।
क्रियाभ्युपायैर्बहुभिर्हिरण्याक्षो महासुरः॥ ९॥

रचनात्मक उपायोंसे ही इन्द्रने बहुत-से दैत्य और दानवोंका संहार किया, नाना प्रकारके रचनात्मक उपायोंसे ही महात्मा श्रीहरिने बलिको बाँधा और बहुसंख्यक रचनात्मक उपायोंसे ही उन्होंने महान् असुर हिरण्याक्षका वध किया था॥ ८-९॥

हिरण्यकशिपुश्चैव क्रियायैव निषूदितौ।
वृत्रश्च निहतो राजन् क्रियायैव न संशयः॥ १०॥

क्रियात्मक प्रयत्नके द्वारा ही भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको भी मारा था। राजन्! वृत्रासुरका वध भी क्रियात्मक उपायसे ही हुआ था, इसमें संशय नहीं है॥ १०॥

तथा पौलस्त्यतनयो रावणो नाम राक्षसः।
रामेण निहतो राजन् सानुबन्धः सहानुगः॥ ११॥
क्रियया योगमास्थाय तथा त्वमपि विक्रम।

राजन्! पुलस्त्यकुमार विश्रवाका पुत्र रावण नामक राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा क्रियात्मक उपाय और युक्तिकौशलके सहारे ही सम्बन्धियों और सेवकोंसहित मारा गया, उसी प्रकार आप भी पराक्रम प्रकट करें॥ ११½॥

क्रियाभ्युपायैर्निहतौ मया राजन् पुरातनौ॥ १२॥
तारकश्च महादैत्यो विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्।

नरेश्वर! पूर्वकालके महादैत्य तारक और पराक्रमी विप्रचित्तिको मैंने क्रियात्मक उपायोंसे ही मारा था॥ १२½॥

वातापिरिल्वलश्चैव त्रिशिराश्च तथा विभो॥ १३॥
सुन्दोपसुन्दावसुरौ क्रिययैव निषूदितौ।
क्रियाभ्युपायैरिन्द्रेण त्रिदिवं भुज्यते विभो॥ १४॥

प्रभो! वातापि, इल्वल, त्रिशिरा तथा सुन्द-उपसुन्द नामक असुर भी कार्यकौशलसे ही मारे गये हैं। क्रियात्मक उपायोंसे ही इन्द्र स्वर्गका राज्य भोगते हैं॥ १३-१४॥

क्रिया बलवती राजन् नान्यत् किंचिद् युधिष्ठिर।
दैत्याश्च दानवाश्चैव राक्षसाः पार्थिवास्तथा॥ १५॥
क्रियाभ्युपायैर्निहताः क्रियां तस्मात् समाचर।

राजन्! कार्यकौशल ही बलवान् है, दूसरी कोई वस्तु नहीं। युधिष्ठिर! दैत्य, दानव, राक्षस तथा बहुत-से भूपाल क्रियात्मक उपायोंसे ही मारे गये हैं; अतः आप भी क्रियात्मक उपायका ही आश्रय लें॥ १५½॥

संजय उवाच

इत्युक्तो वासुदेवेन पाण्डवः संशितव्रतः॥ १६॥
जलस्थं तं महाराज तव पुत्रं महाबलम्।
अभ्यभाषत कौन्तेयः प्रहसन्निव भारत॥ १७॥

संजय कहते हैं—महाराज! भरतनन्दन! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर उत्तम एवं कठोर व्रतका पालन करनेवाले पाण्डुकुमार कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने जलमें स्थित हुए आपके महाबली पुत्रसे हँसते हुए-से कहा—॥ १६-१७॥

सुयोधन किमर्थोऽयमारम्भोऽप्सु कृतस्त्वया।
सर्वं क्षत्रं घातयित्वा स्वकुलं च विशाम्पते॥ १८॥
जलाशयं प्रविष्टोऽद्य वाञ्छञ्जीवितमात्मनः।
उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व सहास्माभिः सुयोधन॥ १९॥

'प्रजानाथ सुयोधन! तुमने किसलिये पानीमें यह अनुष्ठान आरम्भ किया है। सम्पूर्ण क्षत्रियों तथा अपने कुलका संहार कराकर आज अपनी जान बचानेकी इच्छासे तुम जलाशयमें घुसे बैठे हो। राजा सुयोधन! उठो और हम लोगोंके साथ युद्ध करो॥ १८-१९॥

स ते दर्पो नरश्रेष्ठ स च मानः क्व ते गतः।
यस्त्वं संस्तभ्य सलिलं भीतो राजन् व्यवस्थितः॥ २०॥

'राजन्! नरश्रेष्ठ! तुम्हारा वह पहलेका दर्प और अभिमान कहाँ चला गया, जो डरके मारे जलका स्तम्भन करके यहाँ छिपे हुए हो?॥ २०॥

सर्वे त्वां शूर इत्येवं जना जल्पन्ति संसदि।
व्यर्थं तद् भवतो मन्ये शौर्यं सलिलशायिनः॥ २१॥

'सभामें सब लोग तुम्हें शूरवीर कहा करते हैं। जब तुम भयभीत होकर पानीमें सो रहे हो, तब तुम्हारे उस तथाकथित शौर्यको मैं व्यर्थ समझता हूँ॥ २१॥

उत्तिष्ठ राजन् युध्यस्व क्षत्रियोऽसि कुलोद्भवः।
कौरवेयो विशेषेण कुलं जन्म च संस्मर॥ २२॥

'राजन्! उठो, युद्ध करो; क्योंकि तुम कुलीन क्षत्रिय हो, विशेषतः कुरुकुलकी संतान हो। अपने कुल और जन्मका स्मरण तो करो॥ २२॥

स कथं कौरवे वंशे प्रशंसन् जन्म चात्मनः।
युद्धाद् भीतस्ततस्तोयं प्रविश्य प्रतितिष्ठसि॥ २३॥

'तुम तो कौरववंशमें उत्पन्न होनेके कारण अपने जन्मकी प्रशंसा करते थे। फिर आज युद्धसे डरकर पानीके भीतर कैसे घुसे बैठे हो?॥ २३॥

अयुद्धमव्यवस्थानं नैष धर्मः सनातनः।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं रणे राजन् पलायनम्॥ २४॥

'नरेश्वर! युद्ध न करना अथवा युद्धमें स्थिर न रहकर वहाँसे पीठ दिखाकर भागना यह सनातन धर्म नहीं है। नीच पुरुष ही ऐसे कुमार्गका आश्रय लेते हैं। इससे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं होती॥ २४॥

कथं पारमगत्वा हि युद्धे त्वं वै जिजीविषुः।
इमान् निपतितान् दृष्ट्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄंस्तथा॥ २५॥
सम्बन्धिनो वयस्यांश्च मातुलान् बान्धवांस्तथा।
घातयित्वा कथं तात ह्रदे तिष्ठसि साम्प्रतम्॥ २६॥

'युद्धसे पार पाये बिना ही तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा कैसे हो गयी? तात! रणभूमिमें गिरे हुए इन पुत्रों, भाइयों और चाचे-ताउओंको देखकर सम्बन्धियों, मित्रों, मामाओं और बन्धु-बान्धवोंका वध कराकर इस समय तालाबमें क्यों छिपे बैठे हो?॥ २५-२६॥

शूरमानी न शूरस्त्वं मृषा वदसि भारत।
शूरोऽहमिति दुर्बुद्धे सर्वलोकस्य शृण्वतः॥ २७॥

'तुम अपनेको शूर तो मानते हो, परंतु शूर हो नहीं। भरतवंशके खोटी बुद्धिवाले नरेश! तुम सब लोगोंके सुनते हुए व्यर्थ ही कहा करते हो कि 'मैं शूरवीर हूँ'॥ २७॥

न हि शूराः पलायन्ते शत्रून् दृष्ट्वा कथञ्चन।
ब्रूहि वा त्वं यया वृत्त्या शूर त्यजसि संगरम्॥ २८॥

'जो वास्तवमें शूरवीर हैं, वे शत्रुओंको देखकर किसी तरह भागते नहीं हैं। अपनेको शूर कहनेवाले सुयोधन! बताओ तो सही, तुम किस वृत्तिका आश्रय लेकर युद्ध छोड़ रहे हो॥ २८॥

स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व विनीय भयमात्मनः।
घातयित्वा सर्वसैन्यं भ्रातॄंश्चैव सुयोधन॥ २९॥
नेदानीं जीविते बुद्धिः कार्या धर्मचिकीर्षया।
क्षत्रधर्ममुपाश्रित्य त्वद्विधेन सुयोधन॥ ३०॥

'अतः तुम अपना भय दूर करके उठो और युद्ध करो। सुयोधन! भाइयों तथा सम्पूर्ण सेनाको मरवाकर क्षत्रियधर्मका आश्रय लिये हुए तुम्हारे-जैसे पुरुषको धर्मसम्पादनकी इच्छासे इस समय केवल अपनी जान बचानेका विचार नहीं करना चाहिये॥ २९-३०॥

यत् तु कर्णमुपाश्रित्य शकुनिं चापि सौबलम्।
अमर्त्य इव सम्मोहात् त्वमात्मानं न बुद्धवान्॥ ३१॥
तत् पापं सुमहत् कृत्वा प्रतियुद्ध्यस्व भारत।
कथं हि त्वद्विधो मोहाद् रोचयेत पलायनम्॥ ३२॥

'तुम जो कर्ण और सुबलपुत्र शकुनिका सहारा लेकर मोहवश अपने-आपको अजर-अमर-सा मान बैठे थे, अपनेको मनुष्य समझते ही नहीं थे, वह महान् पाप करके अब युद्ध क्यों नहीं करते? भारत! उठो, हमारे साथ युद्ध करो। तुम्हारे-जैसा वीर पुरुष मोहवश पीठ दिखाकर भागना कैसे पसंद करेगा?॥ ३१-३२॥

क्व ते तत् पौरुषं यातं क्व च मानः सुयोधन।
क्व च विक्रान्तता याता क्व च विस्फूर्जितं महत्॥ ३३॥
क्व ते कृतास्त्रता याता किञ्च शेषे जलाशये।
स त्वमुत्तिष्ठ युध्यस्व क्षत्रधर्मेण भारत॥ ३४॥

'सुयोधन! तुम्हारा वह पौरुष कहाँ चला गया? कहाँ है वह तुम्हारा अभिमान? कहाँ गया पराक्रम? कहाँ है वह महान् गर्जन-तर्जन? और कहाँ गया वह अस्त्रविद्याका ज्ञान? इस समय इस तालाबमें तुम्हें कैसे नींद आ रही है? भारत! उठो और क्षत्रियधर्मके अनुसार युद्ध करो॥ ३३-३४॥

अस्मांस्तु वा पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्।
अथवा निहतोऽस्माभिर्भूमौ स्वप्स्यसि भारत॥ ३५॥

'भरतनन्दन! हम सब लोगोंको परास्त करके इस पृथ्वीका शासन करो अथवा हमारे हाथों मारे जाकर सदाके लिये रणभूमिमें सो जाओ॥ ३५॥

एष ते परमो धर्मः सृष्टो धात्रा महात्मना।
तं कुरुष्व यथातथ्यं राजा भव महारथ॥ ३६॥

'भगवान् ब्रह्माने तुम्हारे लिये यही उत्तम धर्म बनाया है। उस धर्मका यथार्थरूपसे पालन करो।

महारथी वीर! वास्तवमें राजा बनो (राजोचित पराक्रम प्रकट करो)'॥ ३६॥

संजय उवाच

एवमुक्तो महाराज धर्मपुत्रेण धीमता।
सलिलस्थस्तव सुत इदं वचनमब्रवीत्॥ ३७॥

संजय कहते हैं—महाराज! बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिरके ऐसा कहनेपर जलके भीतर स्थित हुए तुम्हारे पुत्रने यह बात कही॥ ३७॥

दुर्योधन उवाच

नैतच्चित्रं महाराज यद्धीः प्राणिनमाविशेत्।
न च प्राणभयाद् भीतो व्यपयातोऽस्मि भारत॥ ३८॥

दुर्योधन बोला—महाराज! किसी भी प्राणीके मनमें भय समा जाय, यह आश्चर्यकी बात नहीं है; परंतु भरत-नन्दन! मैं प्राणोंके भयसे भागकर यहाँ नहीं आया हूँ॥ ३८॥

अरथश्चानिषङ्गी च निहतः पार्ष्णिसारथिः।
एकश्चाप्यगणः संख्ये प्रत्याश्वासमरोचयम्॥ ३९॥

मेरे पास न तो रथ है और न तरकस। मेरे पार्श्वरक्षक भी मारे जा चुके हैं। मेरी सेना नष्ट हो गयी और मैं युद्धस्थलमें अकेला रह गया था; इस दशामें मुझे कुछ देरतक विश्राम करनेकी इच्छा हुई॥ ३९॥

न प्राणहेतोर्न भयान्न विषादाद् विशाम्पते।
इदमम्भः प्रविष्टोऽस्मि श्रमात् त्विदमनुष्ठितम्॥ ४०॥

प्रजानाथ! मैं न तो प्राणोंकी रक्षाके लिये, न किसी भयसे और न विषादके ही कारण इस जलमें आ घुसा हूँ। केवल थक जानेके कारण मैंने ऐसा किया है॥ ४०॥

त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव।
अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि संयुगे॥ ४१॥

कुन्तीकुमार! तुम भी कुछ देरतक विश्राम कर लो। तुम्हारे अनुगामी सेवक भी सुस्ता लें। फिर मैं उठकर समरांगणमें तुम सब लोगोंके साथ युद्ध करूँगा॥ ४१॥

युधिष्ठिर उवाच

आश्वस्ता एव सर्वे स्म चिरं त्वां मृगयामहे।
तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन॥ ४२॥

युधिष्ठिरने कहा—सुयोधन! हम सब लोग तो सुस्ता ही चुके हैं और बहुत देरसे तुम्हें खोज रहे हैं; इसलिये अब तुम उठो और यहीं युद्ध करो॥ ४२॥

हत्वा वा समरे पार्थान् स्फीतं राज्यमवाप्नुहि।
निहतो वा रणेऽस्माभिर्वीरलोकमवाप्स्यसि॥ ४३॥

संग्राममें समस्त पाण्डवोंको मारकर समृद्धिशाली राज्य प्राप्त करो अथवा रणभूमिमें हमारे हाथों मारे जाकर वीरोंको मिलनेयोग्य पुण्यलोकोंमें चले जाओ॥ ४३॥

दुर्योधन उवाच

यदर्थं राज्यमिच्छामि कुरूणां कुरुनन्दन।
त इमे निहताः सर्वे भ्रातरो मे जनेश्वर॥ ४४॥
क्षीणरत्नां च पृथिवीं हतक्षत्रियपुङ्गवाम्।
न ह्युत्सहाम्यहं भोक्तुं विधवामिव योषितम्॥ ४५॥

दुर्योधन बोला—कुरुनन्दन नरेश्वर! मैं जिनके लिये कौरवोंका राज्य चाहता था, वे मेरे सभी भाई मारे जा चुके हैं। भूमण्डलके सभी क्षत्रियशिरोमणियोंका संहार हो गया है। यहाँके सभी रत्न नष्ट हो गये हैं; अतः विधवा स्त्रीके समान श्रीहीन हुई इस पृथ्वीका उपभोग करनेके लिये मेरे मनमें तनिक भी उत्साह नहीं है॥ ४४-४५॥

अद्यापि त्वहमाशंसे त्वां विजेतुं युधिष्ठिर।
भङ्क्त्वा पाञ्चालपाण्डूनामुत्साहं भरतर्षभ॥ ४६॥

भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! मैं आज भी पांचालों और पाण्डवोंका उत्साह भंग करके तुम्हें जीतनेका हौसला रखता हूँ॥ ४६॥

न त्विदानीमहं मन्ये कार्यं युद्धेन कर्हिचित्।
द्रोणे कर्णे च संशान्ते निहते च पितामहे॥ ४७॥

किंतु जब द्रोण और कर्ण शान्त हो गये तथा पितामह भीष्म मार डाले गये तो अब मेरी रायमें कभी भी इस युद्धकी कोई आवश्यकता नहीं रही॥ ४७॥

अस्त्विदानीमियं राजन् केवला पृथिवी तव।
असहायो हि को राजा राज्यमिच्छेत् प्रशासितुम्॥ ४८॥

राजन्! अब यह सूनी पृथ्वी तुम्हारी ही रहे। कौन राजा सहायकोंसे रहित होकर राज्य-शासनकी इच्छा करेगा?॥ ४८॥

सुहृदस्तादृशान् हित्वा पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄनपि।
भवद्भिश्च हते राज्ये को नु जीवेत मादृशः॥ ४९॥

वैसे हितैषी सुहृदों, पुत्रों, भाइयों और पिताओंको छोड़कर तुमलोगोंके द्वारा राज्यका अपहरण हो जानेपर कौन मेरे-जैसा पुरुष जीवित रहेगा?॥ ४९॥

अहं वनं गमिष्यामि ह्यजिनैः प्रतिवासितः।
रतिर्हि नास्ति मे राज्ये हतपक्षस्य भारत॥ ५०॥

भरतनन्दन! मैं मृगचर्म धारण करके वनमें चला जाऊँगा। अपने पक्षके लोगोंके मारे जानेसे अब इस राज्यमें मेरा तनिक भी अनुराग नहीं है॥ ५०॥

हतबान्धवभूयिष्ठा हताश्वा हतकुञ्जरा।
एषा ते पृथिवी राजन् भुङ्क्ष्वैनां विगतज्वरः॥ ५१॥

राजन्! यह पृथ्वी, जहाँ मेरे अधिक-से-अधिक भाई-बन्धु, घोड़े और हाथी मारे गये हैं, अब तुम्हारे ही अधिकारमें रहे। तुम निश्चिन्त होकर इसका उपभोग करो॥ ५१॥

वनमेव गमिष्यामि वसानो मृगचर्मणी।
न हि मे निर्जनस्यास्ति जीवितेऽद्य स्पृहा विभो॥ ५२॥

प्रभो! मैं तो दो मृगछाला धारण करके वनमें ही चला जाऊँगा, जब मेरे स्वजन ही नहीं रहे, तब मुझे भी इस जीवनको सुरक्षित रखनेकी इच्छा नहीं है॥ ५२॥

गच्छ त्वं भुङ्क्ष्व राजेन्द्र पृथिवीं निहतेश्वराम्।
हतयोधां नष्टरत्नां क्षीणवृत्तिर्यथासुखम्॥ ५३॥

राजेन्द्र! जाओ, जिसके स्वामीका नाश हो गया है, योद्धा मारे गये हैं और सारे रत्न नष्ट हो गये हैं, उस पृथ्वीका आनन्दपूर्वक उपभोग करो; क्योंकि तुम्हारी जीविका क्षीण हो गयी थी॥ ५३॥

संजय उवाच

दुर्योधनं तव सुतं सलिलस्थं महायशाः।
श्रुत्वा तु करुणं वाक्यमभाषत युधिष्ठिरः॥ ५४॥

संजय कहते हैं—राजन्! महायशस्वी युधिष्ठिरने वह करुणायुक्त वचन सुनकर पानीमें स्थित हुए आपके पुत्र दुर्योधनसे इस प्रकार कहा॥ ५४॥

युधिष्ठिर उवाच

आर्तप्रलापान्मा तात सलिलस्थः प्रभाषिथाः।
नैतन्मनसि मे राजन् वाशितं शकुनेरिव॥ ५५॥

युधिष्ठिर बोले—नरेश्वर! तुम जलमें स्थित होकर आर्त पुरुषोंके समान प्रलाप न करो। तात! चिड़ियोंके चहचहानेके समान तुम्हारी यह बात मेरे मनमें कोई अर्थ नहीं रखती है॥ ५५॥

यदि वापि समर्थः स्यास्त्वं दानाय सुयोधन।
नाहमिच्छेयमवनिं त्वया दत्तां प्रशासितुम्॥ ५६॥

सुयोधन! यदि तुम इसे देनेमें समर्थ होते तो भी मैं तुम्हारी दी हुई इस पृथ्वीपर शासन करनेकी इच्छा नहीं रखता॥

अधर्मेण न गृह्णीयां त्वया दत्तां महीमिमाम्।
न हि धर्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः॥ ५७॥

राजन्! तुम्हारी दी हुई इस भूमिको मैं अधर्मपूर्वक नहीं ले सकता; क्षत्रियके लिये दान लेना धर्म नहीं बताया गया है॥ ५७॥

त्वया दत्तां न चेच्छेयं पृथिवीमखिलामहम्।
त्वां तु युद्धे विनिर्जित्य भोक्तास्मि वसुधामिमाम्॥ ५८॥

तुम्हारे देनेपर इस सम्पूर्ण पृथ्वीको भी मैं नहीं लेना चाहता। तुम्हें युद्धमें परास्त करके ही इस वसुधाका उपभोग करूँगा॥ ५८॥

अनीश्वरश्च पृथिवीं कथं त्वं दातुमिच्छसि।
त्वयेयं पृथिवी राजन् किन्न दत्ता तदैव हि॥ ५९॥
धर्मतो याचमानानां प्रशमार्थं कुलस्य नः।

अब तो तुम स्वयं ही इस पृथ्वीके स्वामी नहीं रहे; फिर इसका दान कैसे करना चाहते हो? राजन्! जब हम लोग कुलमें शान्ति बनाये रखनेके लिये पहले धर्मके अनुसार अपना ही राज्य माँग रहे थे, उसी समय तुमने हमें यह पृथ्वी क्यों नहीं दे दी॥ ५९½॥

वार्ष्णेयं प्रथमं राजन् प्रत्याख्याय महाबलम्॥ ६०॥
किमिदानीं ददासि त्वं को हि ते चित्तविभ्रमः।

नरेश्वर! पहले महाबली भगवान् श्रीकृष्णको हमारे लिये राज्य देनेसे इनकार करके इस समय क्यों दे रहे हो? तुम्हारे चित्तमें यह कैसा भ्रम छा रहा है?॥ ६०½॥

अभियुक्तस्तु को राजा दातुमिच्छेद्भि मेदिनीम्॥ ६१॥
न त्वमद्य महीं दातुमीशः कौरवनन्दन।
आच्छेत्तुं वा बलाद् राजन् स कथं दातुमिच्छसि॥ ६२॥

जो शत्रुओंसे आक्रान्त हो, ऐसा कौन राजा किसीको भूमि देनेकी इच्छा करेगा? कौरवनन्दन नरेश! अब न तो तुम किसीको पृथ्वी दे सकते हो और न बलपूर्वक उसे छीन ही सकते हो। ऐसी दशामें तुम्हें भूमि देनेकी इच्छा कैसे हो गयी?॥ ६१-६२॥

मां तु निर्जित्य संग्रामे पालयेमां वसुन्धराम्।
सूच्यग्रेणापि यद् भूमेरपि भिद्येत भारत॥ ६३॥
तन्मात्रमपि तन्मह्यं न ददाति पुरा भवान्।
स कथं पृथिवीमेतां प्रददासि विशाम्पते॥ ६४॥

मुझे संग्राममें जीतकर इस पृथ्वीका पालन करो। भारत! पहले तो तुम सूईकी नोकसे जितना छिद सके, भूमिका उतना-सा भाग भी मुझे नहीं दे रहे थे। प्रजानाथ! फिर आज यह सारी पृथ्वी कैसे दे रहे हो?॥ ६३-६४॥

सूच्यग्रं नात्यजः पूर्वं स कथं त्यजसि क्षितिम्।
एवमैश्वर्यमासाद्य प्रशास्य पृथिवीमिमाम्॥ ६५॥
को हि मूढो व्यवस्येत शत्रोर्दातुं वसुन्धराम्।

पहले तो तुम सूईकी नोक बराबर भी भूमि नहीं छोड़ रहे थे, अब सारी पृथ्वी कैसे त्याग रहे हो? इस प्रकार ऐश्वर्य पाकर इस वसुधाका शासन करके कौन मूर्ख शत्रुके हाथमें अपनी भूमि देना चाहेगा?॥ ६५½॥

त्वं तु केवलमौर्ख्येण विमूढो नावबुद्ध्यसे॥ ६६॥
पृथिवीं दातुकामोऽपि जीवितेन विमोक्ष्यसे।

तुम तो केवल मूर्खतावश विवेक खो बैठे हो; इसीलिये यह नहीं समझते कि आज भूमि देनेकी इच्छा करनेपर भी तुम्हें अपने जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा॥ ६६½॥

अस्मान् वा त्वं पराजित्य प्रशाधि पृथिवीमिमाम्॥ ६७॥
अथवा निहतोऽस्माभिर्व्रज लोकाननुत्तमान्।

या तो हमलोगोंको परास्त करके तुम्हीं इस

पृथ्वीका शासन करो या हमारे हाथों मारे जाकर परम उत्तम लोकोंमें चले जाओ॥ ६७½ ॥

आवयोर्जीवतो राजन् मयि च त्वयि च ध्रुवम्॥ ६८॥
संशयः सर्वभूतानां विजये नौ भविष्यति।

राजन्! मेरे और तुम्हारे दोनोंके जीते-जी हमारी विजयके विषयमें समस्त प्राणियोंको संदेह बना रहेगा॥

जीवितं तव दुष्प्रज्ञ मयि सम्प्रति वर्तते॥ ६९॥
जीवयेयमहं कामं न तु त्वं जीवितुं क्षमः।

दुर्मते! इस समय तुम्हारा जीवन मेरे हाथमें है। मैं इच्छानुसार तुम्हें जीवनदान दे सकता हूँ; परंतु तुम स्वेच्छापूर्वक जीवित रहनेमें समर्थ नहीं हो॥ ६९½ ॥

दहने हि कृतो यत्नस्त्वयास्मासु विशेषतः॥ ७०॥
आशीविषैर्विषैश्चापि जले चापि प्रवेशनैः।
त्वया विनिकृता राजन् राज्यस्य हरणेन च॥ ७१॥
अप्रियाणां च वचनैर्द्रौपद्याः कर्षणेन च।
एतस्मात् कारणात् पाप जीवितं ते न विद्यते॥ ७२॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ युध्यस्व युद्धे श्रेयो भविष्यति।

याद है न, तुमने हमलोगोंको जला डालनेके लिये विशेष प्रयत्न किया था। भीमको विषधर सर्पोंसे डसवाया, विष खिलाकर उन्हें पानीमें डुबाया, हमलोगोंका राज्य छीनकर हमें अपने कपटजालका शिकार बनाया, द्रौपदीको कटु वचन सुनाये और उसके केश खींचे। पापी! इन सब कारणोंसे तुम्हारा जीवन नष्ट-सा हो चुका है। उठो-उठो, युद्ध करो; इसीसे तुम्हारा कल्याण होगा॥ ७०—७२½ ॥

एवं तु विविधा वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः।
कीर्तयन्ति स्म ते वीरास्तत्र तत्र जनाधिप॥ ७३॥

नरेश्वर! वे विजयी वीर पाण्डव इस प्रकार वहाँ बारंबार नाना प्रकारकी बातें कहने लगे॥ ७३॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वान्तर्गतगदापर्वणि सुयोधनयुधिष्ठिरसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें दुर्योधन-युधिष्ठिरसंवादविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

युधिष्ठिरके कहनेसे दुर्योधनका तालाबसे बाहर होकर किसी एक पाण्डवके साथ गदायुद्धके लिये तैयार होना

धृतराष्ट्र उवाच

एवं संतर्ज्यमानस्तु मम पुत्रो महीपतिः।
प्रकृत्या मन्युमान् वीरः कथमासीत् परंतपः॥ १॥

धृतराष्ट्रने पूछा—संजय! शत्रुओंको संताप देनेवाला मेरा वीर पुत्र राजा दुर्योधन स्वभावसे ही क्रोधी था। जब युधिष्ठिरने उसे इस प्रकार फटकारा, तब उसकी कैसी दशा हुई?॥ १॥

न हि संतर्जना तेन श्रुतपूर्वा कथञ्चन।
राजभावेन मान्यश्च सर्वलोकस्य सोऽभवत्॥ २॥

उसने पहले कभी किसी तरह ऐसी फटकार नहीं सुनी थी; क्योंकि राजा होनेके कारण वह सब लोगोंके सम्मानका पात्र था॥ २॥

यस्यातपत्रच्छायापि स्वका भानोस्तथा प्रभा।
खेदायैवाभिमानित्वात् सहेत् सैवं कथं गिरः॥ ३॥

अभिमानी होनेके कारण जिसके मनमें अपने छत्रकी छाया और सूर्यकी प्रभा भी खेद ही उत्पन्न करती थी, वह ऐसी कठोर बातें कैसे सह सकता था?॥

इयं च पृथिवी सर्वा सम्लेच्छाटविका भृशम्।
प्रसादाद् धियते यस्य प्रत्यक्षं तव संजय॥ ४॥

संजय! तुमने तो प्रत्यक्ष ही देखा था कि म्लेच्छों तथा जंगली जातियोंसहित यह सारी पृथ्वी दुर्योधनकी कृपासे ही जीवन धारण करती थी॥ ४॥

स तथा तर्ज्यमानस्तु पाण्डुपुत्रैर्विशेषतः।
विहीनश्च स्वकैर्भृत्यैर्निर्जने चावृतो भृशम्॥ ५॥
स श्रुत्वा कटुका वाचो जययुक्ताः पुनः पुनः।
किमब्रवीत् पाण्डवेयांस्तन्ममाचक्ष्व संजय॥ ६॥

इस समय वह अपने सेवकोंसे हीन हो चुका था और एकान्त स्थानमें घिर गया था। उस दशामें विशेषतः पाण्डवोंने जब उसे वैसी कड़ी फटकार सुनायी, तब शत्रुओंके विजयसे युक्त उन कटुवचनोंको बारंबार सुनकर दुर्योधनने पाण्डवोंसे क्या कहा? यह मुझे बताओ॥

संजय उवाच

तर्ज्यमानस्तदा राजन्नुदकस्थस्तवात्मजः।
युधिष्ठिरेण राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितेन ह॥ ७॥
श्रुत्वा स कटुका वाचो विषमस्थो नराधिपः।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य सलिलस्थः पुनः पुनः॥ ८॥
सलिलान्तर्गतो राजा धुन्वन् हस्तौ पुनः पुनः।
मनश्चकार युद्धाय राजानं चाभ्यभाषत॥ ९॥

संजयने कहा—राजाधिराज! राजन्! उस समय भाइयोंसहित युधिष्ठिरने जब इस प्रकार फटकारा, तब जलमें खड़े हुए आपके पुत्रने उन कठोर वचनोंको सुनकर गरम-गरम लंबी साँस छोड़ी। राजा दुर्योधन विषम परिस्थितिमें पड़ गया था और पानीमें स्थित था; इसलिये बारंबार उच्छ्वास लेता रहा। उसने जलके भीतर ही अनेक बार दोनों हाथ हिलाकर मन-ही-मन युद्धका निश्चय किया और राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहा— ॥ ७—९ ॥

यूयं ससुहृदः पार्थाः सर्वे सरथवाहनाः।
अहमेकः परिद्यूनो विरथो हतवाहनः॥ १०॥

'तुम सभी पाण्डव अपने हितैषी मित्रोंको साथ लेकर आये हो। तुम्हारे रथ और वाहन भी मौजूद हैं। मैं अकेला थका-माँदा, रथहीन और वाहनशून्य हूँ॥ १० ॥

आत्तशस्त्रै रथोपेतैर्बहुभिः परिवारितः।
कथमेकः पदातिः सन्नशस्त्रो योद्धुमुत्सहे॥ ११॥

'तुम्हारी संख्या अधिक है। तुमने रथपर बैठकर नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर मुझे घेर रखा है। फिर तुम्हारे साथ मैं अकेला पैदल और अस्त्र-शस्त्रोंसे रहित होकर कैसे युद्ध कर सकता हूँ?॥ ११ ॥

एकैकेन तु मां यूयं योधयध्वं युधिष्ठिर।
न ह्येको बहुभिर्वीरैर्न्याय्यो योधयितुं युधि॥ १२॥

'युधिष्ठिर! तुमलोग एक-एक करके मुझसे युद्ध करो। युद्धमें बहुत-से वीरोंके साथ किसी एकको लड़नेके लिये विवश करना न्यायोचित नहीं है॥ १२ ॥

विशेषतो विकवचः श्रान्तश्चापत्समाश्रितः।
भृशं विक्षतगात्रश्च श्रान्तवाहनसैनिकः॥ १३॥

'विशेषतः उस दशामें जिसके शरीरपर कवच नहीं हो, जो थका-माँदा, आपत्तिमें पड़ा और अत्यन्त घायल हो तथा जिसके वाहन और सैनिक भी थक गये हों, उसे युद्धके लिये विवश करना न्यायसंगत नहीं है॥ १३ ॥

न मे त्वत्तो भयं राजन् न च पार्थाद् वृकोदरात्।
फाल्गुनाद् वासुदेवाद् वा पञ्चालेभ्योऽथवा पुनः॥ १४॥
यमाभ्यां युयुधानाद् वा ये चान्ये तव सैनिकाः।
एकः सर्वानहं क्रुद्धो वारयिष्ये युधि स्थितः॥ १५॥

'राजन्! मुझे न तो तुमसे, न कुन्तीके बेटे भीमसेनसे, न अर्जुनसे, न श्रीकृष्णसे अथवा पांचालोंसे ही कोई भय है। नकुल-सहदेव, सात्यकि तथा अन्य जो-जो तुम्हारे सैनिक हैं, उनसे भी मैं नहीं डरता। युद्धमें क्रोधपूर्वक स्थित होनेपर मैं अकेला ही तुम सब लोगोंको आगे बढ़नेसे रोक दूँगा॥ १४-१५ ॥

धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणां जनाधिप।
धर्मं चैवेह कीर्तिं च पालयन् प्रब्रवीम्यहम्॥ १६॥

'नरेश्वर! साधु पुरुषोंकी कीर्तिका मूल कारण धर्म ही है। मैं यहाँ उस धर्म और कीर्तिका पालन करता हुआ ही यह बात कह रहा हूँ॥ १६ ॥

अहमुत्थाय सर्वान् वै प्रतियोत्स्यामि संयुगे।
अनुगम्यागतान् सर्वानृतून् संवत्सरो यथा॥ १७॥

'मैं उठकर रणभूमिमें एक-एक करके आये हुए तुम सब लोगोंके साथ युद्ध करूँगा, ठीक उसी तरह, जैसे संवत्सर बारी-बारीसे आये हुए सम्पूर्ण ऋतुओंको ग्रहण करता है॥ १७ ॥

अद्य वः सरथान् साश्वानशस्त्रो विरथोऽपि सन्।
नक्षत्राणीव सर्वाणि सविता रात्रिसंक्षये॥ १८॥
तेजसा नाशयिष्यामि स्थिरीभवत पाण्डवाः।

'पाण्डवो! स्थिर होकर खड़े रहो। आज मैं अस्त्र-शस्त्र एवं रथसे हीन होकर भी घोड़ों और रथोंपर चढ़कर आये हुए तुम सब लोगोंको उसी तरह अपने तेजसे नष्ट कर दूँगा, जैसे रात्रिके अन्तमें सूर्यदेव सम्पूर्ण नक्षत्रोंको अपने तेजसे अदृश्य कर देते हैं॥ १८½ ॥

अद्यानृण्यं गमिष्यामि क्षत्रियाणां यशस्विनाम्॥ १९॥
बाह्लीकद्रोणभीष्माणां कर्णस्य च महात्मनः।
जयद्रथस्य शूरस्य भगदत्तस्य चोभयोः॥ २०॥
मद्रराजस्य शल्यस्य भूरिश्रवस एव च।
पुत्राणां भरतश्रेष्ठ शकुनेः सौबलस्य च॥ २१॥
मित्राणां सुहृदां चैव बान्धवानां तथैव च।
आनृण्यमद्य गच्छामि हत्वा त्वां भ्रातृभिः सह॥ २२॥
एतावदुक्त्वा वचनं विरराम जनाधिपः।

'भरतश्रेष्ठ! आज मैं भाइयोंसहित तुम्हारा वध करके उन यशस्वी क्षत्रियोंके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा। बाह्लीक, द्रोण, भीष्म, महामना कर्ण, शूरवीर जयद्रथ, भगदत्त, मद्रराजशल्य, भूरिश्रवा, सुबलकुमार शकुनि तथा पुत्रों, मित्रों, सुहृदों एवं बन्धु-बान्धवोंके ऋणसे भी उऋण हो जाऊँगा।' राजा दुर्योधन इतना कहकर चुप हो गया॥ १९—२२½ ॥

युधिष्ठिर उवाच

दिष्ट्या त्वमपि जानीषे क्षत्रधर्मं सुयोधन॥ २३॥
दिष्ट्या ते वर्तते बुद्धिर्युद्धायैव महाभुज।
दिष्ट्या शूरोऽसि कौरव्य दिष्ट्या जानासि संगरम्॥ २४॥

युधिष्ठिर बोले—सुयोधन! सौभाग्यकी बात है कि तुम भी क्षत्रिय-धर्मको जानते हो। महाबाहो! यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अभी तुम्हारा विचार युद्ध

करनेका ही है। कुरुनन्दन! तुम शूरवीर हो और युद्ध करना जानते हो—यह हर्ष और सौभाग्यकी बात है॥

यस्त्वमेको हि नः सर्वान् संगरे योद्धुमिच्छसि।
एक एकेन संगम्य यत् ते सम्मतमायुधम्॥ २५॥
तत् त्वमादाय युध्यस्व प्रेक्षकास्ते वयं स्थिताः।

तुम रणभूमिमें अकेले ही एक-एकके साथ भिड़कर हम सब लोगोंसे युद्ध करना चाहते हो तो ऐसा ही सही। जो हथियार तुम्हें पसंद हो, उसीको लेकर हमलोगोंमेंसे एक-एकके साथ युद्ध करो। हम सब लोग दर्शक बनकर खड़े रहेंगे॥ २५½॥

स्वयमिष्टं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्॥ २६॥
हत्वैकं भवतो राज्यं हतो वा स्वर्गमाप्नुहि।

वीर! मैं स्वयं ही पुनः तुम्हें यह अभीष्ट वर देता हूँ कि 'हममेंसे एकका भी वध कर देनेपर सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा अथवा यदि तुम्हीं मारे गये तो स्वर्गलोक प्राप्त करोगे'॥ २६½॥

दुर्योधन उवाच

एकश्चेद् योद्धुमाक्रन्दे शूरोऽद्य मम दीयताम्॥ २७॥
आयुधानामियं चापि वृता त्वत्सम्मते गदा।

दुर्योधन बोला—राजन्! यदि ऐसी बात है तो इस महासमरमें मेरे साथ लड़नेके लिये आज किसी भी एक शूरवीरको दे दो और तुम्हारी सम्मतिके अनुसार हथियारोंमें मैंने एकमात्र इस गदाका ही वरण किया है॥ २७½॥

हन्तैकं भवतामेकः शक्यं मां योऽभिमन्यते॥ २८॥
पदातिर्गदया संख्ये स युध्यतु मया सह।

मैं हर्षके साथ कह रहा हूँ कि 'तुममेंसे कोई भी एक वीर जो मुझ अकेलेको जीत सकनेका अभिमान रखता हो, वह रणभूमिमें पैदल ही गदाद्वारा मेरे साथ युद्ध करे'॥

वृत्तानि रथयुद्धानि विचित्राणि पदे पदे॥ २९॥
इदमेकं गदायुद्धं भवत्वद्याद्भुतं महत्।

रथके विचित्र युद्ध तो पग-पगपर हुए हैं। आज यह एक अत्यन्त अद्भुत गदायुद्ध भी हो जाय॥ २९½॥

अस्त्राणामपि पर्यायं कर्तुमिच्छन्ति मानवाः॥ ३०॥
युद्धानामपि पर्यायो भवत्वनुमते तव।

मनुष्य बारी-बारीसे एक-एक अस्त्रका प्रयोग करना चाहते हैं; परंतु आज तुम्हारी अनुमतिसे युद्ध भी क्रमशः एक-एक योद्धाके साथ ही हो॥ ३०½॥

गदया त्वां महाबाहो विजेष्यामि सहानुजम्॥ ३१॥
पञ्चालान् सृञ्जयांश्चैव चे चान्ये तव सैनिकाः।
न हि मे सम्भ्रमो जातु शक्रादपि युधिष्ठिर॥ ३२॥

महाबाहो! मैं गदाके द्वारा भाइयोंसहित तुमको, पांचालों और सृंजयोंको तथा जो तुम्हारे दूसरे सैनिक हैं, उनको भी जीत लूँगा। युधिष्ठिर! मुझे इन्द्रसे भी कभी घबराहट नहीं होती॥ ३१-३२॥

युधिष्ठिर उवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गान्धारे मां योधय सुयोधन।
एक एकेन संगम्य संयुगे गदया बली॥ ३३॥
पुरुषो भव गान्धारे युध्यस्व सुसमाहितः।
अद्य ते जीवितं नास्ति यदीन्द्रोऽपि तवाश्रयः॥ ३४॥

युधिष्ठिर बोले—गान्धारीनन्दन! सुयोधन! उठो-उठो और मेरे साथ युद्ध करो। बलवान् तो तुम हो ही। युद्धमें गदाके द्वारा अकेले किसी एक वीरके साथ ही भिड़कर अपने पुरुषत्वका परिचय दो। एकाग्रचित्त होकर युद्ध करो। यदि इन्द्र भी तुम्हारे आश्रयदाता हो जायँ तो भी आज तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते॥ ३३-३४॥

संजय उवाच

एतत् स नरशार्दूलो नामृष्यत तवात्मजः।
सलिलान्तर्गतः श्वभ्रे महानाग इव श्वसन्॥ ३५॥

संजय कहते हैं—राजन्! युधिष्ठिरके इस कथनको जलमें स्थित हुआ आपका पुत्र पुरुषसिंह दुर्योधन नहीं सह सका। वह बिलमें बैठे हुए विशाल सर्पके समान लंबी साँस खींचने लगा॥ ३५॥

तथासौ वाक्प्रतोदेन तुद्यमानः पुनः पुनः।
वचो न ममृषे राजन्नुत्तमाश्वः कशामिव॥ ३६॥

राजन्! जैसे अच्छा घोड़ा कोड़ेकी मार नहीं सह सकता है, उसी प्रकार वचनरूपी चाबुकसे बार-बार पीड़ित किया जाता हुआ दुर्योधन युधिष्ठिरकी उस बातको सहन न कर सका॥ ३६॥

संक्षोभ्य सलिलं वेगाद् गदामादाय वीर्यवान्।
अद्रिसारमयीं गुर्वीं काञ्चनाङ्गदभूषणाम्॥ ३७॥
अन्तर्जलात् समुत्तस्थौ नागेन्द्र इव निःश्वसन्।

वह पराक्रमी वीर बड़े वेगसे सोनेके अंगदसे विभूषित एवं लोहेकी बनी हुई भारी गदा हाथमें लेकर पानीको चीरता हुआ उसके भीतरसे उठ खड़ा हुआ और सर्पराजके समान लंबी साँस खींचने लगा॥ ३७½॥

स भित्त्वा स्तम्भितं तोयं स्कन्धे कृत्वाऽऽयसीं गदाम्॥ ३८॥
उदतिष्ठत पुत्रस्ते प्रतपन् रश्मिवानिव।

कंधेपर लोहेकी गदा रखकर बँधे हुए जलका भेदन करके आपका वह पुत्र प्रतापी सूर्यके समान ऊपर उठा॥ ३८½॥

ततः शैक्यायसीं गुर्वीं जातरूपपरिष्कृताम्॥ ३९॥
गदां परामृशद् धीमान् धार्तराष्ट्रो महाबलः।

इसके बाद महाबली बुद्धिमान् दुर्योधनने लोहेकी बनी हुई वह सुवर्णभूषित भारी गदा हाथमें ली॥ ३९ १/२ ॥

गदाहस्तं तु तं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम्॥ ४०॥
प्रजानामिव संक्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम्।

हाथमें गदा लिये हुए दुर्योधनको पाण्डवोंने इस प्रकार देखा, मानो कोई शृंगयुक्त पर्वत हो अथवा प्रजापर कुपित होकर हाथमें त्रिशूल लिये हुए रुद्रदेव खड़े हों॥

सगदो भारतो भाति प्रतपन् भास्करो यथा॥ ४१॥
तमुत्तीर्णं महाबाहुं गदाहस्तमरिंदमम्।
मेनिरे सर्वभूतानि दण्डपाणिमिवान्तकम्॥ ४२॥

वह गदाधारी भरतवंशी वीर तपते हुए सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। शत्रुओंका दमन करनेवाले महाबाहु दुर्योधनको हाथमें गदा लिये जलसे निकला हुआ देख समस्त प्राणी ऐसा मानने लगे, मानो दण्डधारी यमराज प्रकट हो गये हों॥ ४१-४२॥

वज्रहस्तं यथा शक्रं शूलहस्तं यथा हरम्।
ददृशुः सर्वपञ्चालाः पुत्रं तव जनाधिप॥ ४३॥

नरेश्वर! सम्पूर्ण पांचालोंने आपके पुत्रको वज्रधारी इन्द्र और त्रिशूलधारी रुद्रके समान देखा॥ ४३॥

तमुत्तीर्णं तु सम्प्रेक्ष्य समहृष्यन्त सर्वशः।
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च तेऽन्योन्यस्य तलान् ददुः॥ ४४॥

उसे जलसे बाहर निकला देख समस्त पांचाल और पाण्डव हर्षसे खिल उठे और एक-दूसरेसे हाथ मिलाने लगे॥ ४४॥

अवहासं तु तं मत्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव।
उद्वृत्य नयने क्रुद्धो दिधक्षुरिव पाण्डवान्॥ ४५॥

महाराज! उनके इस हाथ मिलानेको दुर्योधनने अपना उपहास समझा; अतः क्रोधपूर्वक आँखें घुमाकर पाण्डवोंकी ओर इस प्रकार देखा, मानो उन्हें जलाकर भस्म कर देना चाहता हो॥ ४५॥

त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा संदष्टदशनच्छदः।
प्रत्युवाच ततस्तान् वै पाण्डवान् सह केशवान्॥ ४६॥

उसने अपनी भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ी करके दाँतोंसे ओठको दबाया और श्रीकृष्णसहित पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा॥ ४६॥

दुर्योधन उवाच

अस्यावहासस्य फलं प्रतिभोक्ष्यथ पाण्डवाः।
गमिष्यथ हताः सद्यः सपञ्चाला यमक्षयम्॥ ४७॥

दुर्योधन बोला—पांचालो और पाण्डवो! इस उपहासका फल तुम्हें अभी भोगना पड़ेगा; मेरे हाथसे मारे जाकर तुम तत्काल यमलोकमें पहुँच जाओगे॥ ४७॥

संजय उवाच

उत्थितश्च जलात् तस्मात् पुत्रो दुर्योधनस्तव।
अतिष्ठत गदापाणी रुधिरेण समुक्षितः॥ ४८॥

संजय कहते हैं—राजन्! आपका पुत्र दुर्योधन उस जलसे निकलकर हाथमें गदा लिये खड़ा हो गया। वह रक्तसे भीगा हुआ था॥ ४८॥

तस्य शोणितदिग्धस्य सलिलेन समुक्षितम्।
शरीरं स्म तदा भाति स्रवन्निव महीधरः॥ ४९॥

उस समय खूनसे लथपथ हुए दुर्योधनका शरीर पानीसे भीगकर जलका स्रोत बहानेवाले पर्वतके समान प्रतीत होता था॥ ४९॥

तमुद्यतगदं वीरं मेनिरे तत्र पाण्डवाः।
वैवस्वतमिव क्रुद्धं शूलपाणिमिव स्थितम्॥ ५०॥

वहाँ हाथमें गदा उठाये हुए वीर दुर्योधनको पाण्डवोंने क्रोधमें भरे हुए यमराज तथा हाथमें त्रिशूल लेकर खड़े हुए रुद्रके समान समझा॥ ५०॥

स मेघनिनदो हर्षान्नर्दन्निव च गोवृषः।
आजुहाव ततः पार्थान् गदया युधि वीर्यवान्॥ ५१॥

उस पराक्रमी वीरने हँकड़ते हुए साँड़के समान मेघके तुल्य गम्भीर गर्जना करते हुए बड़े हर्षके साथ गदायुद्धके लिये पाण्डवोंको ललकारा॥ ५१॥

दुर्योधन उवाच

एकैकेन च मां यूयमासीदत युधिष्ठिर।
न ह्येको बहुभिर्न्याय्यो वीरो योधयितुं युधि॥ ५२॥

दुर्योधन बोला—युधिष्ठिर! तुमलोग एक-एक करके मेरे साथ युद्धके लिये आते जाओ। रणभूमिमें किसी एक वीरको बहुसंख्यक वीरोंके साथ युद्धके लिये विवश करना न्यायसंगत नहीं है॥ ५२॥

न्यस्तवर्मा विशेषेण श्रान्तश्चाप्सु परिप्लुतः।
भृशं विक्षतगात्रश्च हतवाहनसैनिकः॥ ५३॥

विशेषतः उस वीरको जिसने अपना कवच उतार दिया हो, जो थककर जलमें गोता लगाकर विश्राम कर रहा हो, जिसके सारे अंग अत्यन्त घायल हो गये हों तथा जिसके वाहन और सैनिक मार डाले गये हों, किसी समूहके साथ युद्धके लिये बाध्य करना कदापि उचित नहीं है॥ ५३॥

अवश्यमेव योद्धव्यं सर्वैरेव मया सह।
युक्तं त्वयुक्तमित्येतद् वेत्सि त्वं चैव सर्वदा॥ ५४॥

मुझे तो तुम सब लोगोंके साथ अवश्य युद्ध करना है; परंतु इसमें क्या उचित है और क्या अनुचित; इसे तुम सदा अच्छी तरह जानते हो॥ ५४॥

युधिष्ठिर उवाच

मा भूदियं तव प्रज्ञा कथमेवं सुयोधन।
यदाभिमन्युं बहवो जघ्नुर्युधि महारथाः॥ ५५॥

युधिष्ठिरने कहा—सुयोधन! जब तुम बहुत-से महारथियोंने मिलकर युद्धमें अभिमन्युको मारा था, उस समय तुम्हारे मनमें ऐसा विचार क्यों नहीं उत्पन्न हुआ?॥ ५५॥

क्षत्रधर्मं भृशं क्रूरं निरपेक्षं सुनिर्घृणम्।
अन्यथा तु कथं हन्युरभिमन्युं तथा गतम्॥ ५६॥
सर्वे भवन्तो धर्मज्ञाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः।

वास्तवमें क्षत्रियधर्म बड़ा ही क्रूर, किसीकी भी अपेक्षा न रखनेवाला तथा अत्यन्त निर्दय है; अन्यथा तुम सब लोग धर्मज्ञ, शूरवीर तथा युद्धमें शरीरका विसर्जन करनेको उद्यत रहनेवाले होकर भी उस असहाय-अवस्थामें अभिमन्युका वध कैसे कर सकते थे॥ ५६ $\frac{१}{२}$॥

न्यायेन युध्यतां प्रोक्ता शक्रलोकगतिः परा॥ ५७॥
यद्येकस्तु न हन्तव्यो बहुभिर्धर्म एव तु।
तदाभिमन्युं बहवो निजघ्नुस्त्वन्मते कथम्॥ ५८॥

न्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले वीरोंके लिये परम उत्तम इन्द्रलोककी प्राप्ति बतलायी गयी है। 'बहुत-से योद्धा मिलकर किसी एक वीरको न मारें' यदि यही धर्म है तो तुम्हारी सम्मतिसे अनेक महारथियोंने अभिमन्युका वध कैसे किया?॥ ५८॥

सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम्।
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति॥ ५९॥

प्रायः सभी प्राणी जब स्वयं संकटमें पड़ जाते हैं तो अपनी रक्षाके लिये धर्मशास्त्रकी दुहाई देने लगते हैं और जब अपने उच्च पदपर प्रतिष्ठित होते हैं, उस समय उन्हें परलोकका दरवाजा बंद दिखायी देता है॥ ५९॥

आमुञ्च कवचं वीर मूर्धजान् यमयस्व च।
यच्चान्यदपि ते नास्ति तदप्यादत्स्व भारत॥ ६०॥

वीर भरतनन्दन! तुम कवच धारण कर लो, अपने केशोंको अच्छी तरह बाँध लो तथा युद्धकी और कोई आवश्यक सामग्री जो तुम्हारे पास न हो, उसे भी ले लो॥

इममेकं च ते कामं वीर भूयो ददाम्यहम्।
पञ्चानां पाण्डवेयानां येन त्वं योद्धुमिच्छसि॥ ६१॥
तं हत्वा वै भवान् राजा हतो वा स्वर्गमाप्नुहि।
ऋते च जीविताद् वीर युद्धे किं कर्म ते प्रियम्॥ ६२॥

वीर! मैं पुनः तुम्हें एक अभीष्ट वर देता हूँ—'पाँचों पाण्डवोंमेंसे जिसके साथ युद्ध करना चाहो, उस एकका ही वध कर देनेपर तुम राजा हो सकते हो अथवा यदि स्वयं मारे गये तो स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे। शूरवीर! बताओ, युद्धमें जीवनकी रक्षाके सिवा तुम्हारा और कौन-सा प्रिय कार्य हम कर सकते हैं?॥ ६१-६२॥

संजय उवाच

ततस्तव सुतो राजन् वर्म जग्राह काञ्चनम्।
विचित्रं च शिरस्त्राणं जाम्बूनदपरिष्कृतम्॥ ६३॥

संजय कहते हैं—राजन्! तदनन्तर आपके पुत्रने सुवर्णमय कवच तथा स्वर्णजटित विचित्र शिरस्त्राण धारण किया॥ ६३॥

सोऽवबद्धशिरस्त्राणः शुभकाञ्चनवर्मभृत्।
रराज राजन् पुत्रस्ते काञ्चनः शैलराडिव॥ ६४॥

महाराज! शिरस्त्राण बाँधकर सुन्दर सुवर्णमय कवच धारण करके आपका पुत्र स्वर्णमय गिरिराज मेरुके समान शोभा पाने लगा॥ ६४॥

संनद्धः सगदो राजन् सज्जः संग्राममूर्धनि।
अब्रवीत् पाण्डवान् सर्वान् पुत्रो दुर्योधनस्तव॥ ६५॥

नरेश्वर! युद्धके मुहानेपर सुसज्जित हो कवच बाँधे और गदा हाथमें लिये आपके पुत्र दुर्योधनने समस्त पाण्डवोंसे कहा—॥ ६५॥

भ्रातॄणां भवतामेको युध्यतां गदया मया।
सहदेवेन वा योत्स्ये भीमेन नकुलेन वा॥ ६६॥
अथवा फाल्गुनेनाद्य त्वया वा भरतर्षभ।

'भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे भाइयोंमेंसे कोई एक मेरे साथ गदाद्वारा युद्ध करे। मैं सहदेव, नकुल, भीमसेन, अर्जुन अथवा स्वयं तुमसे भी युद्ध कर सकता हूँ॥ ६६ $\frac{१}{२}$॥

योत्स्येऽहं संगरं प्राप्य विजेष्ये च रणाजिरे॥ ६७॥
अहमद्य गमिष्यामि वैरस्यान्तं सुदुर्गमम्।
गदया पुरुषव्याघ्र हेमपट्टनिबद्धया॥ ६८॥

'रणक्षेत्रमें पहुँचकर मैं तुममेंसे किसी एकके साथ युद्ध करूँगा और मेरा विश्वास है कि समरांगणमें विजय पाऊँगा। पुरुषसिंह! आज मैं सुवर्णपत्रजटित गदाके द्वारा वैरके उस पार पहुँच जाऊँगा, जहाँ जाना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है॥ ६७-६८॥

गदायुद्धे न मे कश्चित् सदृशोऽस्तीति चिन्तये।
गदया वो हनिष्यामि सर्वानेव समागतान्॥ ६९॥

'मैं इस बातको सदा याद रखता हूँ कि 'गदायुद्धमें मेरी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।' गदाके द्वारा सामने आनेपर मैं तुम सभी लोगोंको मार डालूँगा॥ ६९॥

न मे समर्थाः सर्वे वै योद्धुं न्यायेन केचन।
न युक्तमात्मना वक्तुमेवं गर्वोद्धतं वचः।
अथवा सफलं ह्येतत् करिष्ये भवतां पुरः॥ ७०॥

'तुम सभी लोग अथवा तुममेंसे कोई भी मेरे साथ न्यायपूर्वक युद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो। मुझे स्वयं ही अपने विषयमें इस प्रकार गर्वसे उद्धत वचन नहीं कहना चाहिये, तथापि कहना पड़ा है अथवा कहनेकी क्या आवश्यकता? मैं तुम्हारे सामने ही यह सब सफल कर दिखाऊँगा॥ ७०॥

अस्मिन् मुहूर्ते सत्यं वा मिथ्या वै तद् भविष्यति।
गृह्णातु च गदां यो वै योत्स्यतेऽद्य मया सह॥ ७१॥

'मेरा वचन सत्य है या मिथ्या, यह इसी मुहूर्तमें स्पष्ट हो जायगा। आज मेरे साथ जो भी युद्ध करनेको उद्यत हो, वह गदा उठावे'॥ ७१॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि युधिष्ठिरदुर्योधनसंवादे द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें युधिष्ठिर और दुर्योधनका संवादविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको फटकारना, भीमसेनकी प्रशंसा तथा भीम और दुर्योधनमें वाग्युद्ध

संजय उवाच

एवं दुर्योधने राजन् गर्जमाने मुहुर्मुहुः।
युधिष्ठिरस्य संक्रुद्धो वासुदेवोऽब्रवीदिदम्॥ १॥

संजय कहते हैं—राजन्! जब यों कहकर दुर्योधन बारंबार गर्जना करने लगा, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त कुपित होकर युधिष्ठिरसे बोले—॥ १॥

यदि नाम ह्ययं युद्धे वरयेत् त्वां युधिष्ठिर।
अर्जुनं नकुलं चैव सहदेवमथापि वा॥ २॥

'युधिष्ठिर! यदि यह दुर्योधन युद्धमें तुमको, अर्जुनको अथवा नकुल या सहदेवको ही युद्धके लिये वरण कर ले, तब क्या होगा?॥ २॥

किमिदं साहसं राजंस्त्वया व्याहृतमीदृशम्।
एकमेव निहत्याजौ भव राजा कुरुष्विति॥ ३॥

'राजन्! आपने क्यों ऐसी दुःसाहस पूर्ण बात कह डाली कि 'तुम हममेंसे एकको ही मारकर कौरवोंका राजा हो जाओ'॥ ३॥

न समर्थानहं मन्ये गदाहस्तस्य संयुगे।
एतेन हि कृता योग्या वर्षाणीह त्रयोदश॥ ४॥
आयसे पुरुषे राजन् भीमसेनजिघांसया।

'मैं नहीं मानता कि आपलोग युद्धमें गदाधारी दुर्योधनका सामना करनेमें समर्थ हैं। राजन्! इसने भीमसेनका वध करनेकी इच्छासे उनकी लोहेकी मूर्तिके साथ तेरह वर्षोंतक गदायुद्धका अभ्यास किया है॥ ४½॥

कथं नाम भवेत् कार्यमस्माभिर्भरतर्षभ॥ ५॥
साहसं कृतवांस्त्वं तु ह्यनुक्रोशान्नृपोत्तम।

'भरतभूषण! अब हमलोग अपना कार्य कैसे सिद्ध कर सकते हैं? नृपश्रेष्ठ! आपने दयावश यह दुःसाहसपूर्ण कार्य कर डाला है॥ ५½॥

नान्यमस्यानुपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे॥ ६॥
ऋते वृकोदरात् पार्थात् स च नातिकृतश्रमः।

'मैं कुन्तीपुत्र भीमसेनके सिवा, दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो गदायुद्धमें दुर्योधनका सामना कर सके, परंतु भीमसेनने भी अधिक परिश्रम नहीं किया है॥ ६½॥

तदिदं द्यूतमारब्धं पुनरेव यथा पुरा॥ ७॥
विषमं शकुनेश्चैव तव चैव विशाम्पते।

'इस समय आपने पहलेके समान ही पुनः यह जूएका खेल आरम्भ कर दिया है। प्रजानाथ! आपका यह जूआ शकुनिके जूएसे कहीं अधिक भयंकर है॥ ७½॥

बली भीमः समर्थश्च कृती राजा सुयोधनः॥ ८॥
बलवान् वा कृती वेति कृती राजन् विशिष्यते।

'राजन्! माना कि भीमसेन बलवान् और समर्थ हैं, परंतु राजा दुर्योधनने अभ्यास अधिक किया है। एक ओर बलवान् हो और दूसरी ओर युद्धका अभ्यासी, तो उनमें युद्धका अभ्यास करनेवाला ही बड़ा माना जाता है॥ ८½॥

सोऽयं राजंस्त्वया शत्रुः समे पथि निवेशितः॥ ९॥
न्यस्तश्चात्मा सुविषमे कृच्छ्रमापादिता वयम्।

'अतः महाराज! आपने अपने शत्रुको समान मार्गपर ला दिया है। अपने-आपको तो भारी संकटमें फँसाया ही है, हमलोगोंको भी भारी कठिनाईमें डाल दिया है॥ ९½॥

को नु सर्वान् विनिर्जित्य शत्रूनेकेन वैरिणा॥ १०॥
कृच्छ्रप्राप्तेन च तथा हारयेद् राज्यमागतम्।
पणित्वा चैकपाणेन रोचयेदेवमाहवम्॥ ११॥

'भला कौन ऐसा होगा, जो सब शत्रुओंको जीत लेनेके बाद जब एक ही बाकी रह जाय और

वह भी संकटमें पड़ा हो तो उसके साथ अपने हाथमें आये हुए राज्यको दाँवपर लगाकर हार जाय और इस प्रकार एकके साथ युद्ध करनेकी शर्त रखकर लड़ना पसंद करे?॥ १०-११॥

न हि पश्यामि तं लोके योऽद्य दुर्योधनं रणे।
गदाहस्तं विजेतुं वै शक्तः स्यादमरोऽपि हि॥ १२॥

'मैं संसारमें किसी भी शूरवीरको, वह देवता ही क्यों न हो, ऐसा नहीं देखता, जो आज रणभूमिमें गदाधारी दुर्योधनको परास्त करनेमें समर्थ हो॥ १२॥

न त्वं भीमो न नकुलः सहदेवोऽथ फाल्गुनः।
जेतुं न्यायेन शक्तो वै कृती राजा सुयोधनः॥ १३॥

'आप, भीमसेन, नकुल, सहदेव अथवा अर्जुन—कोई भी न्यायपूर्वक युद्ध करके दुर्योधनपर विजय नहीं पा सकते; क्योंकि राजा सुयोधनने गदायुद्धका अधिक अभ्यास किया है॥ १३॥

स कथं वदसे शत्रुं युध्यस्व गदयेति हि।
एकं च नो निहत्याजौ भव राजेति भारत॥ १४॥

'भारत! जब ऐसी अवस्था है, तब आपने अपने शत्रुसे कैसे यह कह दिया कि 'तुम गदाद्वारा युद्ध करो और हममेंसे किसी एकको मारकर राजा हो जाओ'॥ १४॥

वृकोदरं समासाद्य संशयो वै जये हि नः।
न्यायतो युध्यमानानां कृती ह्येष महाबलः॥ १५॥

'भीमसेनपर युद्धका भार रखा जाय तो भी हमें विजय मिलनेमें संदेह है; क्योंकि न्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले योद्धाओंमें महाबली सुयोधनका अभ्यास सबसे अधिक है॥ १५॥

एकं वास्मान् निहत्य त्वं भव राजेति वै पुनः।
नूनं न राज्यभागेषा पाण्डोः कुन्त्याश्च संततिः॥ १६॥
अत्यन्तवनवासाय सृष्टा भैक्ष्याय वा पुनः।

'फिर भी आपने बारंबार कहा है कि 'तुम हमलोगोंमेंसे एकको भी मारकर राजा हो जाओ।' निश्चय ही राजा पाण्डु और कुन्तीदेवीकी संतान राज्य भोगनेकी अधिकारिणी नहीं है। विधाताने इसे अनन्त कालतक वनवास करने अथवा भीख माँगनेके लिये ही पैदा किया है'॥ १६½॥

भीमसेन उवाच

मधुसूदन मा कार्षीर्विषादं यदुनन्दन॥ १७॥
अद्य पारं गमिष्यामि वैरस्य भृशदुर्गमम्।

यह सुनकर भीमसेन बोले—मधुसूदन! आप विषाद न करें। यदुनन्दन! मैं आज वैरकी उस अन्तिम सीमापर पहुँच जाऊँगा, जहाँ जाना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है॥ १७½॥

अहं सुयोधनं संख्ये हनिष्यामि न संशयः॥ १८॥
विजयो वै ध्रुवः कृष्ण धर्मराजस्य दृश्यते।

श्रीकृष्ण! इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि मैं युद्धमें सुयोधनको मार डालूँगा। मुझे तो धर्मराजकी निश्चय ही विजय दिखायी देती है॥ १८½॥

अध्यर्धेन गुणेनेयं गदा गुरुतरी मम॥ १९॥
न तथा धार्तराष्ट्रस्य मा कार्षीर्माधव व्यथाम्।
अहमेनं हि गदया संयुगे योद्धुमुत्सहे॥ २०॥

मेरी यह गदा दुर्योधनकी गदासे डेढ़गुनी भारी है। ऐसी दुर्योधनकी गदा नहीं है, अतः माधव! आप व्यथित न हों। मैं समरांगणमें इस गदाद्वारा इससे भिड़नेका उत्साह रखता हूँ॥ १९-२०॥

भवन्तः प्रेक्षकाः सर्वे मम सन्तु जनार्दन।
सामरानपि लोकांस्त्रीन् नानाशस्त्रधरान् युधि॥ २१॥
योधयेयं रणे कृष्ण किमुताद्य सुयोधनम्।

जनार्दन! आप सब लोग दर्शक बनकर मेरा युद्ध देखते रहें। श्रीकृष्ण! मैं रणक्षेत्रमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले देवताओंसहित तीनों लोकोंके साथ युद्ध कर सकता हूँ; फिर इस सुयोधनकी तो बात ही क्या है?॥

संजय उवाच

तथा सम्भाषमाणं तु वासुदेवो वृकोदरम्॥ २२॥
हृष्टः सम्पूजयामास वचनं चेदमब्रवीत्।

संजय कहते हैं—महाराज! भीमसेनने जब ऐसी बात कही, तब भगवान् श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करने लगे और इस प्रकार बोले—॥ २२½॥

त्वामाश्रित्य महाबाहो धर्मराजो युधिष्ठिरः॥ २३॥
निहतारिः स्वकां दीप्तां श्रियं प्राप्तो न संशयः।
त्वया विनिहताः सर्वे धृतराष्ट्रसुता रणे॥ २४॥

'महाबाहो! इसमें संदेह नहीं कि धर्मराज युधिष्ठिरने तुम्हारा आश्रय लेकर ही शत्रुओंका संहार करके पुनः अपनी उज्ज्वल राज्यलक्ष्मीको प्राप्त कर लिया है। धृतराष्ट्रके सभी पुत्र तुम्हारे ही हाथसे युद्धमें मारे गये हैं॥

राजानो राजपुत्राश्च नागाश्च विनिपातितः।
कलिङ्गा मागधाः प्राच्या गान्धाराः कुरवस्तथा॥ २५॥
त्वामासाद्य महायुद्धे निहताः पाण्डुनन्दन।

'तुमने कितने ही राजाओं, राजकुमारों और गजराजोंको मार गिराया है। पाण्डुनन्दन! कलिंग, मगध, प्राच्य, गान्धार और कुरुदेशके योद्धा भी इस महायुद्धमें तुम्हारे सामने आकर कालके गालमें चले गये हैं॥ २५½॥

हत्वा दुर्योधनं चापि प्रयच्छोर्वीं ससागराम्॥ २६॥
धर्मराजाय कौन्तेय यथा विष्णुः शचीपतेः।

'कुन्तीकुमार! जैसे भगवान् विष्णुने शचीपति इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य प्रदान किया था, उसी प्रकार तुम भी दुर्योधनका वध करके समुद्रोंसहित यह सारी पृथ्वी धर्मराज युधिष्ठिरको समर्पित कर दो॥ २६½ ॥

त्वां च प्राप्य रणे पापो धार्तराष्ट्रो विनङ्क्ष्यति॥ २७॥
त्वमस्य सक्थिनी भङ्क्त्वा प्रतिज्ञां पालयिष्यसि।

'अवश्य ही रणभूमिमें तुमसे टक्कर लेकर पापी दुर्योधन नष्ट हो जायगा और तुम उसकी दोनों जाँघें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञाका पालन करोगे॥ २७½ ॥

यत्नेन तु सदा पार्थ योद्धव्यो धृतराष्ट्रजः॥ २८॥
कृती च बलवांश्चैव युद्धशौण्डश्च नित्यदा।

'किंतु पार्थ! तुम्हें दुर्योधनके साथ सदा प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना चाहिये; क्योंकि वह अभ्यासकुशल, बलवान् और युद्धकी कलामें निरन्तर चतुर है'॥ २८½ ॥

ततस्तु सात्यकी राजन् पूजयामास पाण्डवम्॥ २९॥
पञ्चालाः पाण्डवेयाश्च धर्मराजपुरोगमाः।
तद् वचो भीमसेनस्य सर्व एवाभ्यपूजयन्॥ ३०॥

राजन्! तदनन्तर सात्यकिने पाण्डुपुत्र भीमसेनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। धर्मराज आदि पाण्डव तथा पांचाल सभीने भीमसेनके उस वचनका बड़ा आदर किया॥ २९-३०॥

ततो भीमबलो भीमो युधिष्ठिरमथाब्रवीत्।
सृञ्जयैः सह तिष्ठन्तं तपन्तमिव भास्करम्॥ ३१॥

तदनन्तर भयंकर बलशाली भीमसेनने सृंजयोंके साथ खड़े हुए तपते सूर्यके समान तेजस्वी युधिष्ठिरसे कहा—॥ ३१॥

अहमेतेन संगम्य संयुगे योद्धुमुत्सहे।
न हि शक्तो रणे जेतुं मामेष पुरुषाधमः॥ ३२॥

'भैया! मैं रणभूमिमें इस दुर्योधनके साथ भिड़कर लड़नेका उत्साह रखता हूँ। यह नराधम मुझे युद्धमें परास्त नहीं कर सकता॥ ३२॥

अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि निहितं हृदये भृशम्।
सुयोधने धार्तराष्ट्रे खाण्डवेऽग्निमिवार्जुनः॥ ३३॥

'मेरे हृदयमें दीर्घकालसे जो अत्यन्त क्रोध संचित है, उसे आज मैं धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनपर उसी प्रकार छोड़ूँगा, जैसे अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निदेवको छोड़ा था॥ ३३॥

शल्यमद्योद्धरिष्यामि तव पाण्डव हृच्छयम्।
निहत्य गदया पापमद्य राजन् सुखी भव॥ ३४॥

'पाण्डुनन्दन! नरेश! आज मैं गदाद्वारा पापी दुर्योधनका वध करके आपके हृदयका काँटा निकाल दूँगा; अतः आप सुखी होइये॥ ३४॥

अद्य कीर्तिमयीं मालां प्रतिमोक्ष्ये तवानघ।
प्राणान् श्रियं च राज्यं च मोक्ष्यतेऽद्य सुयोधनः॥ ३५॥

'अनघ! आज आपके गलेमें मैं कीर्तिमयी माला पहनाऊँगा तथा आज यह दुर्योधन अपने राज्यलक्ष्मी और प्राणोंका परित्याग करेगा॥ ३५॥

राजा च धृतराष्ट्रोऽद्य श्रुत्वा पुत्रं मया हतम्।
स्मरिष्यत्यशुभं कर्म यत् तच्छकुनिबुद्धिजम्॥ ३६॥

'आज मेरे हाथसे पुत्रको मारा गया सुनकर राजा धृतराष्ट्र शकुनिकी सलाहसे किये हुए अपने अशुभ कर्मोंको याद करेंगे'॥ ३६॥

इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठो गदामुद्यम्य वीर्यवान्।
उदतिष्ठत युद्धाय शक्रो वृत्रमिवाह्वयन्॥ ३७॥

ऐसा कहकर भरतवंशी वीरोंमें श्रेष्ठ पराक्रमी भीमसेन गदा उठाकर युद्धके लिये उठ खड़े हुए और जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको ललकारा था, उसी प्रकार उन्होंने दुर्योधनका आह्वान किया॥ ३७॥

तदाह्वानममृष्यन् वै तव पुत्रोऽतिवीर्यवान्।
प्रत्युपस्थित एवाशु मत्तो मत्तमिव द्विपम्॥ ३८॥

महाराज! उस समय आपका अत्यन्त पराक्रमी पुत्र दुर्योधन भीमसेनकी उस ललकारको न सह सका। वह तुरंत ही उनका सामना करनेके लिये उपस्थित हो गया, मानो एक मतवाला हाथी दूसरे मदोन्मत्त गजराजसे भिड़नेको उद्यत हो गया हो॥ ३८॥

गदाहस्तं तव सुतं युद्धाय समुपस्थितम्।
ददृशुः पाण्डवाः सर्वे कैलासमिव शृङ्गिणम्॥ ३९॥

हाथमें गदा लेकर युद्धके लिये उपस्थित हुए आपके पुत्रको समस्त पाण्डवोंने शृंगधारी कैलासपर्वतके समान देखा॥ ३९॥

तमेकाकिनमासाद्य धार्तराष्ट्रं महाबलम्।
वियूथमिव मातङ्गं समहृष्यन्त पाण्डवाः॥ ४०॥

जैसे कोई मतवाला हाथी अपने यूथसे बिछुड़ गया हो, उसी प्रकार अकेले आये हुए आपके महाबली पुत्र दुर्योधनको पाकर समस्त पाण्डव हर्षसे खिल उठे॥ ४०॥

न सम्भ्रमो न च भयं न च ग्लानिर्न च व्यथा।
आसीद् दुर्योधनस्यापि स्थितः सिंह इवाहवे॥ ४१॥

उस समय दुर्योधनके मनमें न घबराहट थी, न भय। न ग्लानि थी, न व्यथा। वह युद्धस्थलमें सिंहके समान निर्भय खड़ा था॥ ४१॥

समुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम्।
भीमसेनस्तदा राजन् दुर्योधनमथाब्रवीत्॥ ४२॥

राजन्! शृंगधारी कैलासपर्वतके समान गदा उठाये दुर्योधनको देखकर भीमसेनने उससे कहा— ॥ ४२ ॥

राज्ञापि धृतराष्ट्रेण त्वया चास्मासु यत् कृतम्।
स्मर तद् दुष्कृतं कर्म यद् भूतं वारणावते॥ ४३ ॥

'दुर्योधन! तूने तथा राजा धृतराष्ट्रने भी हमलोगोंपर जो-जो अत्याचार किया था और वारणावत नगरमें जो कुछ हुआ था, उन सारे पापकर्मोंको याद कर ले॥ ४३ ॥

द्रौपदी च परिक्लिष्टा सभामध्ये रजस्वला।
द्यूते यद् विजितो राजा शकुनेर्बुद्धिनिश्चयात्॥ ४४ ॥
यानि चान्यानि दुष्टात्मन् पापानि कृतवानसि।
अनागःसु च पार्थेषु तस्य पश्य महत् फलम्॥ ४५ ॥

'दुरात्मन्! तूने भरी सभामें रजस्वला द्रौपदीको क्लेश पहुँचाया, शकुनिकी सलाह लेकर राजा युधिष्ठिरको कपटपूर्वक जूएमें हराया तथा निरपराध कुन्तीपुत्रोंपर दूसरे-दूसरे जो पाप एवं अत्याचार किये थे, उन सबका महान् अशुभ फल आज तू अपनी आँखों देख ले॥ ४४-४५ ॥

त्वत्कृते निहतः शेते शरतल्पे महायशाः।
गाङ्गेयो भरतश्रेष्ठः सर्वेषां नः पितामहः॥ ४६ ॥

'तेरे ही कारण हम सब लोगोंके पितामह महायशस्वी गंगानन्दन भरतश्रेष्ठ भीष्मजी आज शरशय्यापर पड़े हुए हैं॥ ४६ ॥

हतो द्रोणश्च कर्णश्च हतः शल्यः प्रतापवान्।
वैरस्य चादिकर्तासौ शकुनिर्निहतो रणे॥ ४७ ॥

'तेरी ही करतूतोंसे आचार्य द्रोण, कर्ण, प्रतापी शल्य तथा वैरका आदिस्रष्टा वह शकुनि—ये सभी रणभूमिमें मारे गये हैं॥ ४७ ॥

भ्रातरस्ते हताः शूराः पुत्राश्च सहसैनिकाः।
राजानश्च हताः शूराः समरेष्वनिवर्तिनः॥ ४८ ॥

'तेरे भाई, शूरवीर पुत्र, सैनिक तथा युद्धमें पीठ न दिखानेवाले अन्य बहुत-से शौर्यसम्पन्न नरेश भी मृत्युके अधीन हो गये हैं॥ ४८ ॥

एते चान्ये च निहता बहवः क्षत्रियर्षभाः।
प्रातिकामी तथा पापो द्रौपद्याः क्लेशकृद्धतः॥ ४९ ॥

'ये तथा दूसरे बहुसंख्यक क्षत्रियशिरोमणि वीर मार डाले गये हैं। द्रौपदीको क्लेश पहुँचानेवाले पापी प्रातिकामीका भी वध हो चुका है॥ ४९ ॥

अवशिष्टस्त्वमेवैकः कुलघ्नोऽधमपूरुषः।
त्वामप्यद्य हनिष्यामि गदया नात्र संशयः॥ ५० ॥

'अब इस वंशका नाश करनेवाला नराधम एकमात्र तू ही बच गया है। आज इस गदासे तुझे भी मार डालूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ ५० ॥

अद्य तेऽहं रणे दर्पं सर्वं नाशयिता नृप।
राज्याशां विपुलां राजन् पाण्डवेषु च दुष्कृतम्॥ ५१ ॥

'नरेश्वर! आज रणभूमिमें मैं तेरा सारा घमंड चूर्ण कर दूँगा। राजन्! तेरे मनमें राज्य पानेकी जो बड़ी भारी लालसा है, उसका तथा पाण्डवोंपर तेरे द्वारा किये जानेवाले अत्याचारोंका भी अन्त कर डालूँगा'॥ ५१ ॥

दुर्योधन उवाच

किं कत्थितेन बहुना युद्धयस्वाद्य मया सह।
अद्य तेऽहं विनेष्यामि युद्धश्रद्धां वृकोदर॥ ५२ ॥

दुर्योधन बोला—वृकोदर! बहुत बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ? आज मेरे साथ भिड़ तो सही। मैं युद्धका तेरा सारा हौसला मिटा दूँगा॥ ५२ ॥

किं न पश्यसि मां पाप गदायुद्धे व्यवस्थितम्।
हिमवच्छिखराकारां प्रगृह्य महतीं गदाम्॥ ५३ ॥

पापी! क्या तू देखता नहीं कि मैं हिमालयके शिखरकी भाँति विशाल गदा हाथमें लेकर युद्धके लिये खड़ा हूँ॥ ५३ ॥

गदिनं कोऽद्य मां पाप हन्तुमुत्सहते रिपुः।
न्यायतो युद्ध्यमानश्च देवेष्वपि पुरन्दरः॥ ५४ ॥

ओ पापी! आज कौन ऐसा शत्रु है, जो मेरे हाथमें गदा रहते हुए भी मुझे मार सके। न्यायपूर्वक युद्ध करते हुए देवताओंके राजा इन्द्र भी मुझे परास्त नहीं कर सकते॥ ५४ ॥

मा वृथा गर्ज कौन्तेय शारदाभ्रमिवाजलम्।
दर्शयस्व बलं युद्धे यावत् तत् तेऽद्य विद्यते॥ ५५ ॥

कुन्तीपुत्र! शरद्-ऋतुके निर्जल मेघकी भाँति व्यर्थ गर्जना न कर। आज तेरे पास जितना बल हो, वह सब युद्धमें दिखा॥ ५५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा पाण्डवाः सहसृञ्जयाः।
सर्वे सम्पूजयामासुस्तद्वचो विजिगीषवः॥ ५६ ॥

दुर्योधनका यह वचन सुनकर विजयकी इच्छा रखनेवाले समस्त पाण्डवों और सृंजयोंने भी उसकी बड़ी सराहना की॥ ५६ ॥

उन्मत्तमिव मातङ्गं तलशब्देन मानवाः।
भूयः संहर्षयामासू राजन् दुर्योधनं नृपम्॥ ५७ ॥

राजन्! जैसे मतवाले हाथीको मनुष्य ताली बजाकर कुपित कर देते हैं, उसी प्रकार उन्होंने बारंबार ताल ठोककर राजा दुर्योधनके युद्धविषयक हर्ष और उत्साहको बढ़ाया॥ ५७ ॥

बृंहन्ति कुञ्जरास्तत्र हया हेषन्ति चासकृत्।
शस्त्राणि सम्प्रदीप्यन्ते पाण्डवानां जयैषिणाम्॥ ५८॥

उस समय वहाँ विजयाभिलाषी पाण्डवोंके हाथी बारंबार चिग्घाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे। साथ ही उनके अस्त्र-शस्त्र दीप्तिसे प्रकाशित हो उठे॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि भीमसेनदुर्योधनसंवादे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें भीमसेन और दुर्योधनका संवादविषयक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

बलरामजीका आगमन और स्वागत तथा भीमसेन और दुर्योधनके युद्धका आरम्भ

संजय उवाच

तस्मिन् युद्धे महाराज सुसंवृत्ते सुदारुणे।
उपविष्टेषु सर्वेषु पाण्डवेषु महात्मसु॥ १॥
ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते।
श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः॥ २॥

संजय कहते हैं—महाराज! वह अत्यन्त भयंकर युद्ध जब आरम्भ होने लगा और समस्त महात्मा पाण्डव उसे देखनेके लिये बैठ गये, उस समय अपने दोनों शिष्योंका संग्राम उपस्थित होनेपर उसका समाचार सुन तालचिह्नित ध्वजवाले हलधारी बलरामजी वहाँ आ पहुँचे॥ १-२॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः पाण्डवाः सहकेशवाः।
उपगम्योपसंगृह्य विधिवत् प्रत्यपूजयन्॥ ३॥

उन्हें देखकर श्रीकृष्णसहित पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने निकट जाकर उनका चरणस्पर्श किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की॥ ३॥

पूजयित्वा ततः पश्चादिदं वचनमब्रुवन्।
शिष्ययोः कौशलं युद्धे पश्य रामेति पार्थिव॥ ४॥

राजन्! पूजनके पश्चात् उन्होंने इस प्रकार कहा—'बलरामजी! अपने दोनों शिष्योंका युद्धकौशल देखिये'॥

अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम्।
दुर्योधनं च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम्॥ ५॥
चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥ ६॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव।

उस समय बलरामजीने श्रीकृष्ण, पाण्डव तथा हाथमें गदा लेकर खड़े हुए कुरुवंशी दुर्योधनकी ओर देखकर कहा—'माधव! तीर्थयात्राके लिये निकले हुए आज मुझे बयालीस दिन हो गये। पुष्य नक्षत्रमें चला था और श्रवण नक्षत्रमें पुनः वापस आया हूँ। मैं अपने दोनों शिष्योंका गदायुद्ध देखना चाहता हूँ'॥ ५-६½॥

ततस्तदा गदाहस्तौ दुर्योधनवृकोदरौ॥ ७॥
युद्धभूमिं गतौ वीरावुभावेव रराजतुः।

तदनन्तर गदा हाथमें लेकर दुर्योधन और भीमसेन युद्ध-भूमिमें उतरे। वे दोनों ही वीर वहाँ बड़ी शोभा पा रहे थे॥ ७½॥

ततो युधिष्ठिरो राजा परिष्वज्य हलायुधम्॥ ८॥
स्वागतं कुशलं चास्मै पर्यपृच्छद् यथातथम्।

उस समय राजा युधिष्ठिरने बलरामजीको हृदयसे लगाकर उनका स्वागत किया और यथोचितरूपसे उनका कुशल-समाचार पूछा॥ ८½॥

कृष्णौ चापि महेष्वासावभिवाद्य हलायुधम्॥ ९॥
सस्वजाते परिप्रीतौ प्रीयमाणौ यशस्विनौ।

यशस्वी महाधनुर्धर श्रीकृष्ण और अर्जुन भी बलरामजीको प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्न हो प्रेमपूर्वक उनके हृदयसे लग गये॥ ९½॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः॥ १०॥
अभिवाद्य स्थिता राजन् रौहिणेयं महाबलम्।

राजन्! माद्रीके दोनों शूरवीर पुत्र नकुल-सहदेव और द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी रोहिणीनन्दन महाबली बलरामजीको प्रणाम करके उनके पास विनीतभावसे खड़े हो गये॥

भीमसेनोऽथ बलवान् पुत्रस्तव जनाधिप॥ ११॥
तथैव चोद्यतगदौ पूजयामासतुर्बलम्।

नरेश्वर! भीमसेन और आपका बलवान् पुत्र दुर्योधन इन दोनोंने गदाको ऊँचे उठाकर बलरामजीके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया॥ ११½॥

स्वागतेन च ते तत्र प्रतिपूज्य समन्ततः॥ १२॥
पश्य युद्धं महाबाहो इति ते राममब्रुवन्।
एवमूचुर्महात्मानं रौहिणेयं नराधिपाः॥ १३॥

वे सब नरेश सब ओरसे स्वागतपूर्वक समादर करके वहाँ महात्मा रोहिणीपुत्र बलरामजीसे बोले—'महाबाहो! युद्ध देखिये'॥ १२-१३॥

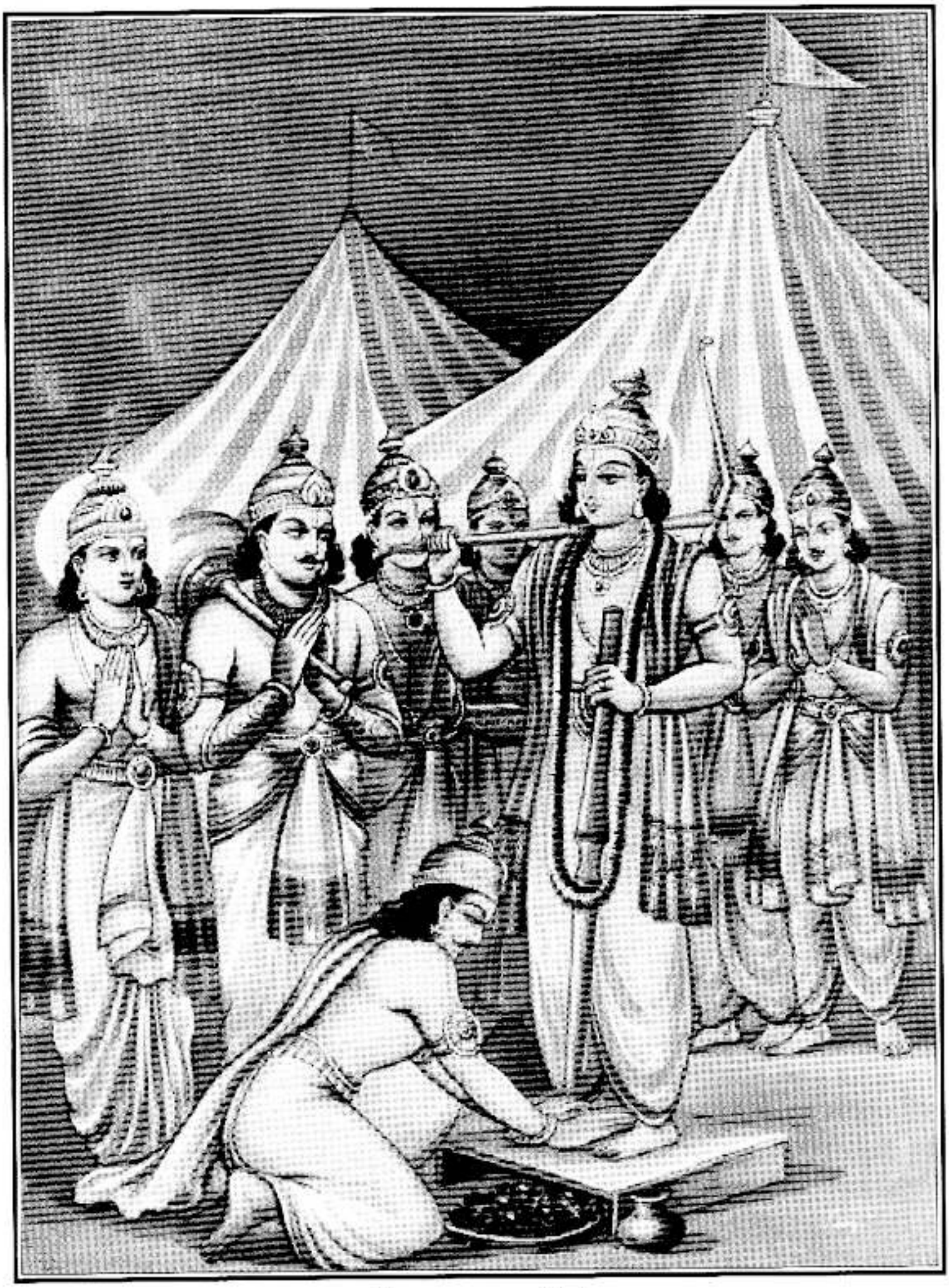

पाण्डवोंद्वारा बलरामजीकी पूजा

परिष्वज्य तदा रामः पाण्डवान् सहसृञ्जयान्।
अपृच्छत् कुशलं सर्वान् पार्थिवांश्चामितौजसः॥ १४॥

उस समय बलरामजीने पाण्डवों, सृंजयों तथा अमित बलशाली सम्पूर्ण भूपालोंको हृदयसे लगाकर उनका कुशल-मंगल पूछा॥ १४॥

तथैव ते समासाद्य पप्रच्छुस्तमनामयम्।
प्रत्यभ्यर्च्य हली सर्वान् क्षत्रियांश्च महात्मनः॥ १५॥
कृत्वा कुशलसंयुक्तां संविदं च यथावयः।
जनार्दनं सात्यकिं च प्रेम्णा स परिषस्वजे॥ १६॥

उसी प्रकार वे राजा भी उनसे मिलकर उनके आरोग्यका समाचार पूछने लगे। हलधरने सम्पूर्ण महामनस्वी क्षत्रियोंका समादर करके अवस्थाके अनुसार क्रमशः उनसे कुशल-मंगलकी जिज्ञासा की और श्रीकृष्ण तथा सात्यकिको प्रेमपूर्वक छातीसे लगा लिया॥

मूर्ध्नि चैतावुपाघ्राय कुशलं पर्यपृच्छत।
तौ च तं विधिवद् राजन् पूजयामासतुर्गुरुम्॥ १७॥
ब्रह्माणमिव देवेशमिन्द्रोपेन्द्रौ मुदान्वितौ।

राजन्! इन दोनोंका मस्तक सूँघकर उन्होंने कुशल-समाचार पूछा और उन दोनोंने भी अपने गुरुजन बलरामजीका विधिपूर्वक पूजन किया। ठीक उसी तरह, जैसे इन्द्र और उपेन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक देवेश्वर ब्रह्माजीकी पूजा की थी॥ १७½॥

ततोऽब्रवीद् धर्मसुतो रौहिणेयमरिंदमम्॥ १८॥
इदं भ्रात्रोर्महायुद्धं पश्य रामेति भारत।

भारत! तत्पश्चात् धर्मपुत्र युधिष्ठिरने शत्रुदमन रोहिणीकुमारसे कहा—'बलरामजी! दोनों भाइयोंका यह महान् युद्ध देखिये'॥ १८½॥

तेषां मध्ये महाबाहुः श्रीमान् केशवपूर्वजः॥ १९॥
न्यविशत् परमप्रीतः पूज्यमानो महारथैः।

उनके ऐसा कहनेपर श्रीकृष्णके बड़े भ्राता महाबाहु बलवान् श्रीबलरामजी उन महारथियोंसे पूजित हो उनके बीचमें अत्यन्त प्रसन्न होकर बैठे॥ १९½॥

स बभौ राजमध्यस्थो नीलवासाः सितप्रभः॥ २०॥
दिवीव नक्षत्रगणैः परिकीर्णो निशाकरः।

राजाओंके मध्यभागमें बैठे हुए नीलाम्बरधारी गौरकान्ति बलरामजी आकाशमें नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे॥ २०½॥

ततस्तयोः संनिपातस्तुमुलो लोमहर्षणः॥ २१॥
आसीदन्तकरो राजन् वैरस्य तव पुत्रयोः॥ २२॥

राजन्! तदनन्तर आपके उन दोनों पुत्रोंमें वैरका अन्त कर देनेवाला भयंकर एवं रोमांचकारी संग्राम होने लगा॥ २१-२२॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवागमने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलरामजीका आगमनविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

बलदेवजीकी तीर्थयात्रा तथा प्रभास-क्षेत्रके प्रभावका वर्णनके प्रसंगमें चन्द्रमाके शापमोचनकी कथा

जनमेजय उवाच

पूर्वमेव यदा रामस्तस्मिन् युद्ध उपस्थिते।
आमन्त्र्य केशवं यातो वृष्णिभिः सहितः प्रभुः॥ १॥
साहाय्यं धार्तराष्ट्रस्य न च कर्तास्मि केशव।
न चैव पाण्डुपुत्राणां गमिष्यामि यथागतम्॥ २॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! जब महाभारतयुद्ध आरम्भ होनेका समय निकट आ गया, उस समय युद्ध प्रारम्भ होनेसे पहले ही भगवान् बलराम श्रीकृष्णकी सम्मति ले, अन्य वृष्णिवंशियोंके साथ तीर्थयात्राके लिये चले गये और जाते समय यह कह गये कि 'केशव! मैं न तो धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनकी सहायता करूँगा और न पाण्डवोंकी ही'॥ १-२॥

एवमुक्त्वा तदा रामो यातः क्षत्रनिबर्हणः।
तस्य चागमनं भूयो ब्रह्मन् शंसितुमर्हसि॥ ३॥

विप्रवर! उन दिनों ऐसी बात कहकर जब क्षत्रियसंहारक बलरामजी चले गये, तब उनका पुनः आगमन कैसे हुआ, यह बतानेकी कृपा करें॥ ३॥

आख्याहि मे विस्तरशः कथं राम उपस्थितः।
कथं च दृष्टवान् युद्धं कुशलो ह्यसि सत्तम॥ ४॥

साधुशिरोमणे! आप कथा कहनेमें कुशल हैं; अतः मुझे विस्तारपूर्वक बताइये कि बलरामजी कैसे वहाँ उपस्थित हुए और किस प्रकार उन्होंने युद्ध देखा?॥ ४॥

वैशम्पायन उवाच

उपप्लव्ये निविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु।
प्रेषितो धृतराष्ट्रस्य समीपं मधुसूदनः॥ ५॥
शमं प्रति महाबाहो हितार्थं सर्वदेहिनाम्।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! जिन दिनों महामनस्वी पाण्डव उपप्लव्य नामक स्थानमें छावनी डालकर ठहरे हुए थे, उन्हीं दिनोंकी बात है। महाबाहो! पाण्डवोंने समस्त प्राणियोंके हितके लिये सन्धिके उद्देश्यसे भगवान् श्रीकृष्णको धृतराष्ट्रके पास भेजा॥ ५½॥

स गत्वा हास्तिनपुरं धृतराष्ट्रं समेत्य च॥ ६॥
उक्तवान् वचनं तथ्यं हितं चैव विशेषतः।

भगवान्‌ने हस्तिनापुर जाकर धृतराष्ट्रसे भेंट की और उनसे सबके लिये विशेष हितकारक एवं यथार्थ बातें कहीं॥ ६½॥

न च तत् कृतवान् राजा यथा ख्यातं हि तत् पुरा॥ ७॥
अनवाप्य शमं तत्र कृष्णः पुरुषसत्तमः।
आगच्छत महाबाहुरुपप्लव्यं जनाधिप॥ ८॥

नरेश्वर! किंतु राजा धृतराष्ट्रने भगवान्‌का कहना नहीं माना। यह सब बात पहले यथार्थरूपसे बतायी गयी है। महाबाहु पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ संधि करानेमें सफलता न मिलनेपर पुनः उपप्लव्यमें ही लौट आये॥ ७-८॥

ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्तराष्ट्रविसर्जितः।
अक्रियायां नरव्याघ्र पाण्डवानिदमब्रवीत्॥ ९॥

नरव्याघ्र! कार्य न होनेपर धृतराष्ट्रसे विदा ले वहाँसे लौटे हुए श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे इस प्रकार कहा—॥ ९॥

न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः।
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया॥ १०॥

'कौरव कालके अधीन हो रहे हैं, इसलिये वे मेरा कहना नहीं मानते हैं। पाण्डवो! अब तुमलोग मेरे साथ पुष्य नक्षत्रमें युद्धके लिये निकल पड़ो,॥ १०॥

ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः।
प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः॥ ११॥

इसके बाद जब सेनाका बँटवारा होने लगा, तब बलवानोंमें श्रेष्ठ महामना बलदेवजीने अपने भाई श्रीकृष्णसे कहा—॥ ११॥

तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन।
क्रियतामिति तत् कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा॥ १२॥

'महाबाहु मधुसूदन! उन कौरवोंकी भी सहायता करना। परंतु श्रीकृष्णने उस समय उनकी यह बात नहीं मानी'॥ १२॥

ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः॥ १३॥

इससे मन-ही-मन कुपित और खिन्न होकर महायशस्वी यदुनन्दन हलधर सरस्वतीके तटपर तीर्थयात्राके लिये चल दिये॥ १३॥

मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः॥ १४॥

इसके बाद शत्रुओंका दमन करनेवाले कृतवर्माने सम्पूर्ण यादवोंके साथ अनुराधानक्षत्रमें दुर्योधनका पक्ष ग्रहण किया॥ १४॥

युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान्।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः॥ १५॥
पाण्डवेयान् पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून्।

सात्यकिसहित भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंका पक्ष लिया। रोहिणीनन्दन शूरवीर बलरामजीके चले जानेपर मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको आगे करके पुष्यनक्षत्रमें कुरुक्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया॥ १५½॥

गच्छन्नेव पथिस्थस्तु रामः प्रेष्यानुवाच ह॥ १६॥
सम्भारांस्तीर्थयात्रायां सर्वोपकरणानि च।
आनयध्वं द्वारकायामग्नीन् वै याजकांस्तथा॥ १७॥

यात्रा करते हुए बलरामजीने स्वयं मार्गमें ही रहकर अपने सेवकोंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र ही द्वारका जाकर वहाँसे तीर्थयात्रामें काम आनेवाली सब सामग्री, समस्त आवश्यक उपकरण, अग्निहोत्रकी अग्नि तथा पुरोहितोंको ले आओ॥ १६-१७॥

सुवर्णं रजतं चैव धेनूर्वासांसि वाजिनः।
कुञ्जरांश्च रथांश्चैव खरोष्ट्रं वाहनानि च॥ १८॥
क्षिप्रमानीयतां सर्वं तीर्थहेतोः परिच्छदम्।

'सोना, चाँदी, दूध देनेवाली गायें, वस्त्र, घोड़े, हाथी, रथ, गदहा और ऊँट आदि वाहन एवं तीर्थोपयोगी सब सामान शीघ्र ले आओ॥ १८½॥

प्रतिस्रोतः सरस्वत्या गच्छध्वं शीघ्रगामिनः॥ १९॥
ऋत्विजश्चानयध्वं वै शतशश्च द्विजर्षभान्।

'शीघ्रगामी सेवको! तुम सरस्वतीके स्रोतकी ओर चलो और सैकड़ों श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा ऋत्विजोंको ले आओ'॥

एवं संदिश्य तु प्रेष्यान् बलदेवो महाबलः॥ २०॥
तीर्थयात्रां ययौ राजन् कुरूणां वैशसे तदा।
सरस्वतीं प्रतिस्रोतः समन्तादभिजग्मिवान्॥ २१॥
ऋत्विग्भिश्च सुहृद्भिश्च तथान्यैर्द्विजसत्तमैः।
रथैर्गजैस्तथाश्वैश्च प्रेष्यैश्च भरतर्षभ॥ २२॥
गोखरोष्ट्रप्रयुक्तैश्च यानैश्च बहुभिर्वृतः।

राजन्! महाबली बलदेवजीने सेवकोंको ऐसी आज्ञा देकर उस समय कुरुक्षेत्रमें ही तीर्थयात्रा आरम्भ कर दी। भरतश्रेष्ठ! वे सरस्वतीके स्रोतकी ओर चलकर उसके दोनों तटोंपर गये। उनके साथ ऋत्विज, सुहृद्, अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मण, रथ, हाथी, घोड़े और सेवक भी थे। बैल, गदहा और ऊँटोंसे जुते हुए बहुसंख्यक रथोंसे बलरामजी घिरे हुए थे॥ २०—२२½॥

श्रान्तानां क्लान्तवपुषां शिशूनां विपुलायुषाम्॥ २३॥
देशे देशे तु देयानि दानानि विविधानि च।
अर्चायै चार्थिनां राजन् क्लृप्तानि बहुशस्तथा॥ २४॥

राजन्! उस समय उन्होंने देश-देशमें थके-माँदे रोगी, बालक और वृद्धोंका सत्कार करनेके लिये नाना प्रकारकी देनेयोग्य वस्तुएँ प्रचुर मात्रामें तैयार करा रखी थीं॥

तानि यानीह देशेषु प्रतीक्षन्ति स्म भारत।
बुभुक्षितानामर्थाय क्लृप्तमन्नं समन्ततः॥ २५॥

भारत! विभिन्न देशोंमें लोग जिन वस्तुओंकी इच्छा रखते थे, उन्हें वे ही दी जाती थीं। भूखोंको भोजन करानेके लिये सर्वत्र अन्नका प्रबन्ध किया गया था॥

यो यो यत्र द्विजो भोज्यं भोक्तुं कामयते तदा।
तस्य तस्य तु तत्रैवमुपजह्रुस्तदा नृप॥ २६॥

नरेश्वर! जिस किसी देशमें जो-जो ब्राह्मण जब कभी भोजनकी इच्छा प्रकट करता, बलरामजीके सेवक उसे वहीं तत्काल खाने-पीनेकी वस्तुएँ अर्पित करते थे॥ २६॥

तत्र तत्र स्थिता राजन् रौहिणेयस्य शासनात्।
भक्ष्यपेयस्य कुर्वन्ति राशींस्तत्र समन्ततः॥ २७॥

राजन्! रोहिणीकुमार बलरामजीकी आज्ञासे उनके सेवक विभिन्न तीर्थस्थानोंमें खाने-पीनेकी वस्तुओंके ढेर लगाये रखते थे॥ २७॥

वासांसि च महार्हाणि पर्यङ्कास्तरणानि च।
पूजार्थं तत्र क्लृप्तानि विप्राणां सुखमिच्छताम्॥ २८॥

सुख चाहनेवाले ब्राह्मणोंके सत्कारके लिये बहुमूल्य वस्त्र, पलंग और बिछौने तैयार रखे जाते थे॥ २८॥

यत्र यः स्वपते विप्रो यो वा जागर्ति भारत।
तत्र तत्र तु तस्यैव सर्वं क्लृप्तमदृश्यत॥ २९॥

भारत! जो ब्राह्मण जहाँ भी सोता या जागता था, वहाँ-वहाँ उसके लिये सारी आवश्यक वस्तुएँ सदा प्रस्तुत दिखायी देती थीं॥ २९॥

यथासुखं जनः सर्वो याति तिष्ठति वै तदा।
यातुकामस्य यानानि पानानि तृषितस्य च॥ ३०॥
बुभुक्षितस्य चान्नानि स्वादूनि भरतर्षभ।
उपजह्रुर्नरास्तत्र वस्त्राण्याभरणानि च॥ ३१॥

भरतश्रेष्ठ! इस यात्रामें सब लोग सुखपूर्वक चलते और विश्राम करते थे। यात्रीकी इच्छा हो तो उसे सवारियाँ दी जाती थीं, प्यासेको पानी और भूखेको स्वादिष्ट अन्न दिये जाते थे। साथ ही वहाँ बलरामजीके सेवक वस्त्र और आभूषण भी भेंट करते थे॥ ३०-३१॥

स पन्थाः प्रबभौ राजन् सर्वस्यैव सुखावहः।
स्वर्गोपमस्तदा वीर नराणां तत्र गच्छताम्।
नित्यप्रमुदितोपेतः स्वादुभक्ष्यः शुभान्वितः॥ ३२॥

वीर नरेश! वहाँ यात्रा करनेवाले सब लोगोंको वह मार्ग स्वर्गके समान सुखदायक प्रतीत होता था। उस मार्गमें सदा आनन्द रहता, स्वादिष्ट भोजन मिलता और शुभकी ही प्राप्ति होती थी॥ ३२॥

विपण्यापणपण्यानां नानाजनशतैर्वृतः।
नानाद्रुमलतोपेतो नानारत्नविभूषितः॥ ३३॥

उस पथपर खरीदने-बेचनेकी वस्तुओंका बाजार भी साथ-साथ चलता था, जिसमें नाना प्रकारके सैकड़ों मनुष्य भरे रहते थे। वह हाट भाँति-भाँतिके वृक्षों और लताओंसे सुशोभित तथा अनेकानेक रत्नोंसे विभूषित दिखायी देता था॥ ३३॥

ततो महात्मा नियमे स्थितात्मा
पुण्येषु तीर्थेषु वसूनि राजन्।
ददौ द्विजेभ्यः क्रतुदक्षिणाश्च
यदुप्रवीरो हलभृत् प्रतीतः॥ ३४॥

राजन्! यदुकुलके प्रमुख वीर हलधारी महात्मा बलराम नियमपूर्वक रहकर प्रसन्नताके साथ पुण्यतीर्थोंमें ब्राह्मणोंको धन और यज्ञकी दक्षिणाएँ देते थे॥ ३४॥

दोग्ध्रीश्च धेनूश्च सहस्रशो वै
सुवाससः काञ्चनबद्धशृङ्गीः।
हयांश्च नानाविधदेशजातान्
यानानि दासांश्च शुभान् द्विजेभ्यः॥ ३५॥
रत्नानि मुक्तामणिविद्रुमं चा-
प्यग्र्यं सुवर्णं रजतं सुशुद्धम्।
अयस्मयं ताम्रमयं च भाण्डं
ददौ द्विजातिप्रवरेषु रामः॥ ३६॥

बलरामने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सहस्रों दूध देनेवाली गौएँ दान कीं, जिन्हें सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित करके उनके सींगोंमें सोनेके पत्र जड़े गये थे। साथ ही उन्होंने अनेक देशोंमें उत्पन्न घोड़े, रथ और सुन्दर वेश-भूषावाले दास भी ब्राह्मणोंकी सेवामें अर्पित किये। इतना ही नहीं, बलरामने भाँति-भाँतिके रत्न, मोती, मणि, मूँगा, उत्तम सुवर्ण, विशुद्ध चाँदी तथा लोहे और ताँबेके बर्तन भी बाँटे थे॥ ३५-३६॥

एवं स वित्तं प्रददौ महात्मा
सरस्वतीतीर्थवरेषु भूरि।
ययौ क्रमेणाप्रतिमप्रभाव-
स्ततः कुरुक्षेत्रमुदारवृत्तिः॥ ३७॥

इस प्रकार उदार वृत्तिवाले अनुपम प्रभावशाली महात्मा बलरामने सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थोंमें बहुत धन दान किया और क्रमशः यात्रा करते हुए वे कुरुक्षेत्रमें आये॥

जनमेजय उवाच

सारस्वतानां तीर्थानां गुणोत्पत्तिं वदस्व मे।
फलं च द्विपदां श्रेष्ठ कर्मनिर्वृत्तिमेव च॥ ३८॥
यथाक्रमेण भगवंस्तीर्थानामनुपूर्वशः।
ब्रह्मन् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे॥ ३९॥

जनमेजय बोले—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ और मनुष्योंमें उत्तम ब्राह्मणदेव! अब आप मुझे सरस्वती-तटवर्ती तीर्थोंके गुण, प्रभाव और उत्पत्तिकी कथा सुनाइये। भगवन्! क्रमशः उन तीर्थोंके सेवनका फल और जिस कर्मसे वहाँ सिद्धि प्राप्त होती है, उसका अनुष्ठान भी बताइये, मेरे मनमें यह सब सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा हो रही है॥ ३८-३९॥

वैशम्पायन उवाच

तीर्थानां च फलं राजन् गुणोत्पत्तिं च सर्वशः।
मयोच्यमानं वै पुण्यं शृणु राजेन्द्र कृत्स्नशः॥ ४०॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजेन्द्र! मैं तुम्हें तीर्थोंके गुण, प्रभाव, उत्पत्ति तथा उनके सेवनका पुण्य-फल बता रहा हूँ। वह सब तुम ध्यानसे सुनो॥ ४०॥

पूर्वं महाराज यदुप्रवीर
ऋत्विक्सुहृद्विप्रगणैश्च सार्धम्।
पुण्यं प्रभासं समुपाजगाम
यत्रोडुराड् यक्ष्मणा क्लिश्यमानः॥ ४१॥
विमुक्तशापः पुनराप्य तेजः
सर्वं जगद् भासयते नरेन्द्र।
एवं तु तीर्थप्रवरं पृथिव्यां
प्रभासनात् तस्य ततः प्रभासः॥ ४२॥

महाराज! यदुकुलके प्रमुख वीर बलरामजी सबसे पहले ऋत्विजों, सुहृदों और ब्राह्मणोंके साथ पुण्यमय प्रभासक्षेत्रमें गये, जहाँ राजयक्ष्मासे कष्ट पाते हुए चन्द्रमाको शापसे छुटकारा मिला था। नरेन्द्र! वे वहीं पुनः अपना तेज प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार चन्द्रमाको प्रभासित करनेके कारण ही वह प्रधान तीर्थ इस पृथ्वीपर प्रभास नामसे विख्यात हुआ॥ ४१-४२॥

जनमेजय उवाच

कथं तु भगवन् सोमो यक्ष्मणा समगृह्यत।
कथं च तीर्थप्रवरे तस्मिंश्चन्द्रो न्यमज्जत॥ ४३॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! चन्द्रमा कैसे राजयक्ष्मासे ग्रस्त हो गये और उस उत्तम तीर्थमें किस प्रकार उन्होंने स्नान किया?॥ ४३॥

कथमाप्लुत्य तस्मिंस्तु पुनराप्यायितः शशी।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने॥ ४४॥

महामुने! उस तीर्थमें गोता लगाकर चन्द्रमा पुनः किस प्रकार हृष्ट-पुष्ट हुए? यह सब प्रसंग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४४॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षस्य तनयास्तात प्रादुरासन् विशाम्पते।
स सप्तविंशतिं कन्या दक्षः सोमाय वै ददौ॥ ४५॥

वैशम्पायनजीने कहा—तात! प्रजानाथ! प्रजापति दक्षके बहुत-सी संतानें उत्पन्न हुई थीं। उनमेंसे अपनी सत्ताईस कन्याओंका विवाह उन्होंने चन्द्रमाके साथ कर दिया था॥ ४५॥

नक्षत्रयोगनिरताः संख्यानार्थं च ताभवन्।
पत्न्यो वै तस्य राजेन्द्र सोमस्य शुभकर्मणः॥ ४६॥

राजेन्द्र! शुभ कर्म करनेवाले सोमकी वे पत्नियाँ समयकी गणनाके लिये नक्षत्रोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण उसी नामसे विख्यात हुईं॥ ४६॥

तास्तु सर्वा विशालाक्ष्यो रूपेणाप्रतिमा भुवि।
अत्यरिच्यत तासां तु रोहिणी रूपसम्पदा॥ ४७॥

वे सब-की-सब विशाल नेत्रोंसे सुशोभित होती थीं। इस भूतलपर उनके रूपकी समानता करनेवाली कोई स्त्री नहीं थी। उनमें भी रोहिणी अपने रूप-वैभवकी दृष्टिसे सबकी अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी थी॥ ४७॥

ततस्तस्यां स भगवान् प्रीतिं चक्रे निशाकरः।
सास्य हृद्या बभूवाथ तस्मात् तां बुभुजे सदा॥ ४८॥

इसलिये भगवान् चन्द्रमा उससे अधिक प्रेम करने लगे, वही उनकी हृदयवल्लभा हुई; अतः वे सदा उसीका उपभोग करते थे॥ ४८॥

पुरा हि सोमो राजेन्द्र रोहिण्यामवसत् परम्।
ततस्ताः कुपिताः सर्वा नक्षत्राख्या महात्मनः॥ ४९॥

राजेन्द्र! पूर्वकालमें चन्द्रमा सदा रोहिणीके ही समीप रहते थे; अतः नक्षत्रनामसे प्रसिद्ध हुईं महात्मा सोमकी वे सारी पत्नियाँ उनपर कुपित हो उठीं॥ ४९॥

ता गत्वा पितरं प्राहुः प्रजापतिमतन्द्रिताः।
सोमो वसति नास्मासु रोहिणीं भजते सदा॥ ५०॥

और आलस्य छोड़कर अपने पिताके पास जाकर बोलीं—'प्रभो! चन्द्रमा हमारे पास नहीं आते। वे सदा रोहिणीका ही सेवन करते हैं॥ ५०॥

ता वयं सहिताः सर्वास्त्वत्सकाशे प्रजेश्वर।
वत्स्यामो नियताहारास्तपश्चरणतत्पराः॥ ५१॥

'अतः प्रजेश्वर! हम सब बहिनें एक साथ नियमित आहार करके तपस्यामें संलग्न हो आपके ही पास रहेंगी'॥

श्रुत्वा तासां तु वचनं दक्षः सोममथाब्रवीत्।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वाधर्मो महान् स्पृशेत्॥ ५२॥

उनकी यह बात सुनकर प्रजापति दक्षने चन्द्रमासे कहा—'सोम! तुम अपनी सभी पत्नियोंके साथ समानतापूर्ण बर्ताव करो, जिससे तुम्हें महान् पाप न लगे'॥ ५२॥

तास्तु सर्वाब्रवीद् दक्षो गच्छध्वं शशिनोऽन्तिकम्।
समं वत्स्यति सर्वासु चन्द्रमा मम शासनात्॥ ५३॥

फिर दक्षने उन सभी कन्याओंसे कहा—'अब तुमलोग चन्द्रमाके पास ही जाओ। वे मेरी आज्ञासे तुम सब लोगोंके प्रति समानभाव रखेंगे'॥ ५३॥

विसृष्टास्तास्तथा जग्मुः शीतांशुभवनं तदा।
तथापि सोमो भगवान् पुनरेव महीपते॥ ५४॥
रोहिणीं निवसत्येव प्रीयमाणो मुहुर्मुहुः।

पृथ्वीनाथ! पिताके विदा करनेपर वे पुनः चन्द्रमाके घरमें लौट गयीं, तथापि भगवान् सोम फिर रोहिणीके पास ही अधिकाधिक प्रेमपूर्वक रहने लगे॥ ५४½॥

ततस्ताः सहिताः सर्वा भूयः पितरमब्रुवन्॥ ५५॥
तव शुश्रूषणे युक्ता वत्स्यामो हि तवान्तिके।
सोमो वसति नास्मासु नाकरोद् वचनं तव॥ ५६॥

तब वे सब कन्याएँ पुनः एक साथ अपने पिताके पास जाकर बोलीं—'हम सब लोग आपकी सेवामें तत्पर रहकर आपके ही समीप रहेंगी। चन्द्रमा हमारे साथ नहीं रहते। उन्होंने आपकी बात नहीं मानी'॥ ५५-५६॥

तासां तद् वचनं श्रुत्वा दक्षः सोममथाब्रवीत्।
समं वर्तस्व भार्यासु मा त्वां शप्स्ये विरोचन॥ ५७॥

उनकी बात सुनकर दक्षने पुनः सोमसे कहा—'प्रकाशमान चन्द्रदेव! तुम अपनी सभी पत्नियोंके साथ समान बर्ताव करो, नहीं तो तुम्हें शाप दे दूँगा'॥ ५७॥

अनादृत्य तु तद् वाक्यं दक्षस्य भगवान् शशी।
रोहिण्या सार्धमवसत् ततस्ताः कुपिताः पुनः॥ ५८॥
गत्वा च पितरं प्राहुः प्रणम्य शिरसा तदा।
सोमो वसति नास्मासु तस्मान्नः शरणं भव॥ ५९॥

दक्षके इतना कहनेपर भी भगवान् चन्द्रमा उनकी बातकी अवहेलना करके केवल रोहिणीके ही साथ रहने लगे। यह देख दूसरी स्त्रियाँ पुनः क्रोधसे जल उठीं और पिताके पास जा उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम करनेके अनन्तर बोलीं—'भगवन्! सोम हमारे पास नहीं रहते। अतः आप हमें शरण दें॥

रोहिण्यामेव भगवान् सदा वसति चन्द्रमाः।
न त्वद्वचो गणयति नास्मासु स्नेहमिच्छति॥ ६०॥
तस्मान्नस्त्राहि सर्वा वै यथा नः सोम आविशेत्।

'भगवान् चन्द्रमा सदा रोहिणीके ही समीप रहते हैं। वे आपकी बातको कुछ गिनते ही नहीं हैं। हमलोगोंपर स्नेह रखना नहीं चाहते हैं, अतः आप हम सब लोगोंकी रक्षा करें, जिससे चन्द्रमा हमारे साथ भी सम्बन्ध रखें'॥ ६०½॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथिवीपते॥ ६१॥
ससर्ज रोषात् सोमाय स चोडुपतिमाविशत्।

पृथ्वीनाथ! यह सुनकर भगवान् दक्ष कुपित हो उठे। उन्होंने चन्द्रमाके लिये रोषपूर्वक राजयक्ष्माकी सृष्टि की। वह चन्द्रमाके भीतर प्रविष्ट हो गया॥ ६१½॥

स यक्ष्मणाभिभूतात्माक्षीयताहरहः शशी॥ ६२॥
यत्नं चाप्यकरोद् राजन् मोक्षार्थं तस्य यक्ष्मणः।

यक्ष्मासे शरीर ग्रस्त हो जानेके कारण चन्द्रमा प्रतिदिन क्षीण होने लगे। राजन्! उस यक्ष्मासे छूटनेके लिये उन्होंने बड़ा यत्न किया॥ ६२½॥

इष्ट्वेष्टिभिर्महाराज विविधाभिर्निशाकरः॥ ६३॥
न चामुच्यत शापाद् वै क्षयं चैवाभ्यगच्छत।

महाराज! नाना प्रकारके यज्ञ-यागोंका अनुष्ठान करके भी चन्द्रमा उस शापसे मुक्त न हो सके और धीरे-धीरे क्षीण होते चले गये॥ ६३½॥

क्षीयमाणे ततः सोमे ओषध्यो न प्रजज्ञिरे॥ ६४॥
निरास्वादरसाः सर्वा हतवीर्याश्च सर्वशः।

चन्द्रमाके क्षीण होनेसे अन्न आदि ओषधियाँ उत्पन्न नहीं होती थीं। उन सबके स्वाद, रस और प्रभाव नष्ट हो गये॥ ६४½॥

ओषधीनां क्षये जाते प्राणिनामपि संक्षयः॥ ६५॥
कृशाश्चासन् प्रजाः सर्वाः क्षीयमाणे निशाकरे।

ओषधियोंके क्षीण होनेसे समस्त प्राणियोंका भी क्षय होने लगा। इस प्रकार चन्द्रमाके क्षयके साथ-साथ सारी प्रजा अत्यन्त दुर्बल हो गयी॥ ६५½॥

ततो देवाः समागम्य सोममूचुर्महीपते॥ ६६॥
किमिदं भवतो रूपमीदृशं न प्रकाशते।
कारणं ब्रूहि नः सर्वं येनेदं ते महद् भयम्॥ ६७॥
श्रुत्वा तु वचनं त्वत्तो विधास्यामस्ततो वयम्।

पृथ्वीनाथ! उस समय देवताओंने चन्द्रमासे मिलकर पूछा—'आपका रूप ऐसा कैसे हो गया? यह प्रकाशित क्यों नहीं होता है? हमलोगोंसे सारा कारण बताइये, जिससे आपको महान् भय प्राप्त हुआ। आपकी बात सुनकर हमलोग इस संकटके निवारणका कोई उपाय करेंगे'॥ ६६-६७½ ॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच सर्वांस्तान् शशलक्षणः॥ ६८॥
शापस्य लक्षणं चैव यक्ष्माणं च तथाऽऽत्मनः।

उनके इस प्रकार पूछनेपर चन्द्रमाने उन सबको उत्तर देते हुए अपनेको प्राप्त हुए शापके कारण राजयक्ष्माकी उत्पत्ति बतलायी॥ ६८½ ॥

देवास्तथा वचः श्रुत्वा गत्वा दक्षमथाब्रुवन्॥ ६९॥
प्रसीद भगवन् सोमे शापोऽयं विनिवर्त्यताम्।

उनका वचन सुनकर देवता दक्षके पास जाकर बोले—'भगवन्! आप चन्द्रमापर प्रसन्न होइये और यह शाप हटा लीजिये॥ ६९½ ॥

असौ हि चन्द्रमाः क्षीणः किञ्चिच्छेषो हि लक्ष्यते॥ ७०॥
क्षयाच्चैवास्य देवेश प्रजाश्चैव गताः क्षयम्।
वीरुदोषधयश्चैव बीजानि विविधानि च॥ ७१॥

'चन्द्रमा क्षीण हो चुके हैं और उनका कुछ ही अंश शेष दिखायी देता है। देवेश्वर! उनके क्षयसे लता, वीरुत्, ओषधियाँ भाँति-भाँतिके बीज और सम्पूर्ण प्रजा भी क्षीण हो गयी है॥ ७०-७१॥

तेषां क्षये क्षयोऽस्माकं विनास्माभिर्जगच्च किम्।
इति ज्ञात्वा लोकगुरो प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ ७२॥

'उन सबके क्षीण होनेपर हमारा भी क्षय हो जायगा। फिर हमारे बिना संसार कैसे रह सकता है? लोकगुरो! ऐसा जानकर आपको चन्द्रदेवपर अवश्य कृपा करनी चाहिये'॥ ७२॥

एवमुक्तस्ततो देवान् प्राह वाक्यं प्रजापतिः।
नैतच्छक्यं मम वचो व्यावर्तयितुमन्यथा॥ ७३॥
हेतुना तु महाभागा निवर्तिष्यति केनचित्।

उनके ऐसा कहनेपर प्रजापति दक्ष देवताओंसे इस प्रकार बोले—'महाभाग देवगण! मेरी बात पलटी नहीं जा सकती। किसी विशेष कारणसे वह स्वतः निवृत्त हो जायगी॥ ७३½ ॥

समं वर्ततु सर्वासु शशी भार्यासु नित्यशः॥ ७४॥
सरस्वत्या वरे तीर्थे उन्मज्जन् शशलक्षणः।
पुनर्वर्धिष्यते देवास्तद् वै सत्यं वचो मम॥ ७५॥

'यदि चन्द्रमा अपनी सभी पत्नियोंके प्रति सदा समान बर्ताव करें और सरस्वतीके श्रेष्ठ तीर्थमें गोता लगायें तो वे पुनः बढ़कर पुष्ट हो जायँगे। देवताओ! मेरी यह बात अवश्य सच होगी॥ ७४-७५॥

मासार्धं च क्षयं सोमो नित्यमेव गमिष्यति।
मासार्धं तु सदा वृद्धिं सत्यमेतद् वचो मम॥ ७६॥

'सोम आधे मासतक प्रतिदिन क्षीण होंगे और आधे मासतक निरन्तर बढ़ते रहेंगे। मेरी यह बात अवश्य सत्य होगी॥ ७६॥

समुद्रं पश्चिमं गत्वा सरस्वत्यब्धिसङ्गमम्।
आराधयतु देवेशं ततः कान्तिमवाप्स्यति॥ ७७॥

'पश्चिमी समुद्रके तटपर जहाँ सरस्वती और समुद्रका संगम हुआ है, वहाँ जाकर चन्द्रमा देवेश्वर महादेवजीकी आराधना करें तो पुनः वे अपनी कान्ति प्राप्त कर लेंगे'॥ ७७॥

सरस्वतीं ततः सोमः स जगामर्षिशासनात्।
प्रभासं प्रथमं तीर्थं सरस्वत्या जगाम ह॥ ७८॥

ऋषि (दक्ष प्रजापति)-के इस आदेशसे सोम सरस्वतीके प्रथम तीर्थ प्रभासक्षेत्रमें गये॥ ७८॥

अमावास्यां महातेजास्तत्रोन्मज्जन् महाद्युतिः।
लोकान् प्रभासयामास शीतांशुत्वमवाप च॥ ७९॥

महातेजस्वी महाकान्तिमान् चन्द्रमाने अमावास्याको उस तीर्थमें गोता लगाया। इससे उन्हें शीतल किरणें प्राप्त हुईं और वे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करने लगे॥ ७९॥

देवास्तु सर्वे राजेन्द्र प्रभासं प्राप्य पुष्कलम्।
सोमेन सहिता भूत्वा दक्षस्य प्रमुखेऽभवन्॥ ८०॥

राजेन्द्र! फिर सम्पूर्ण देवता सोमके साथ महान् प्रकाश प्राप्त करके पुनः दक्षप्रजापतिके सामने उपस्थित हुए॥ ८०॥

ततः प्रजापतिः सर्वा विससर्जाथ देवताः।
सोमं च भगवान् प्रीतो भूयो वचनमब्रवीत्॥ ८१॥

तब भगवान् प्रजापतिने समस्त देवताओंको विदा कर दिया और सोमसे पुनः प्रसन्नतापूर्वक कहा— ॥ ८१॥

मावमंस्थाः स्त्रियः पुत्र मा च विप्रान् कदाचन।
गच्छ युक्तः सदा भूत्वा कुरु वै शासनं मम॥ ८२॥

'बेटा! अपनी स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंकी कभी अवहेलना न करना। जाओ, सदा सावधान रहकर मेरी आज्ञाका पालन करते रहो'॥ ८२॥

स विसृष्टो महाराज जगामाथ स्वमालयम्।
प्रजाश्च मुदिता भूत्वा पुनस्तस्थुर्यथा पुरा॥ ८३॥

महाराज! ऐसा कहकर प्रजापतिने उन्हें विदा कर दिया। चन्द्रमा अपने स्थानको चले गये और सारी प्रजा पूर्ववत् प्रसन्न रहने लगी॥ ८३॥

एवं ते सर्वमाख्यातं यथा शप्तो निशाकरः।
प्रभासं च यथा तीर्थं तीर्थानां प्रवरं महत्॥ ८४॥

इस प्रकार चन्द्रमाको जैसे शाप प्राप्त हुआ था और महान् प्रभासतीर्थ जिस प्रकार सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ माना गया, वह सारा प्रसंग मैंने तुमसे कह सुनाया॥ ८४॥

अमावास्यां महाराज नित्यशः शशलक्षणः।
स्नात्वा ह्याप्यायते श्रीमान् प्रभासे तीर्थ उत्तमे॥ ८५॥

महाराज! चन्द्रमा उत्तम प्रभासतीर्थमें प्रत्येक अमावास्याको स्नान करके कान्तिमान् एवं पुष्ट होते हैं॥

अतश्चैतत् प्रजानन्ति प्रभासमिति भूमिप।
प्रभां हि परमां लेभे तस्मिन्नुन्मज्ज्य चन्द्रमाः॥ ८६॥

भूमिपाल! इसीलिये सब लोग इसे प्रभासतीर्थके नामसे जानते हैं; क्योंकि उसमें गोता लगाकर चन्द्रमाने उत्कृष्ट प्रभा प्राप्त की थी॥ ८६॥

ततस्तु चमसोद्भेदमच्युतस्त्वगमद् बली।
चमसोद्भेद इत्येवं यं जनाः कथयन्त्युत॥ ८७॥

तदनन्तर भगवान् बलराम चमसोद्भेद नामक तीर्थमें गये। उस तीर्थको सब लोग चमसोद्भेदके नामसे ही पुकारते हैं॥ ८७॥

तत्र दत्त्वा च दानानि विशिष्टानि हलायुधः।
उषित्वा रजनीमेकां स्नात्वा च विधिवत्तदा॥ ८८॥
उदपानमथागच्छत्त्वरावान् केशवाग्रजः।
आद्यं स्वस्त्ययनं चैव यत्रावाप्य महत् फलम्॥ ८९॥
स्निग्धत्वादोषधीनां च भूमेश्च जनमेजय।
जानन्ति सिद्धा राजेन्द्र नष्टामपि सरस्वतीम्॥ ९०॥

श्रीकृष्णके बड़े भाई हलधारी बलरामने वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके उत्तम दान दे एक रात रहकर बड़ी उतावलीके साथ वहाँसे उदपानतीर्थको प्रस्थान किया, जो मंगलकारी आदि तीर्थ है। राजेन्द्र जनमेजय! उदपान वह तीर्थ है, जहाँ उपस्थित होनेमात्रसे महान् फलकी प्राप्ति होती है। सिद्ध पुरुष वहाँ ओषधियों (वृक्षों और लताओं)-की स्निग्धता और भूमिकी आर्द्रता देखकर अदृश्य हुई सरस्वतीको भी जान लेते हैं॥ ८८—९०॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां प्रभासोत्पत्तिकथने पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें प्रभासतीर्थका वर्णनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

उदपानतीर्थकी उत्पत्तिकी तथा त्रित मुनिके कूपमें गिरने, वहाँ यज्ञ करने और अपने भाइयोंको शाप देनेकी कथा

वैशम्पायन उवाच

तस्मान्नदीगतं चापि ह्युदपानं यशस्विनः।
त्रितस्य च महाराज जगामाथ हलायुधः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! उस चमसोद्भेद-तीर्थसे चलकर बलरामजी यशस्वी त्रितमुनिके उदपान तीर्थमें गये, जो सरस्वती नदीके जलमें स्थित है॥ १॥

तत्र दत्त्वा बहु द्रव्यं पूजयित्वा तथा द्विजान्।
उपस्पृश्य च तत्रैव प्रहृष्टो मुसलायुधः॥ २॥

मुसलधारी बलरामजीने वहाँ जलका स्पर्श, आचमन एवं स्नान करके बहुत-सा द्रव्य दान करनेके पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजन किया। फिर वे बहुत प्रसन्न हुए॥ २॥

तत्र धर्मपरो भूत्वा त्रितः स सुमहातपाः।
कूपे च वसता तेन सोमः पीतो महात्मना॥ ३॥

वहाँ महातपस्वी त्रितमुनि धर्मपरायण होकर रहते थे। उन महात्माने कुएँमें रहकर ही सोमपान किया था॥

तत्र चैनं समुत्सृज्य भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान्।
ततस्तौ वै शशापाथ त्रितो ब्राह्मणसत्तमः॥ ४॥

उनके दो भाई उस कुएँमें ही उन्हें छोड़कर घरको चले गये थे। इससे ब्राह्मणश्रेष्ठ त्रितने दोनोंको शाप दे दिया था॥ ४॥

जनमेजय उवाच

उदपानं कथं ब्रह्मन् कथं च सुमहातपाः।
पतितः किं च संत्यक्तो भ्रातृभ्यां द्विजसत्तम॥ ५॥
कूपे कथं च हित्वैनं भ्रातरौ जग्मतुर्गृहान्।
कथं च याजयामास पपौ सोमं च वै कथम्॥ ६॥
एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मन् श्रोतव्यं यदि मन्यसे।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! उदपान तीर्थ कैसे हुआ? वे महातपस्वी त्रितमुनि उसमें कैसे गिर पड़े और द्विजश्रेष्ठ! उनके दोनों भाइयोंने उन्हें क्यों वहीं छोड़ दिया था? क्या कारण था, जिससे वे दोनों भाई उन्हें कुएँमें ही त्यागकर घर चले गये थे? वहाँ रहकर उन्होंने यज्ञ और सोमपान कैसे किया? ब्रह्मन्! यदि यह प्रसंग मेरे सुननेयोग्य समझें तो अवश्य मुझे बतावें॥ ५-६½॥

वैशम्पायन उवाच

आसन् पूर्वयुगे राजन् मुनयो भ्रातरस्त्रयः॥ ७॥
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसंनिभाः।
सर्वे प्रजापतिसमाः प्रजावन्तस्तथैव च॥ ८॥
ब्रह्मलोकजितः सर्वे तपसा ब्रह्मवादिनः।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! पहले युगमें तीन सहोदर भाई रहते थे। वे तीनों ही मुनि थे। उनके नाम थे एकत, द्वित और त्रित। वे सभी महर्षि सूर्यके समान तेजस्वी, प्रजापतिके समान संतानवान् और ब्रह्मवादी थे। उन्होंने तपस्याद्वारा ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त की थी॥ ७-८½॥

तेषां तु तपसा प्रीतो नियमेन दमेन च॥ ९॥
अभवद् गौतमो नित्यं पिता धर्मरतः सदा।

उनकी तपस्या, नियम और इन्द्रियनिग्रहसे उनके धर्म-परायण पिता गौतम सदा ही प्रसन्न रहा करते थे॥ ९½॥

स तु दीर्घेण कालेन तेषां प्रीतिमवाप्य च॥ १०॥
जगाम भगवान् स्थानमनुरूपमिवात्मनः।

उन पुत्रोंकी त्याग-तपस्यासे संतुष्ट रहते हुए वे पूजनीय महात्मा गौतम दीर्घकालके पश्चात् अपने अनुरूप स्थान (स्वर्गलोक)-में चले गये॥ १०½॥

राजानस्तस्य ये ह्यासन् याज्या राजन् महात्मनः॥ ११॥
ते सर्वे स्वर्गते तस्मिंस्तस्य पुत्रानपूजयन्।

राजन्! उन महात्मा गौतमके यजमान जो राजा लोग थे, वे सब उनके स्वर्गवासी हो जानेपर उनके पुत्रोंका ही आदर-सत्कार करने लगे॥ ११½॥

तेषां तु कर्मणा राजंस्तथा चाध्ययनेन च॥ १२॥
त्रितः स श्रेष्ठतां प्राप यथैवास्य पिता तथा।

नरेश्वर! उन तीनोंमें भी अपने शुभ कर्म और स्वाध्यायके द्वारा महर्षि त्रितने सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया! जैसे उनके पिता सम्मानित थे, वैसे ही वे भी हो गये॥ १२½॥

तथा सर्वे महाभागा मुनयः पुण्यलक्षणाः॥ १३॥
अपूजयन् महाभागं यथास्य पितरं तथा।

महान् सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा सभी महर्षि भी महाभाग त्रितका उनके पिताके तुल्य ही सम्मान करते थे॥

कदाचिद्धि ततो राजन् भ्रातरावेकतद्वितौ॥ १४॥
यज्ञार्थं चक्रतुश्चिन्तां तथा वित्तार्थमेव च।
तयोर्बुद्धिः समभवत् त्रितं गृह्य परंतप॥ १५॥
याज्यान् सर्वानुपादाय प्रतिगृह्य पशूंस्ततः।
सोमं पास्यामहे हृष्टाः प्राप्य यज्ञं महाफलम्॥ १६॥

राजन्! एक दिनकी बात है, उनके दोनों भाई एकत और द्वित यज्ञ और धनके लिये चिन्ता करने लगे। शत्रुओंको संताप देनेवाले नरेश! उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि हमलोग त्रितको साथ लेकर यजमानोंका यज्ञ करावें और दक्षिणाके रूपमें बहुत-से पशु प्राप्त करके महान् फलदायक यज्ञका अनुष्ठान करें और उसीमें प्रसन्नतापूर्वक सोमरसका पान करें॥ १४—१६॥

चक्रुश्चैवं तथा राजन् भ्रातरस्त्रय एव च।
तथा ते तु परिक्रम्य याज्यान् सर्वान् पशून् प्रति॥ १७॥
याजयित्वा ततो याज्याँल्लब्ध्वा तु सुबहून् पशून्।
याज्येन कर्मणा तेन प्रतिगृह्य विधानतः॥ १८॥
प्राचीं दिशं महात्मान आजग्मुस्ते महर्षयः।

राजन्! ऐसा विचार करके उन तीनों भाइयोंने वही किया। वे सभी यजमानोंके यहाँ पशुओंकी प्राप्तिके उद्देश्यसे गये और उनसे विधिपूर्वक यज्ञ करवाकर उस याज्यकर्मके द्वारा उन्होंने बहुतेरे पशु प्राप्त कर लिये। तत्पश्चात् वे महात्मा महर्षि पूर्वदिशाकी ओर चल दिये॥ १७-१८½॥

त्रितस्तेषां महाराज पुरस्ताद् याति हृष्टवत्॥ १९॥
एकतश्च द्वितश्चैव पृष्ठतः कालयन् पशून्।

महाराज! उनमें त्रित मुनि तो प्रसन्नतापूर्वक आगे-आगे चलते थे और एकत तथा द्वित पीछे रहकर पशुओंको हाँकते जाते थे॥ १९½॥

तयोश्चिन्ता समभवद् दृष्ट्वा पशुगणं महत्॥ २०॥
कथं च स्युरिमा गाव आवाभ्यां हि विना त्रितम्।

पशुओंके उस महान् समुदायको देखकर एकत और द्वितके मनमें यह चिन्ता समायी कि किस उपायसे ये गौएँ त्रितको न मिलकर हम दोनोंके ही पास रह जायँ॥ २०½॥

तावन्योन्यं समाभाष्य एकतश्च द्वितश्च ह॥ २१॥
यदूचतुर्मिथः पापौ तन्निबोध जनेश्वर।

जनेश्वर! उन एकत और द्वित—दोनों पापियोंने एक-दूसरेसे सलाह करके परस्पर जो कुछ कहा, वह बताता हूँ, सुनो॥ २१½॥

त्रितो यज्ञेषु कुशलस्त्रितो वेदेषु निष्ठितः॥ २२॥
अन्यास्तु बहुला गावस्त्रितः समुपलप्स्यते।
तदावां सहितौ भूत्वा गाः प्रकाल्य व्रजावहे॥ २३॥
त्रितोऽपि गच्छतां काममावाभ्यां वै विना कृतः।

'त्रित यज्ञ करानेमें कुशल हैं, त्रित वेदोंके परिनिष्ठित विद्वान् हैं, अतः वे और बहुत-सी गौएँ प्राप्त कर लेंगे। इस समय हम दोनों एक साथ होकर इन गौओंको हाँक ले चलें और त्रित हमसे अलग होकर जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जायँ'॥ २२-२३½॥

तेषामागच्छतां रात्रौ पथिस्थानां वृकोऽभवत्॥ २४॥
तत्र कूपोऽविदूरेऽभूत् सरस्वत्यास्तटे महान्।

रात्रिका समय था और वे तीनों भाई रास्ता पकड़े चले आ रहे थे। उनके मार्गमें एक भेड़िया खड़ा था। वहाँ पास ही सरस्वतीके तटपर एक बहुत बड़ा कुआँ था॥

अथ त्रितो वृकं दृष्ट्वा पथि तिष्ठन्तमग्रतः॥ २५॥
तद्भयादपसर्पन् वै तस्मिन् कूपे पपात ह।
अगाधे सुमहाघोरे सर्वभूतभयंकरे॥ २६॥

त्रित अपने आगे रास्तेमें खड़े हुए भेड़ियेको देखकर उसके भयसे भागने लगे। भागते-भागते वे समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर उस महाघोर अगाध कूपमें गिर पड़े॥ २५-२६॥

त्रितस्ततो महाराज कूपस्थो मुनिसत्तमः।
आर्तनादं ततश्चक्रे तौ तु शुश्रुवतुर्मुनी॥ २७॥

महाराज! कुएँमें पहुँचनेपर मुनिश्रेष्ठ त्रितने बड़े जोरसे आर्तनाद किया, जिसे उन दोनों मुनियोंने सुना॥ २७॥

तं ज्ञात्वा पतितं कूपे भ्रातरावेकतद्वितौ।
वृकत्रासाच्च लोभाच्च समुत्सृज्य प्रजग्मतुः॥ २८॥

अपने भाईको कुएँमें गिरा हुआ जानकर भी दोनों भाई एकत और द्वित भेड़ियेके भय और लोभसे उन्हें वहीं छोड़कर चल दिये॥ २८॥

भ्रातृभ्यां पशुलुब्धाभ्यामुत्सृष्टः स महातपाः।
उदपाने तदा राजन् निर्जले पांसुसंवृते॥ २९॥

राजन्! पशुओंके लोभमें आकर उन दोनों भाइयोंने उस समय उन महातपस्वी त्रितको धूलिसे भरे हुए उस निर्जल कूपमें ही छोड़ दिया॥ २९॥

त्रित आत्मानमालक्ष्य कूपे वीरुत्तृणावृते।
निमग्नं भरतश्रेष्ठ नरके दुष्कृती यथा॥ ३०॥
स बुद्ध्यागणयत् प्राज्ञो मृत्योर्भीतो ह्यसोमपः।
सोमः कथं तु पातव्य इहस्थेन मया भवेत्॥ ३१॥

भरतश्रेष्ठ! जैसे पापी मनुष्य अपने-आपको नरकमें डूबा हुआ देखता है, उसी प्रकार तृण, वीरुध और लताओंसे व्याप्त हुए उस कुएँमें अपने-आपको गिरा देख मृत्युसे डरे और सोमपानसे वंचित हुए विद्वान् त्रित अपनी बुद्धिसे सोचने लगे कि 'मैं इस कुएँमें रहकर कैसे सोमरसका पान कर सकता हूँ?'॥ ३०-३१॥

स एवमभिनिश्चित्य तस्मिन् कूपे महातपाः।
ददर्श वीरुधं तत्र लम्बमानां यदृच्छया॥ ३२॥

इस प्रकार विचार करते-करते महातपस्वी त्रितने उस कुएँमें एक लता देखी, जो दैवयोगसे वहाँ फैली हुई थी॥ ३२॥

पांसुग्रस्ते ततः कूपे विचिन्त्य सलिलं मुनिः।
अग्नीन् संकल्पयामास होतृनात्मानमेव च॥ ३३॥

मुनिने उस बालूभरे कूपमें जलकी भावना करके उसीमें संकल्पद्वारा अग्निकी स्थापना की और होता आदिके स्थानपर अपने-आपको ही प्रतिष्ठित किया॥ ३३॥

ततस्तां वीरुधं सोमं संकल्प्य सुमहातपाः।
ऋचो यजूंषि सामानि मनसा चिन्तयन् मुनिः॥ ३४॥
ग्रावाणः शर्कराः कृत्वा प्रचक्रेऽभिषवं नृप।
आज्यं च सलिलं चक्रे भागांश्च त्रिदिवौकसाम्॥ ३५॥
सोमस्याभिषवं कृत्वा चकार विपुलं ध्वनिम्।

तत्पश्चात् उन महातपस्वी त्रितने उस फैली हुई लतामें सोमकी भावना करके मन-ही-मन ऋग्, यजु और सामका चिन्तन किया। नरेश्वर! इसके बाद कंकड़ या बालू-कणोंमें सिल और लोढ़ेकी भावना करके उसपर पीसकर लतासे सोमरस निकाला। फिर जलमें घीका संकल्प करके उन्होंने देवताओंके भाग नियत किये और सोमरस तैयार करके उसकी आहुति देते हुए वेद-मन्त्रोंकी गम्भीर ध्वनि की॥ ३४-३५ $\frac{1}{2}$॥

स चाविशद् दिवं राजन् पुनः शब्दस्त्रितस्य वै॥ ३६॥
समवाप्य च तं यज्ञं यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः।

राजन्! ब्रह्मवादियोंने जैसा बताया है, उसके अनुसार ही उस यज्ञका सम्पादन करके की हुई त्रितकी वह वेदध्वनि स्वर्गलोकतक गूँज उठी॥ ३६ $\frac{1}{2}$॥

वर्तमाने महायज्ञे त्रितस्य सुमहात्मनः॥ ३७॥
आविग्नं त्रिदिवं सर्वं कारणं च न बुद्ध्यते।

महात्मा त्रितका वह महान् यज्ञ जब चालू हुआ, उस समय सारा स्वर्गलोक उद्विग्न हो उठा, परंतु किसीको इसका कोई कारण नहीं जान पड़ा॥ ३७ $\frac{1}{2}$॥

ततः सुतुमुलं शब्दं शुश्रावाथ बृहस्पतिः॥ ३८॥
श्रुत्वा चैवाब्रवीत् सर्वान् देवान् देवपुरोहितः।
त्रितस्य वर्तते यज्ञस्तत्र गच्छामहे सुराः॥ ३९॥

तब देवपुरोहित बृहस्पतिजीने वेदमन्त्रोंके उस तुमुलनादको सुनकर देवताओंसे कहा—'देवगण! त्रित मुनिका यज्ञ हो रहा है, वहाँ हमलोगोंको चलना चाहिये॥

स हि क्रुद्धः सृजेदन्यान् देवानपि महातपाः।

'वे महान् तपस्वी हैं। यदि हम नहीं चलेंगे तो वे कुपित होकर दूसरे देवताओंकी सृष्टि कर लेंगे'॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सहिताः सर्वदेवताः॥ ४०॥
प्रययुस्तत्र यत्रासौ त्रितयज्ञः प्रवर्तते।

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर सब देवता एक साथ हो उस स्थानपर गये, जहाँ त्रितमुनिका यज्ञ हो रहा था॥

ते तत्र गत्वा विबुधास्तं कूपं यत्र स त्रितः॥ ४१॥
ददृशुस्तं महात्मानं दीक्षितं यज्ञकर्मसु।
दृष्ट्वा चैनं महात्मानं श्रिया परमया युतम्॥ ४२॥
ऊचुश्चैनं महाभागं प्राप्ता भागार्थिनो वयम्।

वहाँ पहुँचकर देवताओंने उस कूपको देखा, जिसमें त्रित मौजूद थे। साथ ही उन्होंने यज्ञमें दीक्षित हुए महात्मा त्रितमुनिका भी दर्शन किया। वे बड़े तेजस्वी दिखायी दे रहे थे। उन महाभाग मुनिका दर्शन करके देवताओंने उनसे कहा—'हमलोग यज्ञमें अपना भाग लेनेके लिये आये हैं'॥ ४१-४२½॥

अथाब्रवीदृषिर्देवान् पश्यध्वं मा दिवौकसः॥ ४३॥
अस्मिन् प्रतिभये कूपे निमग्नं नष्टचेतसम्।

उस समय महर्षिने उनसे कहा—'देवताओ! देखो, मैं किस दशामें पड़ा हूँ। इस भयानक कूपमें गिरकर अपनी सुध-बुध खो बैठा हूँ'॥ ४३½॥

ततस्त्रितो महाराज भागांस्तेषां यथाविधि॥ ४४॥
मन्त्रयुक्तान् समददत् ते च प्रीतास्तदाभवन्।

महाराज! तदनन्तर त्रितने देवताओंको विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए उनके भाग समर्पित किये। इससे वे उस समय बड़े प्रसन्न हुए॥ ४४½॥

ततो यथाविधि प्राप्तान् भागान् प्राप्य दिवौकसः॥ ४५॥
प्रीतात्मानो ददुस्तस्मै वरान् यान् मनसेच्छति।

विधिपूर्वक प्राप्त हुए उन भागोंको ग्रहण करके प्रसन्नचित्त हुए देवताओंने उन्हें मनोवांछित वर प्रदान किया॥ ४५½॥

स तु वव्रे वरं देवांस्त्रातुमर्हथ मामितः॥ ४६॥
यश्चेहोपस्पृशेत् कूपे स सोमपगतिं लभेत्।

मुनिने देवताओंसे वर माँगते हुए कहा—'मुझे इस कूपसे आपलोग बचावें तथा जो मनुष्य इसमें आचमन करे, उसे यज्ञमें सोमपान करनेवालोंकी गति प्राप्त हो'॥ ४६½॥

तत्र चोर्मिमती राजन्नुत्पपात सरस्वती॥ ४७॥
तयोत्क्षिप्तः समुत्तस्थौ पूजयंस्त्रिदिवौकसः।

राजन्! मुनिके इतना कहते ही कुएँमें तरंगमालाओंसे सुशोभित सरस्वती लहरा उठी। उसने अपने जलके वेगसे मुनिको ऊपर उठा दिया और वे बाहर निकल आये। फिर उन्होंने देवताओंका पूजन किया॥ ४७½॥

तथेति चोक्त्वा विबुधा जग्मू राजन् यथागताः॥ ४८॥
त्रितश्चाभ्यागमत् प्रीतः स्वमेव निलयं तदा।

नरेश्वर! मुनिके माँगे हुए वरके विषयमें 'तथास्तु' कहकर सब देवता जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। फिर त्रित भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको ही लौट गये॥ ४८½॥

क्रुद्धस्तु स समासाद्य तावृषी भ्रातरौ तदा॥ ४९॥
उवाच परुषं वाक्यं शशाप च महातपाः।
पशुलुब्धौ युवां यस्मान्मामुत्सृज्य प्रधावितौ॥ ५०॥
तस्माद् वृकाकृती रौद्रौ दंष्ट्रिणावभितश्चरौ।
भवितारौ मया शप्तौ पापेनानेन कर्मणा॥ ५१॥
प्रसवश्चैव युवयोर्गोलाङ्गूलर्क्षवानराः।

उन महातपस्वीने कुपित हो अपने उन दोनों ऋषि भाइयोंके पास पहुँचकर कठोर वाणीमें शाप देते हुए कहा—'तुम दोनों पशुओंके लोभमें फँसकर मुझे छोड़कर भाग आये। इसलिये इसी पापकर्मके कारण मेरे शापसे तुम दोनों भाई महाभयंकर भेड़ियेका शरीर धारण करके दाँढ़ोंसे युक्त हो इधर-उधर भटकते फिरोगे। तुम दोनोंकी संतानके रूपमें गोलांगूल, रीछ और वानर आदि पशुओंकी उत्पत्ति होगी'॥ ४९—५१½॥

इत्युक्तेन तदा तेन क्षणादेव विशाम्पते॥ ५२॥
तथाभूतावदृश्येतां वचनात् सत्यवादिनः।

प्रजानाथ! उनके इतना कहते ही वे दोनों भाई उस सत्यवादीके वचनसे उसी क्षण भेड़ियेकी शकलमें दिखायी देने लगे॥ ५२½॥

तत्राप्यमितविक्रान्तः स्पृष्ट्वा तोयं हलायुधः॥ ५३॥
दत्त्वा च विविधान् दायान् पूजयित्वा च वै द्विजान्।

अमित पराक्रमी बलरामजीने उस तीर्थमें भी जलका स्पर्श किया और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें नाना प्रकारके धन प्रदान किये॥ ५३½॥

उदपानं च तं वीक्ष्य प्रशस्य च पुनः पुनः॥ ५४॥
नदीगतमदीनात्मा प्राप्तो विनशनं तदा॥ ५५॥

उदार चित्तवाले बलरामजी सरस्वती नदीके अन्तर्गत उदपानतीर्थका दर्शन करके उसकी बारंबार स्तुति-प्रशंसा करते हुए वहाँसे विनशनतीर्थमें चले गये॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां त्रिताख्याने षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें त्रितका उपाख्यानविषयक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

विनशन, सुभूमिक, गन्धर्व, गर्गस्रोत, शंख, द्वैतवन तथा नैमिषेय आदि तीर्थोंमें होते हुए बलभद्रजीका सप्त सारस्वततीर्थमें प्रवेश

वैशम्पायन उवाच

ततो विनशनं राजन् जगामाथ हलायुधः।
शूद्राभीरान् प्रति द्वेषाद् यत्र नष्टा सरस्वती॥ १॥
तस्मात् तु ऋषयो नित्यं प्राहुर्विनशनेति च।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उदपानतीर्थसे चलकर हलधारी बलराम विनशनतीर्थमें आये, जहाँ (दुष्कर्मपरायण) शूद्रों और आभीरोंके प्रति द्वेष होनेसे सरस्वती नदी विनष्ट (अदृश्य) हो गयी है। इसीलिये ऋषिगण उसे सदा विनशनतीर्थ कहते हैं॥ १½॥

तत्राप्युपस्पृश्य बलः सरस्वत्यां महाबलः॥ २॥
सुभूमिकं ततोऽगच्छत् सरस्वत्यास्तटे वरे।

महाबली बलराम वहाँ भी सरस्वतीमें आचमन और स्नान करके उसके सुन्दर तटपर स्थित हुए 'सुभूमिक' तीर्थमें गये॥ २½॥

तत्र चाप्सरसः शुभ्रा नित्यकालमतन्द्रिताः॥ ३॥
क्रीडाभिर्विमलाभिश्च क्रीडन्ति विमलाननाः।

उस तीर्थमें गौरवर्ण तथा निर्मल मुखवाली सुन्दरी अप्सराएँ आलस्य त्यागकर सदा नाना प्रकारकी विमल क्रीडाओंद्वारा मनोरंजन करती हैं॥ ३½॥

तत्र देवाः सगन्धर्वा मासि मासि जनेश्वर॥ ४॥
अभिगच्छन्ति तत् तीर्थं पुण्यं ब्राह्मणसेवितम्।

जनेश्वर! वहाँ उस ब्राह्मणसेवित पुण्यतीर्थमें गन्धर्वोंसहित देवता भी प्रतिमास आया करते हैं॥ ४½॥

तत्रादृश्यन्त गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः॥ ५॥
समेत्य सहिता राजन् यथाप्राप्तं यथासुखम्।

राजन्! गन्धर्वगण और अप्सराएँ एक साथ मिलकर वहाँ आती और सुखपूर्वक विचरण करती दिखायी देती हैं॥ ५½॥

तत्र मोदन्ति देवाश्च पितरश्च सवीरुधः॥ ६॥
पुण्यैः पुष्पैः सदा दिव्यैः कीर्यमाणाः पुनः पुनः।

वहाँ देवता और पितर लता-वेलोंके साथ आमोदित होते हैं, उनके ऊपर सदा पवित्र एवं दिव्य पुष्पोंकी वर्षा बारंबार होती रहती है॥ ६½॥

आक्रीडभूमिः सा राजंस्तासामप्सरसां शुभा॥ ७॥
सुभूमिकेति विख्याता सरस्वत्यास्तटे वरे।

राजन्! सरस्वतीके सुन्दर तटपर वह उन अप्सराओंकी मंगलमयी क्रीडाभूमि है, इसलिये वह स्थान सुभूमिक नामसे विख्यात है॥ ७½॥

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च वसु विप्राय माधवः॥ ८॥
श्रुत्वा गीतं च तद् दिव्यं वादित्राणां च निःस्वनम्।
छायाश्च विपुला दृष्ट्वा देवगन्धर्वरक्षसाम्॥ ९॥
गन्धर्वाणां ततस्तीर्थमागच्छद् रोहिणीसुतः।

बलरामजीने वहाँ स्नान करके ब्राह्मणोंको धन दान किया और दिव्य गीत एवं दिव्य वाद्योंकी ध्वनि सुनकर देवताओं, गन्धर्वों तथा राक्षसोंकी बहुत-सी मूर्तियोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् रोहिणीनन्दन बलराम गन्धर्वतीर्थमें गये॥ ८-९½॥

विश्वावसुमुखास्तत्र गन्धर्वास्तपसान्विताः॥ १०॥
नृत्यवादित्रगीतं च कुर्वन्ति सुमनोरमम्।

वहाँ तपस्यामें लगे हुए विश्वावसु आदि गन्धर्व अत्यन्त मनोरम नृत्य, वाद्य और गीतका आयोजन करते रहते हैं॥ १०½॥

तत्र दत्त्वा हलधरो विप्रेभ्यो विविधं वसु॥ ११॥
अजाविकं गोखरोष्ट्रं सुवर्णं रजतं तथा।
भोजयित्वा द्विजान् कामैः संतर्प्य च महाधनैः॥ १२॥
प्रययौ सहितो विप्रैः स्तूयमानश्च माधवः।

हलधरने वहाँ भी ब्राह्मणोंको भेड़, बकरी, गाय, गदहा, ऊँट और सोना-चाँदी आदि नाना प्रकारके धन देकर उन्हें इच्छानुसार भोजन कराया तथा प्रचुर धनसे संतुष्ट करके ब्राह्मणोंके साथ ही वहाँसे प्रस्थान किया। उस समय ब्राह्मण लोग बलरामजीकी बड़ी स्तुति करते थे॥ ११-१२½॥

तस्माद् गन्धर्वतीर्थाच्च महाबाहुररिंदमः॥ १३॥
गर्गस्रोतो महातीर्थमाजगामैककुण्डली।

उस गन्धर्वतीर्थसे चलकर एक कानमें कुण्डल धारण करनेवाले शत्रुदमन महाबाहु बलराम गर्गस्रोत नामक महातीर्थमें आये॥ १३½॥

तत्र गर्गेण वृद्धेन तपसा भावितात्मना॥ १४॥
कालज्ञानगतिश्चैव ज्योतिषां च व्यतिक्रमः।
उत्पाता दारुणाश्चैव शुभाश्च जनमेजय॥ १५॥
सरस्वत्याः शुभे तीर्थे विदिता वै महात्मना।
तस्य नाम्ना च तत् तीर्थं गर्गस्रोत इति स्मृतम्॥ १६॥

जनमेजय! वहाँ तपस्यासे पवित्र अन्तःकरणवाले महात्मा वृद्ध गर्गने सरस्वतीके उस शुभ तीर्थमें कालका

ज्ञान, कालकी गति, ग्रहों और नक्षत्रोंके उलट-फेर, दारुण उत्पात तथा शुभ लक्षण—इन सभी बातोंकी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उन्हींके नामसे वह तीर्थ गर्गस्रोत कहलाता है॥ १४—१६॥

तत्र गर्गं महाभागमृषयः सुव्रता नृप।
उपासांचक्रिरे नित्यं कालज्ञानं प्रति प्रभो॥ १७॥

सामर्थ्यशाली नरेश्वर! वहाँ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ऋषियोंने कालज्ञानके लिये सदा महाभाग गर्गमुनिकी उपासना (सेवा) की थी॥ १७॥

तत्र गत्वा महाराज बलः श्वेतानुलेपनः।
विधिवद्धि धनं दत्त्वा मुनीनां भावितात्मनाम्॥ १८॥
उच्चावचांस्तथा भक्ष्यान् विप्रेभ्यो विप्रदाय सः।
नीलवासास्तदागच्छच्छङ्खतीर्थं महायशाः॥ १९॥

महाराज! वहाँ जाकर श्वेतचन्दनचर्चित, नीलाम्बरधारी महायशस्वी बलरामजी विशुद्ध अन्तःकरणवाले महर्षियोंको विधिपूर्वक धन देकर ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ समर्पित करके वहाँसे शंखतीर्थमें चले गये॥ १८-१९॥

तत्रापश्यन्महाशङ्खं महामेरुमिवोच्छ्रितम्।
श्वेतपर्वतसंकाशमृषिसंघैर्निषेवितम् ॥ २०॥
सरस्वत्यास्तटे जातं नगं तालध्वजो बली।

वहाँ तालचिह्नित ध्वजावाले बलवान् बलरामने महाशंख नामक एक वृक्ष देखा, जो महान् मेरुपर्वतके समान ऊँचा और श्वेताचलके समान उज्ज्वल था। उसके नीचे ऋषियोंके समूह निवास करते थे। वह वृक्ष सरस्वतीके तटपर ही उत्पन्न हुआ था॥ २०½॥

यक्षा विद्याधराश्चैव राक्षसाश्चामितौजसः॥ २१॥
पिशाचाश्चामितबला यत्र सिद्धाः सहस्रशः।

उस वृक्षके आस-पास यक्ष, विद्याधर, अमित तेजस्वी राक्षस, अनन्त बलशाली पिशाच तथा सिद्धगण सहस्रोंकी संख्यामें निवास करते थे॥ २१½॥

ते सर्वे ह्याशनं त्यक्त्वा फलं तस्य वनस्पतेः॥ २२॥
व्रतैश्च नियमैश्चैव काले काले स्म भुञ्जते।

वे सब-के-सब अन्न छोड़कर व्रत और नियमोंका पालन करते हुए समय-समयपर उस वृक्षका ही फल खाया करते थे॥ २२½॥

प्राप्तैश्च नियमैस्तैस्तैर्विचरन्तः पृथक् पृथक्॥ २३॥
अदृश्यमाना मनुजैर्व्यचरन् पुरुषर्षभ।
एवं ख्यातो नरव्याघ्र लोकेऽस्मिन् स वनस्पतिः॥ २४॥

पुरुषश्रेष्ठ! वे उन स्वीकृत नियमोंके अनुसार पृथक्-पृथक् विचरते हुए मनुष्योंसे अदृश्य रहकर घूमते थे। नरव्याघ्र! इस प्रकार वह वनस्पति इस विश्वमें विख्यात था॥ २३-२४॥

ततस्तीर्थं सरस्वत्याः पावनं लोकविश्रुतम्।
तस्मिंश्च यदुशार्दूलो दत्त्वा तीर्थे पयस्विनीः॥ २५॥
ताम्रायसानि भाण्डानि वस्त्राणि विविधानि च।
पूजयित्वा द्विजांश्चैव पूजितश्च तपोधनैः॥ २६॥

वह वृक्ष सरस्वतीका लोकविख्यात पावन तीर्थ है। यदुश्रेष्ठ बलराम उस तीर्थमें दूध देनेवाली गौओंका दान करके ताँबे और लोहेके बर्तन तथा नाना प्रकारके वस्त्र भी ब्राह्मणोंको दिये। ब्राह्मणोंका पूजन करके वे स्वयं भी तपस्वी मुनियोंद्वारा पूजित हुए॥ २५-२६॥

पुण्यं द्वैतवनं राजन्नाजगाम हलायुधः।
तत्र गत्वा मुनीन् दृष्ट्वा नानावेषधरान् बलः॥ २७॥
आप्लुत्य सलिले चापि पूजयामास वै द्विजान्।

राजन्! वहाँसे हलधर बलभद्रजी पवित्र द्वैतवनमें आये और वहाँके नाना वेशधारी मुनियोंका दर्शन करके जलमें गोता लगाकर उन्होंने ब्राह्मणोंका पूजन किया॥

तथैव दत्त्वा विप्रेभ्यः परिभोगान् सुपुष्कलान्॥ २८॥
ततः प्रायाद् बलो राजन् दक्षिणेन सरस्वतीम्।

राजन्! इसी प्रकार विप्रवृन्दको प्रचुर भोगसामग्री अर्पित करके फिर बलरामजी सरस्वतीके दक्षिण तटपर होकर यात्रा करने लगे॥ २८½॥

गत्वा चैवं महाबाहुर्नातिदूरे महायशाः॥ २९॥
धर्मात्मा नागधन्वानं तीर्थमागमदच्युतः।
यत्र पन्नगराजस्य वासुकेः संनिवेशनम्॥ ३०॥
महाद्युतेर्महाराज बहुभिः पन्नगैर्वृतम्।
ऋषीणां हि सहस्राणि तत्र नित्यं चतुर्दश॥ ३१॥

महाराज! इस प्रकार थोड़ी ही दूर जाकर महाबाहु, महायशस्वी धर्मात्मा भगवान् बलराम नागधन्वा नामक तीर्थमें पहुँच गये, जहाँ महातेजस्वी नागराज वासुकिका बहुसंख्यक सर्पोंसे घिरा हुआ निवासस्थान है। वहाँ सदा चौदह हजार ऋषि निवास करते हैं॥ २९—३१॥

यत्र देवाः समागम्य वासुकिं पन्नगोत्तमम्।
सर्वपन्नगराजानमभ्यषिञ्चन् यथाविधि॥ ३२॥

वहीं देवताओंने आकर सर्पोंमें श्रेष्ठ वासुकिको समस्त सर्पोंके राजाके पदपर विधिपूर्वक अभिषिक्त किया था॥ ३२॥

पन्नगेभ्यो भयं तत्र विद्यते न स्म पौरव।
तत्रापि विधिवद् दत्त्वा विप्रेभ्यो रत्नसंचयान्॥ ३३॥
प्रायात् प्राचीं दिशं तत्र तत्र तीर्थान्यनेकशः।
सहस्रशतसंख्यानि प्रथितानि पदे पदे॥ ३४॥

पौरव! वहाँ किसीको सर्पोंसे भय नहीं होता। उस तीर्थमें भी बलरामजी ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक ढेर-के-ढेर रत्न देकर पूर्वदिशाकी ओर चल दिये, जहाँ पग-पगपर अनेक प्रकारके प्रसिद्ध तीर्थ प्रकट हुए हैं। उनकी संख्या लगभग एक लाख है॥ ३३-३४॥

आप्लुत्य तत्र तीर्थेषु यथोक्तं तत्र चर्षिभिः।
कृत्वोपवासनियमं दत्त्वा दानानि सर्वशः॥ ३५॥
अभिवाद्य मुनींस्तान् वै तत्र तीर्थनिवासिनः।
उद्दिष्टमार्गः प्रययौ यत्र भूयः सरस्वती॥ ३६॥
प्राङ्मुखं वै निववृते वृष्टिर्वातहता यथा।

उन तीर्थोंमें स्नान करके उन्होंने ऋषियोंके बताये अनुसार व्रत-उपवास आदि नियमोंका पालन किया। फिर सब प्रकारके दान करके तीर्थनिवासी मुनियोंको मस्तक नवाकर उनके बताये हुए मार्गसे वे पुनः उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ सरस्वती हवाकी मारी हुई वर्षाके समान पुनः पूर्वदिशाकी ओर लौट पड़ी हैं॥

ऋषीणां नैमिषेयाणामवेक्षार्थं महात्मनाम्॥ ३७॥
निवृत्तां तां सरिच्छ्रेष्ठां तत्र दृष्ट्वा तु लाङ्गली।
बभूव विस्मितो राजन् बलः श्वेतानुलेपनः॥ ३८॥

राजन्! नैमिषारण्यनिवासी महात्मा मुनियोंके दर्शनके लिये पूर्वदिशाकी ओर लौटी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका दर्शन करके श्वेत-चन्दनचर्चित हलधारी बलराम आश्चर्यचकित हो उठे॥ ३७-३८॥

जनमेजय उवाच

कस्मात् सरस्वती ब्रह्मन् निवृत्ता प्राङ्मुखीभवत्।
व्याख्यातमेतदिच्छामि सर्वमध्वर्युसत्तम॥ ३९॥
कस्मिंश्चित् कारणे तत्र विस्मितो यदुनन्दनः।
निवृत्ता हेतुना केन कथमेव सरिद्वरा॥ ४०॥

जनमेजयने पूछा—यजुर्वेदके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! मैं आपके मुँहसे यह सुनना चाहता हूँ कि सरस्वती नदी किस कारणसे पीछे लौटकर पूर्वाभिमुख बहने लगी? क्या कारण था कि वहाँ यदुनन्दन बलरामजीको भी आश्चर्य हुआ? सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती किस कारणसे और किस प्रकार पूर्वदिशाकी ओर लौटी थीं?॥

वैशम्पायन उवाच

पूर्वं कृतयुगे राजन् नैमिषेयास्तपस्विनः।
वर्तमाने सुविपुले सत्रे द्वादशवार्षिके॥ ४१॥
ऋषयो बहवो राजंस्तत् सत्रमभिपेदिरे।

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, वहाँ बारह वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले एक महान् यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया गया था। उस सत्रमें नैमिषारण्यनिवासी तपस्वी मुनि तथा अन्य बहुत-से ऋषि पधारे थे॥ ४१ १/२ ॥

उषित्वा च महाभागास्तस्मिन् सत्रे यथाविधि॥ ४२॥
निवृत्ते नैमिषेये वै सत्रे द्वादशवार्षिके।
आजग्मुर्ऋषयस्तत्र बहवस्तीर्थकारणात्॥ ४३॥

नैमिषारण्यवासियोंके उस द्वादशवर्षीय यज्ञमें वे महाभाग ऋषि दीर्घकालतक रहे। जब वह यज्ञ समाप्त हो गया तब बहुत-से महर्षि तीर्थसेवनके लिये वहाँ आये॥

ऋषीणां बहुलत्वात्तु सरस्वत्या विशाम्पते।
तीर्थानि नगरायन्ते कूले वै दक्षिणे तदा॥ ४४॥

प्रजानाथ! ऋषियोंकी संख्या अधिक होनेके कारण सरस्वतीके दक्षिण तटपर जितने तीर्थ थे, वे सभी नगरोंके समान प्रतीत होने लगे॥ ४४॥

समन्तपञ्चकं यावत्तावत्ते द्विजसत्तमाः।
तीर्थलोभान्नरव्याघ्र नद्यास्तीरं समाश्रिताः॥ ४५॥

पुरुषसिंह! तीर्थसेवनके लोभसे वे ब्रह्मर्षिगण समन्तपंचक तीर्थतक सरस्वती नदीके तटपर ठहर गये॥

जुह्वतां तत्र तेषां तु मुनीनां भावितात्मनाम्।
स्वाध्यायेनातिमहता बभूवुः पूरिता दिशः॥ ४६॥

वहाँ होम करते हुए पवित्रात्मा मुनियोंके अत्यन्त गम्भीर स्वरसे किये जानेवाले स्वाध्यायके शब्दसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठी थीं॥ ४६॥

अग्निहोत्रैस्ततस्तेषां क्रियमाणैर्महात्मनाम्।
अशोभत सरिच्छ्रेष्ठा दीप्यमानैः समन्ततः॥ ४७॥

चारों ओर प्रकाशित हुए उन महात्माओंद्वारा किये जानेवाले यज्ञसे सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ४७॥

वालखिल्या महाराज अश्मकुट्टाश्च तापसाः।
दन्तोलूखलिनश्चान्ये प्रसंख्यानास्तथा परे॥ ४८॥
वायुभक्षा जलाहाराः पर्णभक्षाश्च तापसाः।
नानानियमयुक्ताश्च तथा स्थण्डिलशायिनः॥ ४९॥
आसन् वै मुनयस्तत्र सरस्वत्याः समीपतः।
शोभयन्तः सरिच्छ्रेष्ठां गङ्गामिव दिवौकसः॥ ५०॥

महाराज! सरस्वतीके उस निकटवर्ती तटपर सुप्रसिद्ध तपस्वी वालखिल्य, अश्मकुट्ट[१], दन्तोलूखली[२], प्रसंख्यान[३],

---

१. पत्थरसे फोड़े हुए फलका भोजन करनेवाले। २. दाँतसे ही ओखलीका काम लेनेवाले अर्थात् ओखलीमें कूटकर नहीं, दाँतोंसे ही चबाकर खानेवाले। ३. गिने हुए फल खानेवाले।

हवा पीकर रहनेवाले, जलपानपर ही निर्वाह करनेवाले, पत्तोंका ही आहार करनेवाले, भाँति-भाँतिके नियमोंमें संलग्न तथा वेदीपर शयन करनेवाले तपस्वीमुनि विराजमान थे। वे सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीकी उसी प्रकार शोभा बढ़ा रहे थे, जैसे देवतालोग गंगाजीकी॥ ४८—५०॥

शतशश्च समापेतुर्ऋषयः सत्रयाजिनः।
तेऽवकाशं न ददृशुः सरस्वत्या महाव्रताः॥ ५१॥

सत्रयागमें सम्मिलित हुए सैकड़ों महान् व्रतधारी ऋषि वहाँ आये थे; परंतु उन्होंने सरस्वतीके तटपर अपने रहनेके लिये स्थान नहीं देखा॥ ५१॥

ततो यज्ञोपवीतैस्ते तत्तीर्थं निर्मिमाय वै।
जुहुवुश्चाग्निहोत्रांश्च चक्रुश्च विविधाः क्रियाः॥ ५२॥

तब उन्होंने यज्ञोपवीतसे उस तीर्थका निर्माण करके वहाँ अग्निहोत्रसम्बन्धी आहुतियाँ दीं और नाना प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान किया॥ ५२॥

ततस्तमृषिसंघातं निराशं चिन्तयान्वितम्।
दर्शयामास राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती॥ ५३॥

राजेन्द्र! उस समय उस ऋषिसमूहको निराश और चिन्तित जान सरस्वतीने उनकी अभीष्ट-सिद्धिके लिये उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया॥ ५३॥

ततः कुञ्जान् बहून् कृत्वा संनिवृत्ता सरस्वती।
ऋषीणां पुण्यतपसां कारुण्याज्जनमेजय॥ ५४॥

जनमेजय! तत्पश्चात् बहुत-से कुंजोंका निर्माण करती हुई सरस्वती पीछे लौट पड़ीं; क्योंकि उन पुण्यतपस्वी ऋषियोंपर उनके हृदयमें करुणाका संचार हो आया था॥ ५४॥

ततो निवृत्य राजेन्द्र तेषामर्थे सरस्वती।
भूयः प्रतीच्यभिमुखी प्रसुस्राव सरिद्वरा॥ ५५॥

राजेन्द्र! उनके लिये लौटकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पुनः पश्चिमकी ओर मुड़कर बहने लगीं॥ ५५॥

अमोघागमनं कृत्वा तेषां भूयो व्रजाम्यहम्।
इत्यद्भुतं महच्चक्रे तदा राजन् महानदी॥ ५६॥

राजन्! उस महानदीने यह सोच लिया था कि मैं इन ऋषियोंके आगमनको सफल बनाकर पुनः पश्चिम मार्गसे ही लौट जाऊँगी। यह सोचकर ही उसने वह महान् अद्भुत कर्म किया॥ ५६॥

एवं स कुञ्जो राजन् वै नैमिषीय इति स्मृतः।
कुरुश्रेष्ठ कुरुक्षेत्रे कुरुष्व महतीं क्रियाम्॥ ५७॥

नरेश्वर! इस प्रकार वह कुंज नैमिषीय नामसे प्रसिद्ध हुआ। कुरुश्रेष्ठ! तुम भी कुरुक्षेत्रमें महान् कर्म करो॥ ५७॥

तत्र कुञ्जान् बहून् दृष्ट्वा निवृत्तां च सरस्वतीम्।
बभूव विस्मयस्तत्र रामस्याथ महात्मनः॥ ५८॥

वहाँ बहुत-से कुंजों तथा लौटी हुई सरस्वतीका दर्शन करके महात्मा बलरामजीको बड़ा विस्मय हुआ॥ ५८॥

उपस्पृश्य तु तत्रापि विधिवद् यदुनन्दनः।
दत्त्वा दायान् द्विजातिभ्यो भाण्डानि विविधानि च॥ ५९॥
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय च।
ततः प्रायाद् बलो राजन् पूज्यमानो द्विजातिभिः॥ ६०॥

यदुनन्दन बलरामने वहाँ विधिपूर्वक स्नान और आचमन करके ब्राह्मणोंको धन और भाँति-भाँतिके बर्तन दान किये। राजन्! फिर उन्हें नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ देकर द्विजातियोंद्वारा पूजित होते हुए बलरामजी वहाँसे चल दिये॥ ५९-६०॥

सरस्वतीतीर्थवरं नानाद्विजगणायुतम्।
बदरेङ्गुदकाश्मर्यप्लक्षाश्वत्थविभीतकैः॥ ६१॥
कङ्कोलैश्च पलाशैश्च करीरैः पीलुभिस्तथा।
सरस्वतीतीर्थरुहैस्तरुभिर्विविधैस्तथा॥ ६२॥
करूषकवरैश्चैव बिल्वैराम्रातकैस्तथा।
अतिमुक्तकषण्डैश्च पारिजातैश्च शोभितम्॥ ६३॥
कदलीवनभूयिष्ठं दृष्टिकान्तं मनोहरम्।
वाय्वम्बुफलपर्णादैर्दन्तोलूखलिकैरपि॥ ६४॥
तथाश्मकुट्टैर्वानेयैर्मुनिभिर्बहुभिर्वृतम्।
स्वाध्यायघोषसंघुष्टं मृगयूथशताकुलम्॥ ६५॥
अहिंस्रैर्धर्मपरमैर्नृभिरत्यर्थसेवितम्।
सप्तसारस्वतं तीर्थमाजगाम हलायुधः॥ ६६॥
यत्र मङ्कणकः सिद्धस्तपस्तेपे महामुनिः॥ ६७॥

तदनन्तर हलायुध बलदेवजी सप्तसारस्वत नामक तीर्थमें आये, जो सरस्वतीके तीर्थोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। वहाँ अनेकानेक ब्राह्मणोंके समुदाय निवास करते थे। बेर, इंगुद, काश्मर्य (गम्भारी), पाकर, पीपल, बहेड़े, कंकोल, पलाश, करीर, पीलु, करूष, बिल्व, अमड़ा, अतिमुक्त, पारिजात तथा सरस्वतीके तटपर उगे हुए अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित वह तीर्थ देखनेमें कमनीय और मनको मोह लेनेवाला है। वहाँ केलेके बहुत-से बगीचे हैं। उस तीर्थमें वायु, जल, फल और पत्ते चबाकर रहनेवाले, दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेनेवाले और पत्थरसे फोड़े हुए फल खानेवाले बहुतेरे वानप्रस्थ मुनि भरे हुए थे। वहाँ वेदोंके स्वाध्यायकी

गम्भीर ध्वनि गूँज रही थी। मृगोंके सैकड़ों यूथ सब ओर फैले हुए थे। हिंसारहित धर्मपरायण मनुष्य उस तीर्थका अधिक सेवन करते थे। वहीं सिद्ध महामुनि मंकणकने बड़ी भारी तपस्या की थी॥ ६१—६७॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

सप्तसारस्वततीर्थकी उत्पत्ति, महिमा और मंकणक मुनिका चरित्र

जनमेजय उवाच

सप्तसारस्वतं कस्मात् कश्च मङ्कणको मुनिः।
कथंसिद्धः स भगवान् कश्चास्य नियमोऽभवत्॥ १॥

जनमेजयने पूछा—विप्रवर! सप्तसारस्वततीर्थकी उत्पत्ति किस हेतुसे हुई? पूजनीय मंकणक मुनि कौन थे? कैसे उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई और उनका नियम क्या था?॥ १॥

कस्य वंशे समुत्पन्नः किं चाधीतं द्विजोत्तम।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विधिवद् द्विजसत्तम॥ २॥

द्विजश्रेष्ठ! वे किसके वंशमें उत्पन्न हुए थे और उन्होंने किस शास्त्रका अध्ययन किया था? यह सब मैं विधिपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ २॥

वैशम्पायन उवाच

राजन् सप्त सरस्वत्यो याभिर्व्याप्तमिदं जगत्।
आहूता बलवद्भिर्हि तत्र तत्र सरस्वती॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! सरस्वती नामकी सात नदियाँ और हैं, जो इस सारे जगत्में फैली हुई हैं। तपोबलसम्पन्न महात्माओंने जहाँ-जहाँ सरस्वतीका आवाहन किया है, वहाँ-वहाँ वे गयी हैं॥ ३॥

सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला च मनोरमा।
सरस्वती चौघवती सुरेणुर्विमलोदका॥ ४॥

उन सबके नाम इस प्रकार हैं—सुप्रभा, कांचनाक्षी, विशाला, मनोरमा, सरस्वती, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका॥ ४॥

पितामहस्य महतो वर्तमाने महामखे।
विततेयज्ञवाटे च संसिद्धेषु द्विजातिषु॥ ५॥
पुण्याहघोषैर्विमलैर्वेदानां निनदैस्तथा।
देवेषु चैव व्यग्रेषु तस्मिन् यज्ञविधौ तदा॥ ६॥

एक समयकी बात है, पुष्करतीर्थमें महात्मा ब्रह्माजीका एक महान् यज्ञ हो रहा था। उनकी विस्तृत यज्ञशालामें सिद्ध ब्राह्मण विराजमान थे। पुण्याहवाचनके निर्दोष घोष तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे सारा यज्ञमण्डप गूँज रहा था और सम्पूर्ण देवता उस यज्ञ-कर्मके सम्पादनमें व्यस्त थे॥ ५-६॥

तत्र चैव महाराज दीक्षिते प्रपितामहे।
यजतस्तस्य सत्रेण सर्वकामसमृद्धिना॥ ७॥

महाराज! साक्षात् ब्रह्माजीने उस यज्ञकी दीक्षा ली थी। उनके यज्ञ करते समय सबकी समस्त इच्छाएँ उस यज्ञद्वारा परिपूर्ण होती थीं॥ ७॥

मनसा चिन्तिता ह्यर्था धर्मार्थकुशलैस्तदा।
उपतिष्ठन्ति राजेन्द्र द्विजातींस्तत्र तत्र ह॥ ८॥

राजेन्द्र! धर्म और अर्थमें कुशल मनुष्य मनमें जिन पदार्थोंका चिन्तन करते थे, वे उनके पास वहाँ तत्काल उपस्थित हो जाते थे॥ ८॥

जगुश्च तत्र गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
वादित्राणि च दिव्यानि वादयामासुरञ्जसा॥ ९॥

उस यज्ञमें गन्धर्व गीत गाते और अप्सराएँ नृत्य करती थीं। वहाँ दिव्य बाजे बजाये जा रहे थे॥ ९॥

तस्य यज्ञस्य सम्पत्त्या तुतुषुर्देवता अपि।
विस्मयं परमं जग्मुः किमु मानुषयोनयः॥ १०॥

उस यज्ञके वैभवसे देवता भी संतुष्ट थे और अत्यन्त आश्चर्यमें निमग्न हो रहे थे; फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है?॥ १०॥

वर्तमाने तथा यज्ञे पुष्करस्थे पितामहे।
अब्रुवन्नृषयो राजन्नायं यज्ञो महागुणः॥ ११॥
न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती।

राजन्! इस प्रकार जब पितामह ब्रह्मा पुष्करमें रहकर यज्ञ कर रहे थे, उस समय ऋषियोंने उनसे कहा—'भगवन्! आपका यह यज्ञ अभी महान् गुणसे सम्पन्न नहीं है; क्योंकि यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती नहीं दिखायी देती हैं'॥ ११½॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् प्रीतः सस्मारार्थ सरस्वतीम्॥ १२॥
पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै।

यह सुनकर भगवान् ब्रह्माने प्रसन्नतापूर्वक सरस्वती

देवीकी आराधना करके पुष्करमें यज्ञ करते समय उनका आवाहन किया॥ १२ १/२ ॥

सुप्रभा नाम राजेन्द्र नाम्ना तत्र सरस्वती॥ १३॥
तां दृष्ट्वा मुनयस्तुष्टास्त्वरायुक्तां सरस्वतीम्।
पितामहं मानयन्तीं क्रतुं ते बहु मेनिरे॥ १४॥

राजेन्द्र! तब वहाँ सरस्वती सुप्रभा नामसे प्रकट हुईं। बड़ी उतावलीके साथ आकर ब्रह्माजीका सम्मान करती हुई सरस्वतीका दर्शन करके ऋषिगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उस यज्ञको बहुत सम्मान दिया॥

एवमेषा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करेषु सरस्वती।
पितामहार्थं सम्भूता तुष्ट्यर्थं च मनीषिणाम्॥ १५॥

इस प्रकार सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती पुष्करतीर्थमें ब्रह्माजी तथा मनीषी महात्माओंके संतोषके लिये प्रकट हुईं॥ १५॥

नैमिषे मुनयो राजन् समागम्य समासते।
तत्र चित्राः कथा ह्यासन् वेदं प्रति जनेश्वर॥ १६॥

राजन्! जनेश्वर! नैमिषारण्यमें बहुत-से मुनि आकर रहते थे। वहाँ वेदके विषयमें विचित्र कथा-वार्ता होती रहती थी॥ १६॥

यत्र ते मुनयो ह्यासन् नानास्वाध्यायवेदिनः।
ते समागम्य मुनयः सस्मरुर्वै सरस्वतीम्॥ १७॥

जहाँ वे नाना प्रकारके स्वाध्यायोंका ज्ञान रखनेवाले मुनि रहते थे, वहीं उन्होंने परस्पर मिलकर सरस्वती देवीका स्मरण किया॥ १७॥

सा तु ध्याता महाराज ऋषिभिः सत्रयाजिभिः।
समागतानां राजेन्द्र साहाय्यार्थं महात्मनाम्॥ १८॥
आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती।

महाराज! राजाधिराज! उन सत्रयाजी (ज्ञानयज्ञ करनेवाले) ऋषियोंके ध्यान लगानेपर महाभागा पुण्यसलिला सरस्वतीदेवी उन समागत महात्माओंकी सहायताके लिये वहाँ आयीं॥ १८ १/२ ॥

नैमिषे काञ्चनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम्॥ १९॥
आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारत पूजिता।

भारत! नैमिषारण्यतीर्थमें उन सत्रयाजी मुनियोंके समक्ष आयी हुई सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती कांचनाक्षी नामसे सम्मानित हुईं॥ १९ १/२ ॥

गयस्य यजमानस्य गयेष्वेव महाक्रतुम्॥ २०॥
आहूता सरितां श्रेष्ठा गययज्ञे सरस्वती।
विशालां तु गयस्याहुर्ऋषयः संशितव्रताः॥ २१॥

राजा गय गयदेशमें ही एक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। उनके यज्ञमें भी सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीका आवाहन किया गया था। कठोर व्रतका पालन करनेवाले महर्षि गयके यज्ञमें आयी हुई सरस्वतीको विशाला कहते हैं॥ २०-२१॥

सरित् सा हिमवत्पार्श्वात् प्रस्रुता शीघ्रगामिनी।
औद्दालकेस्तथा यज्ञे यजतस्तस्य भारत॥ २२॥

भरतनन्दन! यज्ञपरायण उद्दालक ऋषिके यज्ञमें भी सरस्वतीका आवाहन किया गया। वे शीघ्रगामिनी सरस्वती हिमालयसे निकलकर उस यज्ञमें आयी थीं॥

समेते सर्वतः स्फीते मुनीनां मण्डले तदा।
उत्तरे कोसलाभागे पुण्ये राजन् महात्मना॥ २३॥
उद्दालकेन यजता पूर्वं ध्याता सरस्वती।
आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात्॥ २४॥

राजन्! उन दिनों समृद्धिशाली एवं पुण्यमय उत्तर कोसल प्रान्तमें सब ओरसे मुनिमण्डली एकत्र हुई थी। उसमें यज्ञ करते हुए महात्मा उद्दालकने पूर्वकालमें सरस्वती देवीका ध्यान किया। तब मुनिका कार्य सिद्ध करनेके लिये सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती उस देशमें आयीं॥ २३-२४॥

पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंवृतैः।
मनोरमेति विख्याता सा हि तैर्मनसा कृता॥ २५॥

वहाँ वल्कल और मृगचर्मधारी मुनियोंसे पूजित होनेवाली सरस्वतीका नाम हुआ मनोरमा; क्योंकि उन्होंने मनके द्वारा उनका चिन्तन किया था॥ २५॥

सुरेणुर्ऋषभे द्वीपे पुण्ये राजर्षिसेविते।
कुरोश्च यजमानस्य कुरुक्षेत्रे महात्मनः॥ २६॥
आजगाम महाभागा सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती।

राजर्षियोंसे सेवित पुण्यमय ऋषभद्वीप तथा कुरुक्षेत्रमें जब महात्मा राजा कुरु यज्ञ कर रहे थे, उस समय सरिताओंमें श्रेष्ठ महाभागा सरस्वती वहाँ आयी थीं; उनका नाम हुआ सुरेणु॥ २६ १/२ ॥

ओघवत्यपि राजेन्द्र वसिष्ठेन महात्मना॥ २७॥
समाहूता कुरुक्षेत्रे दिव्यतोया सरस्वती।
दक्षेण यजता चापि गङ्गाद्वारे सरस्वती॥ २८॥
सुरेणुरिति विख्याता प्रस्रुता शीघ्रगामिनी।

गंगाद्वारमें यज्ञ करते समय दक्षप्रजापतिने जब सरस्वतीका स्मरण किया था, उस समय भी शीघ्रगामिनी सरस्वती वहाँ बहती हुई सुरेणु नामसे ही विख्यात हुईं। राजेन्द्र! इसी प्रकार महात्मा वसिष्ठने भी कुरुक्षेत्रमें दिव्यसलिला सरस्वतीका आवाहन किया था, जो ओघवतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ २७-२८ १/२ ॥

विमलोदा भगवती ब्रह्मणा यजता पुनः॥ २९॥
समाहूता ययौ तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ।

ब्रह्माजीने एक बार फिर पुण्यमय हिमालयपर्वतपर यज्ञ किया था। उस समय उनके आवाहन करनेपर भगवती सरस्वतीने विमलोदका नामसे प्रसिद्ध होकर वहाँ पदार्पण किया था॥ २९½॥

एकीभूतास्ततस्तास्तु तस्मिंस्तीर्थे समागताः॥ ३०॥
सप्तसारस्वतं तीर्थं ततस्तु प्रथितं भुवि।

फिर ये सातों सरस्वतियाँ एकत्र होकर उस तीर्थमें आयी थीं, इसीलिये इस भूतलपर 'सप्तसारस्वततीर्थके नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई'॥ ३०½॥

इति सप्तसरस्वत्यो नामतः परिकीर्तिताः॥ ३१॥
सप्तसारस्वतं चैव तीर्थं पुण्यं तथा स्मृतम्।

इस प्रकार सात सरस्वती नदियोंका नामोल्लेखपूर्वक वर्णन किया गया है। इन्हींसे सप्तसारस्वत नामक परम पुण्यमय तीर्थका प्रादुर्भाव बताया गया है॥ ३१½॥

शृणु मङ्कणकस्यापि कौमारब्रह्मचारिणः॥ ३२॥
आपगामवगाढस्य राजन् प्रक्रीडितं महत्।

राजन्! कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचर्यव्रतका पालन तथा प्रतिदिन सरस्वती नदीमें स्नान करनेवाले मंकणक मुनिका महान् लीलामय चरित्र सुनो॥ ३२½॥

दृष्ट्वा यदृच्छया तत्र स्त्रियमंभसि भारत॥ ३३॥
जायन्तीं रुचिरापाङ्गीं दिग्वाससमनिन्दिताम्।
सरस्वत्यां महाराज चस्कन्दे वीर्यमम्भसि॥ ३४॥

भरतनन्दन! महाराज! एक समयकी बात है, कोई सुन्दर नेत्रोंवाली अनिन्द्य सुन्दरी रमणी सरस्वतीके जलमें नहा रही थी। दैवयोगसे मंकणक मुनिकी दृष्टि उसपर पड़ गयी और उनका वीर्य स्खलित होकर जलमें गिर पड़ा॥ ३३-३४॥

तद् रेतः स तु जग्राह कलशे वै महातपाः।
सप्तधा प्रविभागं तु कलशस्थं जगाम ह॥ ३५॥

महातपस्वी मुनिने उस वीर्यको एक कलशमें ले लिया। कलशमें स्थित होनेपर वह वीर्य सात भागोंमें विभक्त हो गया॥ ३५॥

तत्रर्षयः सप्त जाता जज्ञिरे मरुतां गणाः।
वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः॥ ३६॥
वायुज्वालो वायुरेता वायुचक्रश्च वीर्यवान्।
एवमेते समुत्पन्ना मरुतां जनयिष्णवः॥ ३७॥

उस कलशमें सात ऋषि उत्पन्न हुए, जो मूलभूत मरुद्गण थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेता और शक्तिशाली वायुचक्र। ये उनचास मरुद्गणोंके जन्मदाता 'मरुत्' उत्पन्न हुए थे*॥ ३६-३७॥

इदमत्यद्भुतं राजन् शृण्वाश्चर्यतरं भुवि।
महर्षेश्चरितं यादृक् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ३८॥

राजन्! महर्षि मंकणकका यह तीनों लोकोंमें विख्यात अद्भुत चरित्र जैसा सुना गया है, इसे तुम भी श्रवण करो। वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है॥ ३८॥

पुरा मङ्कणकः सिद्धः कुशाग्रेणेति नः श्रुतम्।
क्षतः किल करे राजंस्तस्य शाकरसोऽस्रवत्॥ ३९॥

नरेश्वर! हमारे सुननेमें आया है कि पहले कभी सिद्ध मंकणक मुनिका हाथ किसी कुशके अग्रभागसे छिद गया था, उससे रक्तके स्थानपर शाकका रस चूने लगा था॥ ३९॥

स वै शाकरसं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान्।
ततस्तस्मिन् प्रनृत्ते वै स्थावरं जङ्गमं च यत्॥ ४०॥
प्रनृत्तमुभयं वीर तेजसा तस्य मोहितम्।

वह शाकका रस देखकर मुनि हर्षके आवेशसे मतवाले हो नृत्य करने लगे। वीर! उनके नृत्यमें प्रवृत्त होते ही स्थावर और जंगम दोनों प्रकारके प्राणी उनके तेजसे मोहित होकर नाचने लगे॥ ४०½॥

ब्रह्मादिभिः सुरै राजन्नृषिभिश्च तपोधनैः॥ ४१॥
विज्ञप्तो वै महादेव ऋषेरर्थे नराधिप।
नायं नृत्येद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि॥ ४२॥

राजन्! नरेश्वर! तब ब्रह्मा आदि देवताओं तथा तपोधन महर्षियोंने ऋषिके विषयमें महादेवजीसे निवेदन किया—'देव! आप ऐसा कोई उपाय करें, जिससे ये मुनि नृत्य न करें॥ ४१-४२॥

ततो देवो मुनिं दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतीव ह।
सुराणां हितकामार्थं महादेवोऽभ्यभाषत॥ ४३॥

मुनिको हर्षके आवेशसे अत्यन्त मतवाला हुआ देख महादेवजीने (ब्राह्मणका रूप धारण करके) देवताओंके हितके लिये उनसे इस प्रकार कहा—॥ ४३॥

भो भो ब्राह्मण धर्मज्ञ किमर्थं नृत्यते भवान्।
हर्षस्थानं किमर्थं च तवेदमधिकं मुने॥ ४४॥
तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजसत्तम।

'धर्मज्ञ ब्राह्मण! आप किसलिये नृत्य कर रहे हैं? मुने! आपके लिये अधिक हर्षका कौन-सा कारण

---

* इन्हीं ऋषियोंकी तपस्यासे कल्पान्तरमें दितिके गर्भसे उनचास मरुद्गणोंका आविर्भाव हुआ। ये ही दितिके उदरमें एक गर्भके रूपमें प्रकट हुए, फिर इन्द्रके वज्रसे कटकर उनचास अमर शरीरोंके रूपमें उत्पन्न हुए—ऐसा समझना चाहिये।

उपस्थित हो गया है? द्विजश्रेष्ठ! आप तो तपस्वी हैं, सदा धर्मके मार्गपर स्थित रहते हैं, फिर आप क्यों हर्षसे उन्मत्त हो रहे हैं?'॥ ४४½ ॥

ऋषिरुवाच

किं न पश्यसि मे ब्रह्मन् कराच्छाकरसं स्रुतम्॥ ४५॥
यं दृष्ट्वा सम्प्रनृत्तो वै हर्षेण महता विभो।

ऋषिने कहा—ब्रह्मन्! क्या आप नहीं देखते कि मेरे हाथसे शाकका रस चू रहा है। प्रभो! उसीको देखकर मैं महान् हर्षसे नाचने लगा हूँ॥ ४५½ ॥

तं प्रहस्याब्रवीद् देवो मुनिं रागेण मोहितम्॥ ४६॥
अहं न विस्मयं विप्र गच्छामीति प्रपश्य माम्।

यह सुनकर महादेवजी ठठाकर हँस पड़े और उन आसक्तिसे मोहित हुए मुनिसे बोले—'विप्रवर! मुझे तो यह देखकर विस्मय नहीं हो रहा है। मेरी ओर देखो'॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठं महादेवेन धीमता॥ ४७॥
अङ्गुल्यग्रेण राजेन्द्र स्वङ्गुष्ठस्ताडितोऽभवत्।
ततो भस्म क्षताद् राजन् निर्गतं हिमसंनिभम्॥ ४८॥

राजेन्द्र! मुनिश्रेष्ठ मंकणकसे ऐसा कहकर बुद्धिमान् महादेवजीने अपनी अंगुलिके अग्रभागसे अँगूठेमें घाव कर दिया। उस घावसे बर्फके समान सफेद भस्म झड़ने लगा॥ ४७-४८॥

तद् दृष्ट्वा व्रीडितो राजन् स मुनिः पादयोर्गतः।
मेने देवं महादेवमिदं चोवाच विस्मितः॥ ४९॥

राजन्! यह देखकर मुनि लजा गये और महादेवजीके चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने महादेवजीको पहचान लिया और विस्मित होकर कहा—॥ ४९॥

नान्यं देवादहं मन्ये रुद्रात् परतरं महत्।
सुरासुरस्य जगतो गतिस्त्वमसि शूलधृत्॥ ५०॥

'भगवन्! मैं रुद्रदेवके सिवा दूसरे किसी देवताको परम महान् नहीं मानता। आप ही देवताओं तथा असुरोंसहित सम्पूर्ण जगत्के आश्रयभूत त्रिशूलधारी महादेव हैं॥ ५०॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्तीह मनीषिणः।
त्वामेव सर्वं व्रजति पुनरेव युगक्षये॥ ५१॥

'मनीषी पुरुष कहते हैं कि आपने ही इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि की है। प्रलयके समय यह सारा जगत् आपमें ही विलीन हो जाता है॥ ५१॥

देवैरपि न शक्यस्त्वं परिज्ञातुं कुतो मया।
त्वयि सर्वे स्म दृश्यन्ते भावा ये जगति स्थिताः॥ ५२॥

'सम्पूर्ण देवता भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जान सकते, फिर मैं कैसे जान सकूँगा? संसारमें जो-जो पदार्थ स्थित हैं, वे सब आपमें देखे जाते हैं॥ ५२॥

त्वामुपासन्त वरदं देवा ब्रह्मादयोऽनघ।
सर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता च ह॥ ५३॥
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्तीहाकुतोभयाः।

'अनघ! ब्रह्मा आदि देवता आप वरदायक प्रभुकी ही उपासना करते हैं। आप सर्वस्वरूप हैं। देवताओंके कर्ता और कारयिता भी आप ही हैं। आपके प्रसादसे ही सम्पूर्ण देवता यहाँ निर्भय हो आनन्दका अनुभव करते हैं॥ ५३½ ॥

(त्वं प्रभुः परमैश्वर्यादधिकं भासि शङ्कर।
त्वयि ब्रह्मा च शक्रश्च लोकान् संधार्य तिष्ठतः॥

'शंकर! आप सबके प्रभु हैं। अपने उत्कृष्ट ऐश्वर्यसे आपकी अधिक शोभा हो रही है। ब्रह्मा और इन्द्र सम्पूर्ण लोकोंको धारण करके आपमें ही स्थित हैं।

त्वन्मूलं च जगत् सर्वं त्वदन्तं हि महेश्वर।
त्वया हि विततता लोकाः सप्तेमे सर्वसम्भव॥

'महेश्वर! सम्पूर्ण जगत्के मूलकारण आप ही हैं। इसका अन्त भी आपमें ही होता है। सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत परमेश्वर! ये सातों लोक आपसे ही उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डमें फैले हुए हैं।

सर्वथा सर्वभूतेश त्वामेवार्चन्ति देवताः।
त्वन्मयं हि जगत् सर्वं भूतं स्थावरजङ्गमम्॥

'सर्वभूतेश्वर! देवता सब प्रकारसे आपकी ही पूजा-अर्चा करते हैं। सम्पूर्ण विश्व तथा चराचर भूतोंके उपादान कारण भी आप ही हैं।

स्वर्गं च परमं स्थानं नृणामभ्युदयार्थिनाम्।
ददासि कर्मिणां कर्म भावयन् ध्यानयोगतः॥

'आप ही अभ्युदयकी इच्छा रखनेवाले सत्कर्मपरायण मनुष्योंको ध्यानयोगसे उनके कर्मोंका विचार करके उत्तम पद—स्वर्गलोक प्रदान करते हैं।

न वृथास्ति महादेव प्रसादस्ते महेश्वर।
यस्मात् त्वयोपकरणात् करोमि कमलेक्षण॥
प्रपद्ये शरणं शम्भुं सर्वदा सर्वतः स्थितम्।)

'महादेव! महेश्वर! कमलनयन! आपका कृपा-प्रसाद कभी व्यर्थ नहीं होता! आपकी दी हुई सामग्रीसे ही मैं कार्य कर पाता हूँ, अतः सर्वदा सब ओर स्थित हुए सर्वव्यापी आप भगवान् शंकरकी मैं शरणमें आता हूँ।'

एवं स्तुत्वा महादेवं स ऋषिः प्रणतोऽभवत्॥ ५४॥
यदिदं चापलं देव कृतमेतत् स्मयादिकम्।
ततः प्रसादयामि त्वां तपो मे न क्षरेदिति॥ ५५॥

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके वे महर्षि नतमस्तक हो गये और इस प्रकार बोले—'देव! मैंने जो यह अहंकार आदि प्रकट करनेकी चपलता की है, उसके

लिये क्षमा माँगते हुए आपसे प्रसन्न होनेकी मैं प्रार्थना करता हूँ। मेरी तपस्या नष्ट न हो'॥ ५४-५५॥

ततो देवः प्रीतमनास्तमृषिं पुनरब्रवीत्।
तपस्ते वर्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा॥ ५६॥
आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्धमहं सदा।
सप्तसारस्वते चास्मिन् यो मामर्चिष्यते नरः॥ ५७॥
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् भवितेह परत्र वा।
सारस्वतं च ते लोकं गमिष्यन्ति न संशयः॥ ५८॥

यह सुनकर महादेवजीका मन प्रसन्न हो गया। वे उन महर्षिसे पुनः बोले—'विप्रवर! मेरे प्रसादसे तुम्हारी तपस्या सहस्रगुनी बढ़ जाय। मैं इस आश्रममें सदा तुम्हारे साथ निवास करूँगा। जो इस सप्तसारस्वत-तीर्थमें मेरी पूजा करेगा, उसके लिये इहलोक या परलोकमें कुछ भी दुर्लभ न होगा। वे सारस्वत लोकमें जायँगे—इसमें संशय नहीं है'॥ ५६—५८॥

एतन्मङ्कणकस्यापि चरितं भूरितेजसः।
स हि पुत्रः सुकन्यायामुत्पन्नो मातरिश्वना॥ ५९॥

यह महातेजस्वी मंकणक मुनिका चरित्र बताया गया है। वे वायुके औरस पुत्र थे। वायुदेवताने सुकन्याके गर्भसे उन्हें उत्पन्न किया था॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्यानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठके ५ १/२ श्लोक मिलाकर कुल ६४ १/२ श्लोक हैं।)

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

औशनस एवं कपालमोचनतीर्थकी माहात्म्यकथा तथा रुषंगुके आश्रम पृथूदकतीर्थकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

उषित्वा तत्र रामस्तु सम्पूज्याश्रमवासिनः।
तथा मङ्कणके प्रीतिं शुभां चक्रे हलायुधः॥ १॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उस सप्तसारस्वत-तीर्थमें रहकर हलधर बलरामजीने आश्रमवासी ऋषियोंका पूजन किया और मंकणक मुनिपर अपनी उत्तम प्रीतिका परिचय दिया॥ १॥

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो रजनीं तामुपोष्य च।
पूजितो मुनिसङ्घैश्च प्रातरुत्थाय लाङ्गली॥ २॥
अनुज्ञाप्य मुनीन् सर्वान् स्पृष्ट्वा तोयं च भारत।
प्रययौ त्वरितो रामस्तीर्थहेतोर्महाबलः॥ ३॥

भरतनन्दन! वहाँ ब्राह्मणोंको दान दे उस रात्रिमें निवास करनेके पश्चात् प्रातःकाल उठकर मुनिमण्डलीसे सम्मानित हो महाबली लांगलधारी बलरामने पुनः तीर्थके जलमें स्नान किया और सम्पूर्ण ऋषि-मुनियोंकी आज्ञा ले अन्य तीर्थोंमें जानेके लिये वहाँसे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर दिया॥ २-३॥

ततस्त्वौशनसं तीर्थमाजगाम हलायुधः।
कपालमोचनं नाम यत्र मुक्तो महामुनिः॥ ४॥
महता शिरसा राजन् ग्रस्तजङ्घो महोदरः।
राक्षसस्य महाराज रामक्षिप्तस्य वै पुरा॥ ५॥

तदनन्तर हलधारी बलराम औशनसतीर्थमें आये, जिसका दूसरा नाम कपालमोचनतीर्थ भी है। महाराज! पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामने एक राक्षसको मारकर उसे दूर फेंक दिया था। उसका विशाल सिर महामुनि महोदरकी जाँघमें चिपक गया था। वे महामुनि इस तीर्थमें स्नान करनेपर उस कपालसे मुक्त हुए थे॥ ४-५॥

तत्र पूर्वं तपस्तप्तं काव्येन सुमहात्मना।
यत्रास्य नीतिरखिला प्रादुर्भूता महात्मनः॥ ६॥

महात्मा शुक्राचार्यने वहीं पहले तप किया था, जिससे उनके हृदयमें सम्पूर्ण नीति-विद्या स्फुरित हुई थी॥ ६॥

यत्रस्थश्चिन्तयामास दैत्यदानवविग्रहम्।
तत् प्राप्य च बलो राजंस्तीर्थप्रवरमुत्तमम्॥ ७॥
विधिवद् वै ददौ वित्तं ब्राह्मणानां महात्मनाम्।

वहीं रहकर उन्होंने दैत्यों अथवा दानवोंके युद्धके विषयमें विचार किया था। राजन्! उस श्रेष्ठ तीर्थमें पहुँचकर बलरामजीने महात्मा ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक धनका दान दिया था॥ ७ १/२॥

जनमेजय उवाच

कपालमोचनं ब्रह्मन् कथं यत्र महामुनिः॥ ८॥
मुक्तः कथं चास्य शिरो लग्नं केन च हेतुना।

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! उस तीर्थका नाम

कपालमोचन कैसे हुआ, जहाँ महामुनि महोदरको छुटकारा मिला था? उनकी जाँघमें वह सिर कैसे और किस कारणसे चिपक गया था?॥ ८ १/२ ॥

वैशम्पायन उवाच

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना॥ ९ ॥
वसता राजशार्दूल राक्षसान् शमयिष्यता।
जनस्थाने शिरश्छिन्नं राक्षसस्य दुरात्मनः॥ १० ॥
क्षुरेण शितधारेण उत्पपात महावने।
महोदरस्य तल्लग्नं जंघायां वै यदृच्छया॥ ११ ॥
वने विचरतो राजन्नस्थि भित्त्वास्फुरत् तदा।

वैशम्पायनजीने कहा—नृपश्रेष्ठ! पूर्वकालकी बात है, रघुकुलतिलक महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने दण्डकारण्यमें रहते समय जब राक्षसोंके संहारका विचार किया, तब तीखी धारवाले क्षुरसे जनस्थानमें उस दुरात्मा राक्षसका मस्तक काट दिया। वह कटा हुआ मस्तक उस महान् वनमें ऊपरको उछला और दैवयोगसे वनमें विचरते हुए महोदर मुनिकी जाँघमें जा लगा। नरेश्वर! उस समय उनकी हड्डी छेदकर वह भीतरतक घुस गया॥ ९—११ १/२ ॥

स तेन लग्नेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह॥ १२॥
अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च।

उस मस्तकके चिपक जानेसे वे महाबुद्धिमान् ब्राह्मण किसी तीर्थ या देवालयमें सुगमतापूर्वक आ-जा नहीं सकते थे॥ १२ १/२ ॥

स पूतिना विस्रवता वेदनार्तो महामुनिः॥ १३॥
जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां चेति नः श्रुतम्।

उस मस्तकसे दुर्गन्धयुक्त पीब बहती रहती थी और महामुनि महोदर वेदनासे पीड़ित हो गये थे। हमने सुना है कि मुनिने किसी तरह भूमण्डलके सभी तीर्थोंकी यात्रा की॥

स गत्वा सरितः सर्वाः समुद्रांश्च महातपाः॥ १४॥
कथयामास तत् सर्वमृषीणां भावितात्मनाम्।
आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु न च मोक्षमवाप्तवान्॥ १५॥

उन महातपस्वी महर्षिने सम्पूर्ण सरिताओं और समुद्रोंकी यात्रा करके वहाँ रहनेवाले पवित्रात्मा मुनियोंसे वह सब वृत्तान्त कह सुनाया। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके भी वे उस कपालसे छुटकारा न पा सके॥ १४-१५॥

स तु शुश्राव विप्रेन्द्र मुनीनां वचनं महत्।
सरस्वत्यास्तीर्थवरं ख्यातमौशनसं तदा॥ १६॥
सर्वपापप्रशमनं सिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम्।

विप्रवर! उन्होंने मुनियोंके मुखसे यह महत्त्वपूर्ण बात सुनी कि 'सरस्वतीका श्रेष्ठ तीर्थ जो औशनस नामसे विख्यात है, सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला तथा परम उत्तम सिद्धिक्षेत्र है'॥ १६ १/२ ॥

स तु गत्वा ततस्तत्र तीर्थमौशनसं द्विजः॥ १७॥
तत औशनसे तीर्थे तस्योपस्पृशतस्तदा।
तच्छिरश्चरणं मुक्त्वा पपातान्तर्जले तदा॥ १८॥

तदनन्तर वे ब्रह्मर्षि वहाँ औशनसतीर्थमें गये और उसके जलसे आचमन एवं स्नान किया। उसी समय वह कपाल उनके चरण (जाँघ)-को छोड़कर पानीके भीतर गिर पड़ा॥ १७-१८॥

विमुक्तस्तेन शिरसा परं सुखमवाप ह।
स चाप्यन्तर्जले मूर्धा जगामादर्शनं विभो॥ १९॥

प्रभो! उस मस्तक या कपालसे मुक्त होनेपर महोदर मुनिको बड़ा सुख मिला। साथ ही वह मस्तक भी (जो उनकी जाँघसे छूटकर गिरा था) पानीके भीतर अदृश्य हो गया॥ १९॥

ततः स विशिरा राजन् पूतात्मा वीतकल्मषः।
आजगामाश्रमं प्रीतः कृतकृत्यो महोदरः॥ २०॥

राजन्! उस कपालसे मुक्त हो निष्पाप एवं पवित्र अन्तःकरणवाले महोदर मुनि कृतकृत्य हो प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमपर लौट आये॥ २०॥

सोऽथ गत्वाऽऽश्रमं पुण्यं विप्रमुक्तो महातपाः।
कथयामास तत् सर्वमृषीणां भावितात्मनाम्॥ २१॥

संकटसे मुक्त हुए उन महातपस्वी मुनिने अपने पवित्र आश्रमपर जाकर वहाँ रहनेवाले पवित्रात्मा ऋषियोंसे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ २१॥

ते श्रुत्वा वचनं तस्य ततस्तीर्थस्य मानद।
कपालमोचनमिति नाम चक्रुः समागताः॥ २२॥

मानद! तदनन्तर वहाँ आये हुए महर्षियोंने महोदर मुनिकी बात सुनकर उस तीर्थका नाम कपालमोचन रख दिया॥ २२॥

स चापि तीर्थप्रवरं पुनर्गत्वा महानृषिः।
पीत्वा पयः सुविपुलं सिद्धिमायात् तदा मुनिः॥ २३॥

इसके बाद महर्षि महोदर पुनः उस श्रेष्ठ तीर्थमें गये और वहाँका प्रचुर जल पीकर उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए॥

तत्र दत्त्वा बहून् दायान् विप्रान् सम्पूज्य माधवः।
जगाम वृष्णिप्रवरो रुषङ्गोराश्रमं तदा॥ २४॥

वृष्णिवंशावतंस बलरामजीने वहाँ ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें बहुत धनका दान किया। इसके बाद वे रुषंगु मुनिके आश्रमपर गये॥ २४॥

यत्र तप्तं तपो घोरमार्ष्टिषेणेन भारत।
ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तत्र विश्वामित्रो महामुनिः॥ २५॥

भरतनन्दन! वहीं आर्ष्टिषेण मुनिने घोर तपस्या

की थी और वहीं महामुनि विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था॥ २५॥

सर्वकामसमृद्धं च तदाश्रमपदं महत्।
मुनिभिर्ब्राह्मणैश्चैव सेवितं सर्वदा विभो॥ २६॥

प्रभो! वह महान् आश्रम सम्पूर्ण मनोवांछित वस्तुओंसे सम्पन्न है। वहाँ बहुत-से मुनि और ब्राह्मण सदा निवास करते हैं॥ २६॥

ततो हलधरः श्रीमान् ब्राह्मणैः परिवारितः।
जगाम तत्र राजेन्द्र रुषङ्गुस्तनुमत्यजत्॥ २७॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रीमान् हलधर ब्राह्मणोंसे घिरकर उस स्थानपर गये, जहाँ रुषंगुने अपना शरीर छोड़ा था।

रुषङ्गुर्ब्राह्मणो वृद्धस्तपोनित्यश्च भारत।
देहन्यासे कृतमना विचिन्त्य बहुधा तदा॥ २८॥
ततः सर्वानुपादाय तनयान् वै महातपाः।
रुषङ्गुरब्रवीत् तत्र नयध्वं मां पृथूदकम्॥ २९॥

भारत! बूढ़े ब्राह्मण रुषंगु सदा तपस्यामें संलग्न रहते थे। एक समय उन महातपस्वी रुषंगु मुनिने शरीर त्याग देनेका विचार करके बहुत कुछ सोचकर अपने सभी पुत्रोंको बुलाया और उनसे कहा—'मुझे पृथूदक तीर्थमें ले चलो'॥ २८-२९॥

विज्ञायातीतवयसं रुषङ्गुं ते तपोधनाः।
तं च तीर्थमुपानिन्युः सरस्वत्यास्तपोधनम्॥ ३०॥

उन तपस्वी पुत्रोंने तपोधन रुषंगुको अत्यन्त वृद्ध जानकर उन्हें सरस्वतीके उस उत्तम तीर्थमें पहुँचा दिया॥ ३०॥

स तैः पुत्रैस्तदा धीमानानीतो वै सरस्वतीम्।
पुण्यां तीर्थशतोपेतां विप्रसङ्घैर्निषेविताम्॥ ३१॥
स तत्र विधिना राजन्नाप्लुत्य सुमहातपाः।
ज्ञात्वा तीर्थगुणांश्चैव प्राहेदमृषिसत्तमः॥ ३२॥
सुप्रीतः पुरुषव्याघ्र सर्वान् पुत्रानुपासतः।

राजन्! नरव्याघ्र! वे पुत्र जब उन बुद्धिमान् मुनिको ब्राह्मणसमूहोंसे सेवित तथा सैकड़ों तीर्थोंसे सुशोभित पुण्यसलिला सरस्वतीके तटपर ले आये, तब वे महातपस्वी महर्षि वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके तीर्थके गुणोंको जानकर अपने पास बैठे हुए सभी पुत्रोंसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—॥

सरस्वत्युत्तरे तीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्॥ ३३॥
पृथूदके जप्यपरो नैनं श्वोमरणं तपेत्।

'जो सरस्वतीके उत्तर तटपर पृथूदकतीर्थमें जप करते हुए अपने शरीरका परित्याग करता है, उसे भविष्यमें पुनः मृत्युका कष्ट नहीं भोगना पड़ता'॥ ३३½॥

तत्राप्लुत्य स धर्मात्मा उपस्पृश्य हलायुधः॥ ३४॥
दत्त्वा चैव बहून् दायान् विप्राणां विप्रवत्सलः।

धर्मात्मा विप्रवत्सल हलधर बलरामजीने उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणोंको बहुत धनका दान किया॥ ३४½॥

ससर्ज यत्र भगवाँल्लोकाँल्लोकपितामहः॥ ३५॥
यत्रार्ष्टिषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः।
तपसा महता राजन् प्राप्तवानृषिसत्तमः॥ ३६॥
सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः।
ब्रह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः॥ ३७॥
महातपस्वी भगवानुग्रतेजा महायशाः।
तत्राजगाम बलवान् बलभद्रः प्रतापवान्॥ ३८॥

कुरुवंशी नरेश! तत्पश्चात् बलवान् एवं प्रतापी बलभद्रजी उस तीर्थमें आ गये, जहाँ लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने सृष्टि की थी, जहाँ कठोर व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ आर्ष्टिषेणने बड़ी भारी तपस्या करके ब्राह्मणत्व पाया था तथा जहाँ राजर्षि सिन्धुद्वीप, महान् तपस्वी देवापि और महायशस्वी, उग्रतेजस्वी एवं महातपस्वी भगवान् विश्वामित्र मुनिने भी ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था॥ ३५—३८॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्यान एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

आर्ष्टिषेण एवं विश्वामित्रकी तपस्या तथा वरप्राप्ति

जनमेजय उवाच

कथमार्ष्टिषेणो भगवान् विपुलं तप्तवांस्तपः।
सिन्धुद्वीपः कथं चापि ब्राह्मण्यं लब्धवांस्तदा॥ १॥
देवापिश्च कथं ब्रह्मन् विश्वामित्रश्च सत्तम।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् परं कौतूहलं हि मे॥ २॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! मुनिश्रेष्ठ! आर्ष्टिषेणने वहाँ किस प्रकार बड़ी भारी तपस्या की थी तथा सिन्धुद्वीप, देवापि और विश्वामित्रजीने किस तरह ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था? भगवन्! यह सब मुझे बताइये। इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी भारी उत्सुकता है॥ १-२॥

वैशम्पायन उवाच

पुरा कृतयुगे राजन्नार्ष्टिषेणो द्विजोत्तमः।
वसन् गुरुकुले नित्यं नित्यमध्ययने रतः॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! प्राचीन कालके सत्ययुगकी बात है, द्विजश्रेष्ठ आर्ष्टिषेण सदा गुरुकुलमें निवास करते हुए निरन्तर वेद-शास्त्रोंके अध्ययनमें लगे रहते थे॥ ३॥

तस्य राजन् गुरुकुले वसतो नित्यमेव च।
समाप्तिं नागमद् विद्या नापि वेदा विशाम्पते॥ ४॥

प्रजानाथ! नरेश्वर! गुरुकुलमें सर्वदा रहते हुए भी न तो उनकी विद्या समाप्त हुई और न वे सम्पूर्ण वेद ही पढ़ सके॥ ४॥

स निर्विण्णस्ततो राजंस्तपस्तेपे महातपाः।
ततो वै तपसा तेन प्राप्य वेदाननुत्तमान्॥ ५॥
स विद्वान् वेदयुक्तश्च सिद्धश्चाप्यृषिसत्तमः।
तत्र तीर्थे वरान् प्रादात् त्रीनेव सुमहातपाः॥ ६॥

नरेश्वर! इससे महातपस्वी आर्ष्टिषेण खिन्न एवं विरक्त हो उठे, फिर उन्होंने सरस्वतीके उसी तीर्थमें जाकर बड़ी भारी तपस्या की। उस तपके प्रभावसे उत्तम वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके वे ऋषिश्रेष्ठ विद्वान् वेदज्ञ और सिद्ध हो गये। तदनन्तर उन महातपस्वीने उस तीर्थको तीन वर प्रदान किये—॥ ५-६॥

अस्मिंस्तीर्थे महानद्या अद्यप्रभृति मानवः।
आप्लुतो वाजिमेधस्य फलं प्राप्स्यति पुष्कलम्॥ ७॥
अद्यप्रभृति नैवात्र भयं व्यालाद् भविष्यति।
अपि चाल्पेन कालेन फलं प्राप्स्यति पुष्कलम्॥ ८॥

'आजसे जो मनुष्य महानदी सरस्वतीके इस तीर्थमें स्नान करेगा, उसे अश्वमेध-यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त होगा। आजसे इस तीर्थमें किसीको सर्पसे भय नहीं होगा। थोड़े समयतक ही इस तीर्थके सेवनसे मनुष्यको बहुत अधिक फल प्राप्त होगा'॥ ७-८॥

एवमुक्त्वा महातेजा जगाम त्रिदिवं मुनिः।
एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान्॥ ९॥

ऐसा कहकर वे महातेजस्वी मुनि स्वर्गलोकको चले गये। इस प्रकार पूजनीय एवं प्रतापी आर्ष्टिषेण ऋषि उस तीर्थमें सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं॥ ९॥

तस्मिन्नेव तदा तीर्थे सिन्धुद्वीपः प्रतापवान्।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्रापतुर्महत्॥ १०॥

महाराज! उन्हीं दिनों उसी तीर्थमें प्रतापी सिन्धुद्वीप तथा देवापिने वहाँ तप करके महान् ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था॥ १०॥

तथा च कौशिकस्तात तपोनित्यो जितेन्द्रियः।
तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान्॥ ११॥

तात! कुशिकवंशी विश्वामित्र भी वहीं निरन्तर इन्द्रिय-संयमपूर्वक तपस्या करते थे। उस भारी तपस्याके प्रभावसे उन्हें ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति हुई॥ ११॥

गाधिर्नाम महानासीत् क्षत्रियः प्रथितो भुवि।
तस्य पुत्रोऽभवद् राजन् विश्वामित्रः प्रतापवान्॥ १२॥

राजन्! पहले इस भूतलपर गाधिनामसे विख्यात महान् क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। प्रतापी विश्वामित्र उन्हींके पुत्र थे॥ १२॥

स राजा कौशिकस्तात महायोग्यभवत् किल।
स पुत्रमभिषिच्याथ विश्वामित्रं महातपाः॥ १३॥
देहन्यासे मनश्चक्रे तमूचुः प्रणताः प्रजाः।
न गन्तव्यं महाप्राज्ञ त्राहि चास्मान् महाभयात्॥ १४॥

तात! लोग कहते हैं कि कुशिकवंशी राजा गाधि महान् योगी और बड़े भारी तपस्वी थे। उन्होंने अपने पुत्र विश्वामित्रको राज्यपर अभिषिक्त करके शरीरको त्याग देनेका विचार किया। तब सारी प्रजा उनसे नतमस्तक होकर बोली—'महाबुद्धिमान् नरेश! आप कहीं न जायँ, यहीं रहकर हमारी इस जगत्के महान् भयसे रक्षा करते रहें'॥ १३-१४॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच ततो गाधिः प्रजास्ततः।
विश्वस्य जगतो गोप्ता भविष्यति सुतो मम॥ १५॥

उनके ऐसा कहनेपर गाधिने सम्पूर्ण प्रजाओंसे कहा—'मेरा पुत्र सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाला होगा (अतः तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये)'॥ १५॥

इत्युक्त्वा तु ततो गाधिर्विश्वामित्रं निवेश्य च।
जगाम त्रिदिवं राजन् विश्वामित्रोऽभवन्नृपः॥ १६॥

राजन्! यों कहकर राजा गाधि विश्वामित्रको राजसिंहासनपर बिठाकर स्वर्गलोकको चले गये। तत्पश्चात् विश्वामित्र राजा हुए॥ १६॥

न स शक्नोति पृथिवीं यत्नवानपि रक्षितुम्।
ततः शुश्राव राजा स राक्षसेभ्यो महाभयम्॥ १७॥

वे प्रयत्नशील होनेपर भी सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षा नहीं कर पाते थे। एक दिन राजा विश्वामित्रने सुना कि 'प्रजाको राक्षसोंसे महान् भय प्राप्त हुआ है'॥ १७॥

निर्ययौ नगराच्चापि चतुरङ्गबलान्वितः।
स गत्वा दूरमध्वानं वसिष्ठाश्रममभ्ययात्॥ १८॥

तब वे चतुरंगिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़े और दूरतकका रास्ता तय करके वसिष्ठके आश्रमके पास जा पहुँचे॥ १८॥

तस्य ते सैनिका राजंश्चक्रुस्तत्रानयान् बहून्।
ततस्तु भगवान् विप्रो वसिष्ठोऽऽश्रममभ्ययात्॥ १९॥

राजन्! उनके उन सैनिकोंने वहाँ बहुत-से अन्याय एवं अत्याचार किये। तदनन्तर पूज्य ब्रह्मर्षि वसिष्ठ कहींसे अपने आश्रमपर आये॥ १९॥

ददृशेऽथ ततः सर्वं भज्यमानं महावनम्।
तस्य क्रुद्धो महाराज वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ २०॥

आकर उन्होंने देखा कि वह सारा विशाल वन उजाड़ होता जा रहा है। महाराज! यह देखकर मुनिवर वसिष्ठ राजा विश्वामित्रपर कुपित हो उठे॥ २०॥

सृजस्व शबरान् घोरानिति स्वां गामुवाच ह।
तथोक्ता सासृजद् धेनुः पुरुषान् घोरदर्शनान्॥ २१॥

फिर उन्होंने अपनी गौ नन्दिनीसे कहा—'तुम भयंकर भील जातिके सैनिकोंकी सृष्टि करो'। उनके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उनकी होमधेनुने ऐसे पुरुषोंको उत्पन्न किया, जो देखनेमें बड़े भयानक थे॥ २१॥

ते तु तद्बलमासाद्य बभञ्जुः सर्वतोदिशम्।
तच्छ्रुत्वा विद्रुतं सैन्यं विश्वामित्रस्तु गाधिजः॥ २२॥
तपः परं मन्यमानस्तपस्येव मनो दधे।

उन्होंने विश्वामित्रकी सेनापर आक्रमण करके उनके सैनिकोंको सम्पूर्ण दिशाओंमें मार भगाया। गाधिनन्दन विश्वामित्रने जब यह सुना कि मेरी सेना भाग गयी तो तपको ही अधिक प्रबल मानकर तपस्यामें ही मन लगाया॥ २२½॥

सोऽस्मिंस्तीर्थवरे राजन् सरस्वत्याः समाहितः॥ २३॥
नियमैश्चोपवासैश्च कर्षयन् देहमात्मनः।

राजन्! उन्होंने सरस्वतीके उस श्रेष्ठ तीर्थमें चित्तको एकाग्र करके नियमों और उपवासोंके द्वारा अपने शरीरको सुखाना आरम्भ किया॥ २३½॥

जलाहारो वायुभक्षः पर्णाहारश्च सोऽभवत्॥ २४॥
तथा स्थण्डिलशायी च ये चान्ये नियमाः पृथक्।

वे कभी जल पीकर रहते, कभी वायुको ही आहार बनाते और कभी पत्ते चबाकर रहते थे। सदा भूमिकी वेदी बनाकर उसपर सोते और तपस्यासम्बन्धी जो अन्य सारे नियम हैं, उनका भी पृथक्-पृथक् पालन करते थे॥ २४½॥

असकृत्तस्य देवास्तु व्रतविघ्नं प्रचक्रिरे॥ २५॥
न चास्य नियमाद् बुद्धिरपयाति महात्मनः।

देवताओंने उनके व्रतमें बारंबार विघ्न डाला; परंतु उन महात्माकी बुद्धि कभी नियमसे विचलित नहीं होती थी॥ २५½॥

ततः परेण यत्नेन तप्त्वा बहुविधं तपः॥ २६॥
तेजसा भास्कराकारो गाधिजः समपद्यत।

तदनन्तर महान् प्रयत्नके द्वारा नाना प्रकारकी तपस्या करके गाधिनन्दन विश्वामित्र अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशित होने लगे॥ २६½॥

तपसा तु तथा युक्तं विश्वामित्रं पितामहः॥ २७॥
अमन्यत महातेजा वरदो वरमस्य तत्।

विश्वामित्रको ऐसी तपस्यासे युक्त देख महातेजस्वी एवं वरदायक ब्रह्माजीने उन्हें वर देनेका विचार किया॥ २७½॥

स तु वव्रे वरं राजन् स्यामहं ब्राह्मणस्त्विति॥ २८॥
तथेति चाब्रवीद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।

राजन्! तब उन्होंने यह वर माँगा कि 'मैं ब्राह्मण हो जाऊँ।' सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने उन्हें 'तथास्तु' कहकर वह वर दे दिया॥ २८½॥

स लब्ध्वा तपसोग्रेण ब्राह्मणत्वं महायशाः॥ २९॥
विचचार महीं कृत्स्नां कृतकामः सुरोपमः।

उस उग्र तपस्याके द्वारा ब्राह्मणत्व पाकर सफलमनोरथ हुए महायशस्वी विश्वामित्र देवताके समान समस्त भूमण्डलमें विचरने लगे॥ २९½॥

तस्मिंस्तीर्थवरे रामः प्रदाय विविधं वसु॥ ३०॥
पयस्विनीस्तथा धेनूर्यानानि शयनानि च।
अथ वस्त्राण्यलङ्कारं भक्ष्यं पेयं च शोभनम्॥ ३१॥
अददान्मुदितो राजन् पूजयित्वा द्विजोत्तमान्।
ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात्।
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः॥ ३२॥

राजन्! बलरामजीने उस श्रेष्ठ तीर्थमें उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें दूध देनेवाली गौएँ, वाहन, शय्या, वस्त्र अलंकार तथा खाने-पीनेके सुन्दर पदार्थ प्रसन्नतापूर्वक दिये। फिर वहाँसे वे बकके आश्रमके निकट गये, जहाँ दल्भपुत्र बकने तीव्र तपस्या की थी॥ ३०—३२॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

अवाकीर्ण और यायात तीर्थकी महिमाके प्रसंगमें दाल्भ्यकी कथा और ययातिके यज्ञका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मयोनेरवाकीर्णं जगाम यदुनन्दनः।
यत्र दाल्भ्यो बको राजन्नाश्रमस्थो महातपाः॥ १॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं वैचित्रवीर्यिणः।
तपसा घोररूपेण कर्षयन् देहमात्मनः॥ २॥
क्रोधेन महताऽऽविष्टो धर्मात्मा वै प्रतापवान्।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति करानेवाले उस तीर्थसे प्रस्थित होकर यदुनन्दन बलरामजी 'अवाकीर्ण' तीर्थमें गये, जहाँ आश्रममें रहते हुए महातपस्वी धर्मात्मा एवं प्रतापी दल्भपुत्र बकने महान् क्रोधमें भरकर घोर तपस्याद्वारा अपने शरीरको सुखाते हुए विचित्रवीर्यकुमार राजा धृतराष्ट्रके राष्ट्रका होम कर दिया था॥ १-२½॥

पुरा हि नैमिषीयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके॥ ३॥
वृत्ते विश्वजितोऽन्ते वै पञ्चालानृषयोऽगमन्।
तत्रेश्वरमयाचन्त दक्षिणार्थं मनस्विनः॥ ४॥

पूर्वकालमें नैमिषारण्यनिवासी ऋषियोंने बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाले एक सत्रका आरम्भ किया था। जब वह पूरा हो गया, तब वे सब ऋषि विश्वजित् नामक यज्ञके अन्तमें पांचाल देशमें गये। वहाँ जाकर उन मनस्वी मुनियोंने उस देशके राजासे दक्षिणाके लिये धनकी याचना की॥

(तत्र ते लेभिरे राजन् पञ्चालेभ्यो महर्षयः)
बलान्वितान् वत्सतरान् निर्व्याधीनेकविंशतिम्।
तानब्रवीद् बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति॥ ५॥
पशूनेतानहं त्यक्त्वा भिक्षिष्ये राजसत्तमम्।

राजन्! वहाँ महर्षियोंने पांचालोंसे इक्कीस बलवान् और नीरोग बछड़े प्राप्त किये। तब उनमेंसे दल्भपुत्र बकने अन्य सब ऋषियोंसे कहा—'आपलोग इन पशुओंको बाँट लें। मैं इन्हें छोड़कर किसी श्रेष्ठ राजासे दूसरे पशु माँग लूँगा'॥ ५½॥

एवमुक्त्वा ततो राजन्नृषीन् सर्वान् प्रतापवान्॥ ६॥
जगाम धृतराष्ट्रस्य भवनं ब्राह्मणोत्तमः।

नरेश्वर! उन सब ऋषियोंसे ऐसा कहकर वे प्रतापी उत्तम ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्रके घरपर गये॥ ६½॥

स समीपगतो भूत्वा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम्॥ ७॥
अयाचत पशून् दाल्भ्यः स चैनं रुषितोऽब्रवीत्।
यदृच्छया मृता दृष्ट्वा गास्तदा नृपसत्तमः॥ ८॥
एतान् पशून् नय क्षिप्रं ब्रह्मबन्धो यदीच्छसि।

निकट जाकर दाल्भ्यने कौरवनरेश धृतराष्ट्रसे पशुओंकी याचना की। यह सुनकर नृपश्रेष्ठ धृतराष्ट्र कुपित हो उठे। उनके यहाँ कुछ गौएँ दैवेच्छासे मर गयी थीं। उन्हींको लक्ष्य करके राजाने क्रोधपूर्वक कहा—'ब्रह्मबन्धो! यदि पशु चाहते हो तो इन मरे हुए पशुओंको ही शीघ्र ले जाओ'॥ ७-८½॥

ऋषिस्तथा वचः श्रुत्वा चिन्तयामास धर्मवित्॥ ९॥
अहो बत नृशंसं वै वाक्यमुक्तोऽस्मि संसदि।

उनकी वैसी बात सुनकर धर्मज्ञ ऋषिने चिन्तामग्न होकर सोचा—'अहो! बड़े खेदकी बात है कि इस राजाने भरी सभामें मुझसे ऐसा कठोर वचन कहा है'॥ ९½॥

चिन्तयित्वा मुहूर्तेन रोषाविष्टो द्विजोत्तमः॥ १०॥
मतिं चक्रे विनाशाय धृतराष्ट्रस्य भूपतेः।

दो घड़ीतक इस प्रकार चिन्ता करके रोषमें भरे हुए द्विजश्रेष्ठ दाल्भ्यने राजा धृतराष्ट्रके विनाशका विचार किया॥ १०½॥

स तूत्कृत्य मृतानां वै मांसानि मुनिसत्तमः॥ ११॥
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेः पुरा।

वे मुनिश्रेष्ठ उन मृत पशुओंके ही मांस काट-काटकर उनके द्वारा राजा धृतराष्ट्रके राष्ट्रकी ही आहुति देने लगे॥ ११½॥

अवाकीर्णे सरस्वत्यास्तीर्थे प्रज्वाल्य पावकम्॥ १२॥
बको दाल्भ्यो महाराज नियमं परमं स्थितः।
स तैरेव जुहावास्य राष्ट्रं मांसैर्महातपाः॥ १३॥

महाराज! सरस्वतीके अवाकीर्णतीर्थमें अग्नि प्रज्वलित करके महातपस्वी दल्भपुत्र बक उत्तम नियमका आश्रय ले उन मृत पशुओंके मांसोंद्वारा ही उनके राष्ट्रका हवन करने लगे॥ १२-१३॥

तस्मिंस्तु विधिवत् सत्रे सम्प्रवृत्ते सुदारुणे।
अक्षीयत ततो राष्ट्रं धृतराष्ट्रस्य पार्थिव॥ १४॥

राजन्! वह भयंकर यज्ञ जब विधिपूर्वक आरम्भ हुआ, तबसे धृतराष्ट्रका राष्ट्र क्षीण होने लगा॥ १४॥

ततः प्रक्षीयमाणं तद् राज्यं तस्य महीपतेः।
छिद्यमानं यथानन्तं वनं परशुना विभो॥ १५॥
बभूवापद्गतं तच्च व्यवकीर्णमचेतनम्।

प्रभो! जैसे बड़ा भारी वन कुल्हाड़ीसे काटा जा रहा हो, उसी प्रकार उस राजाका राज्य क्षीण होता हुआ

भारी आफतमें फँस गया, वह संकटग्रस्त होकर अचेत हो गया॥ १५ १/२ ॥

दृष्ट्वा तथावकीर्णं तु राष्ट्रं स मनुजाधिपः॥ १६॥
बभूव दुर्मना राजंश्चिन्तयामास च प्रभुः।
मोक्षार्थमकरोद् यत्नं ब्राह्मणैः सहितः पुरा॥ १७॥

राजन्! अपने राष्ट्रको इस प्रकार संकटमग्न हुआ देख वे नरेश मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए और गहरी चिन्तामें डूब गये। फिर ब्राह्मणोंके साथ अपने देशको संकटसे बचानेका प्रयत्न करने लगे॥ १६-१७॥

न च श्रेयोऽध्यगच्छत्तु क्षीयते राष्ट्रमेव च।
यदा स पार्थिवः खिन्नस्ते च विप्रास्तदानघ॥ १८॥

अनघ! जब किसी प्रकार भी वे भूपाल अपने राष्ट्रका कल्याण-साधन न कर सके और वह दिन-प्रतिदिन क्षीण होता ही चला गया, तब राजा और उन ब्राह्मणोंको बड़ा खेद हुआ॥ १८॥

यदा चापि न शक्नोति राष्ट्रं मोक्षयितुं नृप।
अथ वै प्राश्निकांस्तत्र पप्रच्छ जनमेजय॥ १९॥

नरेश्वर जनमेजय! जब धृतराष्ट्र अपने राष्ट्रको उस विपत्तिसे छुटकारा दिलानेमें समर्थ न हो सके, तब उन्होंने प्राश्निकों (प्रश्न पूछनेपर भूत, वर्तमान और भविष्यकी बातें बतानेवालों)-को बुलाकर उनसे इसका कारण पूछा॥ १९॥

ततो वै प्राश्निकाः प्राहुः पशोर्विप्रकृतस्त्वया।
मांसैरभिजुहोतीदं तव राष्ट्रं मुनिर्बकः॥ २०॥

तब उन प्राश्निकोंने कहा—'आपने पशुके लिये याचना करनेवाले बक मुनिका तिरस्कार किया है; इसलिये वे मृत पशुओंके मांसोंद्वारा आपके इस राष्ट्रका विनाश करनेकी इच्छासे होम कर रहे हैं॥ २०॥

तेन ते हूयमानस्य राष्ट्रस्यास्य क्षयो महान्।
तस्यैतत् तपसः कर्म येन तेऽद्य लयो महान्॥ २१॥

'उनके द्वारा आपके राष्ट्रकी आहुति दी जा रही है; इसलिये इसका महान् विनाश हो रहा है। यह सब उनकी तपस्याका प्रभाव है, जिससे आपके इस देशका इस समय महान् विलय होने लगा है॥ २१॥

अपां कुञ्जे सरस्वत्यास्तं प्रसादय पार्थिव।
सरस्वतीं ततो गत्वा स राजा बकमब्रवीत्॥ २२॥

'भूपाल! सरस्वतीके कुंजमें जलके समीप वे मुनि विराजमान हैं, आप उन्हें प्रसन्न कीजिये।' तब राजाने सरस्वतीके तटपर जाकर बक मुनिसे इस प्रकार कहा॥ २२॥

निपत्य शिरसा भूमौ प्राञ्जलिर्भरतर्षभ।
प्रसादये त्वां भगवन्नपराधं क्षमस्व मे॥ २३॥
मम दीनस्य लुब्धस्य मौर्ख्येण हतचेतसः।
त्वं गतिस्त्वं च मे नाथः प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ २४॥

भरतश्रेष्ठ! वे पृथ्वीपर माथा टेक हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। आप मुझ दीन, लोभी और मूर्खतासे हतबुद्धि हुए अपराधीके अपराधको क्षमा कर दें। आप ही मेरी गति हैं। आप ही मेरे रक्षक हैं। आप मुझपर अवश्य कृपा करें'॥ २३-२४॥

तं तथा विलपन्तं तु शोकोपहतचेतसम्।
दृष्ट्वा तस्य कृपा जज्ञे राष्ट्रं तस्य व्यमोचयत्॥ २५॥

राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार शोकसे अचेत होकर विलाप करते देख उनके मनमें दया आ गयी और उन्होंने राजाके राज्यको संकटसे मुक्त कर दिया॥ २५॥

ऋषिः प्रसन्नस्तस्याभूत् संरम्भं च विहाय सः।
मोक्षार्थं तस्य राज्यस्य जुहाव पुनराहुतिम्॥ २६॥

ऋषि क्रोध छोड़कर राजापर प्रसन्न हुए और पुनः उनके राज्यको संकटसे बचानेके लिये आहुति देने लगे॥

मोक्षयित्वा ततो राष्ट्रं प्रतिगृह्य पशून् बहून्।
हृष्टात्मा नैमिषारण्यं जगाम पुनरेव सः॥ २७॥

इस प्रकार राज्यको विपत्तिसे छुड़ाकर राजासे बहुत-से पशु ले प्रसन्नचित्त हुए महर्षि दाल्भ्य पुनः नैमिषारण्यको ही चले गये॥ २७॥

धृतराष्ट्रोऽपि धर्मात्मा स्वस्थचेता महामनाः।
स्वमेव नगरं राजन् प्रतिपेदे महर्द्धिमत्॥ २८॥

राजन्! फिर महामनस्वी धर्मात्मा धृतराष्ट्र भी स्वस्थचित्त हो अपने समृद्धिशाली नगरको ही लौट आये॥

तत्र तीर्थे महाराज बृहस्पतिरुदारधीः।
असुराणामभावाय भवाय च दिवौकसाम्॥ २९॥
मांसैरभिजुहावेष्टिमक्षीयन्त ततोऽसुराः।
दैवतैरपि सम्भग्ना जितकाशिभिराहवे॥ ३०॥

महाराज! उसी तीर्थमें उदारबुद्धि बृहस्पतिजीने असुरोंके विनाश और देवताओंकी उन्नतिके लिये मांसोंद्वारा आभिचारिक यज्ञका अनुष्ठान किया था। इससे वे असुर क्षीण हो गये और युद्धमें विजयसे सुशोभित होनेवाले देवताओंने उन्हें मार भगाया॥ २९-३०॥

तत्रापि विधिवद् दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः।
वाजिनः कुञ्जरांश्चैव रथांश्चाश्वतरीयुतान्॥ ३१॥
रत्नानि च महार्हाणि धनं धान्यं च पुष्कलम्।
ययौ तीर्थं महाबाहुर्यायातं पृथिवीपते॥ ३२॥

पृथ्वीनाथ! महायशस्वी महाबाहु बलरामजी उस तीर्थमें भी ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक हाथी, घोड़े, खच्चरियोंसे

जुते हुए रथ, बहुमूल्य रत्न तथा प्रचुर धन-धान्यका दान करके वहाँसे यायात तीर्थमें गये॥ ३१-३२॥

तत्र यज्ञे ययातेश्च महाराज सरस्वती।
सर्पिः पयश्च सुस्राव नाहुषस्य महात्मनः॥ ३३॥

महाराज! वहाँ पूर्वकालमें नहुषनन्दन महात्मा ययातिने यज्ञ किया था, जिसमें सरस्वतीने उनके लिये दूध और घीका स्रोत बहाया था॥ ३३॥

तत्रेष्ट्वा पुरुषव्याघ्रो ययातिः पृथिवीपतिः।
अक्रामदूर्ध्वं मुदितो लेभे लोकांश्च पुष्कलान्॥ ३४॥

पुरुषसिंह भूपाल ययाति वहाँ यज्ञ करके प्रसन्नतापूर्वक ऊर्ध्वलोकमें चले गये और वहाँ उन्हें बहुत-से पुण्यलोक प्राप्त हुए॥ ३४॥

पुनस्तत्र च राज्ञस्तु ययातेर्यजतः प्रभोः।
औदार्यं परमं कृत्वा भक्तिं चात्मनि शाश्वतीम्॥ ३५॥
ददौ कामान् ब्राह्मणेभ्यो यान् यान् यो मनसेच्छति।

शक्तिशाली राजा ययाति जब वहाँ यज्ञ कर रहे थे, उस समय उनकी उत्कृष्ट उदारताको दृष्टिमें रखकर और अपने प्रति उनकी सनातन भक्ति देख सरस्वतीने उस यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणोंको, जिसने अपने मनसे जिन-जिन भोगोंको चाहा, वे सभी मनोवांछित भोग प्रदान किये॥ ३५½॥

यो यत्र स्थित एवेह आहूतो यज्ञसंस्तरे॥ ३६॥
तस्य तस्य सरिच्छ्रेष्ठा गृहादिशयनादिकम्।
षड्रसं भोजनं चैव दानं नानाविधं तथा॥ ३७॥

राजाके यज्ञमण्डपमें बुलाकर आया हुआ जो ब्राह्मण जहाँ कहीं ठहर गया, वहीं उसके लिये सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने पृथक्-पृथक् गृह, शय्या, आसन, षड्रस भोजन तथा नाना प्रकारके दानकी व्यवस्था की॥ ३६-३७॥

ते मन्यमाना राज्ञस्तु सम्प्रदानमनुत्तमम्।
राजानं तुष्टुवुः प्रीता दत्त्वा चैवाशिषः शुभाः॥ ३८॥

उन ब्राह्मणोंने यह समझकर कि राजाने ही वह उत्तम दान दिया है, अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा ययातिको शुभाशीर्वाद दे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ ३८॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः प्रीता यज्ञस्य सम्पदा।
विस्मिता मानुषाश्चासन् दृष्ट्वा तां यज्ञसम्पदम्॥ ३९॥

उस यज्ञकी सम्पत्तिसे देवता और गन्धर्व भी बड़े प्रसन्न हुए थे। मनुष्योंको तो वह यज्ञ-वैभव देखकर महान् आश्चर्य हुआ था॥ ३९॥

ततस्तालकेतुर्महाधर्मकेतु-
र्महात्मा कृतात्मा महादाननित्यः।
वसिष्ठापवाहं महाभीमवेगं
धृतात्मा जितात्मा समभ्याजगाम॥ ४०॥

तदनन्तर महान् धर्म ही जिनकी ध्वजा है और जिनकी पताकापर ताड़का चिह्न सुशोभित है, वे महात्मा, कृतात्मा, धृतात्मा तथा जितात्मा बलरामजी, जो प्रतिदिन बड़े-बड़े दान किया करते थे, वहाँसे वसिष्ठापवाह नामक तीर्थमें गये, जहाँ सरस्वतीका वेग बड़ा भयंकर है॥ ४०॥

इति श्रीमहाभारते शल्यपर्वणि गदापर्वणि बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत शल्यपर्वके अन्तर्गत गदापर्वमें बलदेवजीकी तीर्थयात्राके प्रसंगमें सारस्वतोपाख्यानविषयक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४१॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका ½ श्लोक मिलाकर कुल ४०½ श्लोक हैं।)

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

वसिष्ठापवाह तीर्थकी उत्पत्तिके प्रसंगमें विश्वामित्रका क्रोध और वसिष्ठजीकी सहनशीलता

जनमेजय उवाच

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ भीमवेगः कथं नु सः।
किमर्थं च सरिच्छ्रेष्ठा तमृषिं प्रत्यवाहयत्॥ १॥
कथमस्याभवद् वैरं कारणं किं च तत् प्रभो।
शंस पृष्टो महाप्राज्ञ न हि तृप्यामि ते वचः॥ २॥

जनमेजयने पूछा—प्रभो! वसिष्ठापवाह तीर्थमें सरस्वतीके जलका भयंकर वेग कैसे हुआ? सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वतीने उन महर्षिको किस लिये बहाया? उनके साथ उसका वैर कैसे हुआ? उस वैरका कारण क्या है? महामते! मैंने जो पूछा है, वह बताइये। मैं आपके वचनोंको सुनते-सुनते तृप्त नहीं होता हूँ॥

वैशम्पायन उवाच

विश्वामित्रस्य विप्रर्षेर्वसिष्ठस्य च भारत।
भृशं वैरमभूद् राजंस्तपःस्पर्धाकृतं महत्॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—भारत! तपस्यामें होड़ लग जानेके कारण विश्वामित्र तथा ब्रह्मर्षि वसिष्ठमें